निमाड़ के संतकवि सिंगाजी

हमारे प्रकाशित शोध-ग्रंथ

१. सूर की भाषा—डॉ० प्रेमनारायण टंडन २०)

२. अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन—डॉ० मायारानी टंडन २५)

३. हिन्दी उपन्यास में कथा-शिल्प का विकास—डॉ० प्रतापनारायण टंडन १५)

४. हिन्दी काव्य में मानव और प्रकृति—डॉ० लालताप्रसाद सक्सेना १६)

५. गुरु गोविन्द सिंह और उनका काव्य—डॉ० प्रसिन्नी सहगल १५)

६. महाकवि सुब्रह्मण्य भारती और महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन—डॉ० पी० जयरामन् २०)

७. हिन्दी और तेलुगु के राम काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन—डॉ० चावलि सूर्यनारायण मूर्ति १५)

८. सूरदास और पोतना के काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन—डॉ० एन० एस० दक्षिणामूर्ति (अप्रकाशित)

९. कामायनी में नाटकीय तत्त्व—कुमारी इंदुप्रभा पाराशर ७)

निमाड़ के संत-कवि सिंगाजी

(नागपुर विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबंध)

लेखक

(डा०) रमेशचन्द्र गंगराड़े एम. ए. पी-एच. डी.

अध्यक्ष, हिंदी विभाग

गवर्नमेंट डिग्री कालेज, बड़वानी (म. प्र.)

निर्देशक

श्री कमलाशंकर मिश्र

भूतपूर्व प्राध्यापक एवं अध्यक्ष

हिंदी-विभाग

होल्कर कालेज, इंदौर (म. प्र.)

जुलाई, १९६६

प्रकाशक
हिंदी साहित्य भंडार
५५, चौपटियाँ रोड, चौक
लखनऊ—३

प्रथम संस्करण
जुलाई, १९६६

मूल्य ८ रु०

मुद्रक
नवभारत प्रेस
लखनऊ

समर्पण

परमपूज्य पिताजी को

जिनकी सद्भावनाएँ मेरी प्रेरणा हैं, जिनका मार्ग-निर्देश मेरा कर्म है और जिनके आशीर्वाद मेरी सफलता है—

अतः उनकी आकांक्षा का यह सुवासित पुष्प उन्हीं के चरणों में सविनय अर्पित—

—रमेश

विषय-सूची

प्रथम खंड : निमाड़ जिला—भूगोल और इतिहास

द्वितीय खंड : जीवन, पंथ और रचनाएँ

तृतीय खंड : दर्शन और साधना-पद्धति

चतुर्थ खंड : कवि सिंगाजी

पंचम खंड : भाषा

षष्टम खंड : परिशिष्ट

भूमिका

'निमाड़ के संत-कवि सिंगाजी' नामक इस प्रबन्ध का लक्ष्य मध्यप्रदेश के निमाड़ जिले में ईसा की १६ वीं शताब्दी में आविर्भूत निर्गुण संत कवि सिंगाजी के जीवन, दर्शन और साहित्य का प्रस्तवन एवं विवेचन है। इस विवेचन का आधार सिंगाजी के रचे हुए १० ग्रंथ और अनेक पद या भजन हैं। सिंगाजी की इन १० पुस्तकों में से केवल एक ही—अर्थात् 'संत सिंगाजी की वाणी'[१]—छपी है, जिसमें सिंगाजी के कुछ पदों के साथ-साथ उनके 'दृढ़ उपदेश' के कुछ अंश प्रकाशित किए गए हैं।

संत सिंगाजी के ग्रन्थों की हस्तलिपियों और उनके भजनों को निमाड़ जिले के अनेक गाँवों में (भामगढ़, मांघला, सेलदा, बड़वानी, खरगोन, सिहाड़ा, बोरखेड़ा, सिवना, खजूरी और सिंगाजी—संत का समाधि-स्थल आदि) अवस्थित सिंगा-पंथ के मठों और वहाँ के महंतों से ढूँढ निकालने के लिये मुझे पिछले ३ वर्षों तक सतत दौरा करना पड़ा है और अनेक कठिनाइयों के बाद उनको प्राप्त कर पाया हूँ।

इस कार्य के लिये अनेक अवसर ऐसे भी आये, जब मुझे इस पंथ के अनुयायियों से हस्तलिखित-प्रतियों और भजनों को अपने पास रखने और पढ़ने की अनुमति प्राप्त करना सरल काम नहीं था। विशेषत: ऐसी स्थिति में जब कि अनेक महंतों का यह आदेश भरा स्वर कानों में गूँजता रहता था—"सिंगा महाराज उनकी रचनाओं

१—सन्त सिंगाजी की वाणी—सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर (मध्य-प्रदेश)।

को छापा लगाने (छपवाने) का नहीं बोल गये हैं। जो कोई इन्हें छपवायेगा या ऐसा प्रयास करेगा, उसकी और उसके परिवार की बड़ी हानि होगी।"

जहाँ तक हिन्दी का प्रश्न है, अभी तक हिन्दी क्षेत्र में सिंगाजी के साहित्य पर ध्यान ही नहीं दिया गया। पं० रामचन्द्र शुक्ल के 'हिंदी-साहित्य का इतिहास,' हरिऔध के 'ओरिजिन एण्ड ग्रोथ आफ हिन्दी लेंग्वेज एण्ड इट्स लिटरेचर' और डा० रामकुमार वर्मा के 'हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' आदि हिन्दी साहित्य तथा उसके इतिहास सम्बन्धी ग्रन्थों में संत सिंगाजी का नाम तक नहीं आता। संत सिंगाजी की जीवनी और रचनाओं का संक्षिप्त उल्लेख 'उत्तरी-भारत की संत परम्परा'[1] में मिलता है जिसमें श्री परशुराम चतुर्वेदी लिखते—"कुछ दिन हुए इनके संबंध में एक छोटी-सी पुस्तिका श्री सुकुमार पगारे नाम के किसी सज्जन ने 'सिंगाजी-साहित्य-शोधक-मंडल खंडवा' के मंत्री की हैसियत से प्रकाशित की थी……परन्तु उसके उपरांत कोई इस प्रकार का भी प्रयत्न देखने या सुनने में नहीं आया……।"[2] इस छोटी-सी पुस्तिका में संत सिंगाजी के जीवन और कृतित्व सम्बन्धी कुछ लेख हैं, जिनमें पं० माखनलाल चतुर्वेदी और व्योहार राजेन्द्र सिंह जी के लेख विशेष उल्लेखनीय हैं।

इसके बाद संत सिंगाजी के सम्बन्ध में कुछ लेख प्रकाशित होते

१—उत्तरी भारत की सन्त परम्परा—परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ ३७८

२—सिंगाजी-साहित्य-शोधक-मंडल की पुस्तिका की भूमिका से—

"सन्तवर सिंगाजी के साहित्य को हिन्दी संसार के सम्मुख लाया जाय और शीघ्र ही सन्त के साहित्य का एक बृहत् ग्रंथ प्रकाशित किया जाय, इस दृष्टि से सन् १९३४ ई० में 'सिंगाजी साहित्य शोधक मंडल' की स्थापना हुई और उसमें निमाण के कई प्रमुख सज्जन सदस्य बनाये गये तथा मंडल के स्थायी अध्यक्ष पं० माखनलाल जी चतुर्वेदी सम्पादक 'कर्मवीर' बनाये गये।"

रहे। सम्मेलन-पत्रिका[1] में रामनारायण उपाध्याय और 'वीणा' (मासिक) इंदौर में श्री 'कुसुमाकर जी' के लेख छपे जिनमें संत सिंगाजी की जीवनी और विचारधारा पर किंचित प्रकाश डाला गया है।

सन् १९५४ में, 'हिन्दी को मराठी संतों की देन' विषय पर अपना शोध-प्रबंध लिखने वाले हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक, डॉ० विनयमोहन शर्मा ने, जो मेरे गुरु रह चुके हैं, जब मुझे कहा कि निमाड़ के संत-कवि सिंगाजी विषय को मैं अपने शोध-प्रबन्ध का विषय बनाऊँ, तो मैंने इस प्रस्ताव को सहर्ष और अविलम्ब स्वीकार कर लिया। निमाड़ी होने के नाते और संत के समाधि-स्थल से केवल ४० मील दूर रहने के कारण सिंगाजी की जीवनी और उनके संतत्व के सम्बन्ध में काफी सुन चुका था, अतः यह विषय मुझे बड़ा रुचिकर लगा और मैंने अपना कार्य आरम्भ कर दिया।

सन् १९५७ में हुए, भारतीय हिन्दी परिषद् के अखिल भारतीय अधिवेशन, प्रयाग में, जब मैंने संत सिंगाजी की जीवनी सम्बन्धी एक प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक 'परचुरी' पर अपना शोध-लेख पढ़ा तो संत साहित्य के प्रसिद्ध वेत्ता पं० परशुराम जी चतुर्वेदी ने खड़े होकर आश्चर्य प्रकट किया कि संत सिंगाजी सम्बन्धी इतनी अधिक सामग्री मुझे कैसे प्राप्त हो गई। बाद में मेरी उनसे इस विषय पर बातचीत हुई और मेरा कार्यक्षेत्र विस्तृत होता गया। मेरा यह शोध-लेख, 'हिन्दी-अनुशीलन' में प्रकाशित भी हुआ है।[2]

सन् १९५८-५९ में जबलपुर विश्वविद्यालय हिन्दी-परिषद् के तत्वावधान में, मैंने संत सिंगाजी विषय पर लेख पढ़ा। श्रोताओं के

१—सम्मेलन पत्रिका—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, भाग ४३, संख्या २

२—देखिए—हिन्दी-अनुशीलन, भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग, वर्ष ११, अंक २; अप्रैल-जून १९५८

बीच जबलपुर के वयोवृद्ध साहित्यकार और सिंगा-साहित्य के प्रेमी ब्योहार राजेन्द्रसिंह जी भी थे। मेरा लेख समाप्त होने पर उन्होंने परिषद् के अध्यक्ष से इस विषय पर बोलने की अनुमति माँगी। उन्होंने कहा—"संत सिंगाजी के साहित्य का संग्रह कर उसका संकलन प्रकाशित करवाना हमारा एक स्वप्न था जो आज पूरा होता दिखलाई पड़ रहा है। मैं, इस कार्य के लिये गंगराड़े जी को धन्यवाद देता हूँ।" उनके इन प्रेरणादायक शब्दों को मैंने शुभकामनाएँ और आशीर्वाद के रूप में ग्रहण किया।

इन सारी घटनाओं से समय-समय पर मुझे प्रेरणाएँ मिलती रहीं और अपने शोध-कार्य की प्रस्तावित दिशा की उपयुक्तता में विश्वास होने लगा।

प्रस्तुत प्रबन्ध में सर्वप्रथम निमाड़ के इस संत, कवि, दार्शनिक, समाज-सुधारक एवं मत-प्रवर्तक की सभी प्राप्त कृतियों के आधार पर उनका आलोचनात्मक निरूपण करने का प्रयास किया गया है। इस प्रयास के फलस्वरूप निम्न तथ्य प्रकाश में आये हैं :—

१—सिंगाजी हिन्दी-साहित्य की निर्गुण-धारा या संत परम्परा के एक प्रमुख विचारक, प्रचारक तथा कवि थे। उनकी रचनाओं की खोज और उनका अध्ययन हिन्दी-साहित्य के इस विशिष्ट अंग को विस्तृत करता है।

२—भाषा की दृष्टि से भी यह अध्ययन महत्वपूर्ण है, क्योंकि कवि की रचनाओं में निमाड़ी बोली की एकमात्र प्राचीनतर साहित्यिक सम्पत्ति के दर्शन होते हैं।

३—चूँकि संत सिंगाजी, नामदेव और कबीर के एकदम बाद के कवि हैं इसलिये उनकी रचनाओं में कबीर जैसी क्रांतिकारी विचारधारा और तीखी अभिव्यक्ति मिलती है। अत: हम सिंगाजी साहित्य को कबीर और उनके परवर्ती संत-मत की परम्परा की लड़ी को जोड़ने वाली कड़ी कह सकते हैं।

४—इस अध्ययन से हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में निमाड़ (मध्य-प्रदेश) की जो महत्वपूर्ण देन है, उसका परिचय मिलता है, क्योंकि संत सिंगाजी निमाड़ में आविर्भूत हिन्दी के संत-युगीन कवियों में सर्वश्रेष्ठ माने जायेंगे।

५—इस अध्ययन से संत-मत, दर्शन तथा अध्यात्म की भारतीय विचारधारा के सम्बन्ध में पर्याप्त सामग्री मिलती है।

६—संत सिंगाजी की रचनाएँ, निमाड़ जिले के सामाजिक और धार्मिक इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं, क्योंकि अब तक हमारा उस सिंगा-पंथ के विषय में बड़ा अल्प ज्ञान है, जिसमें निमाड़ का सम्पूर्ण जन-समाज विद्यमान है। इसका प्रमाण तो संत सिंगाजी की स्मृति में उनके समाधि-स्थल पर भरने वाले मेले में मिलता है, जहाँ देश के कोने-कोने से श्रद्धालु समाज अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने आता है। वहाँ सिंगाजी के निर्गुण-पदों को गाने वाले भावुक ग्रामीण किसान गा-गाकर जब अपनी सरल और अटपटी भाषा में दर्शन और अध्यात्म की गहन गुत्थियों को सुलझाते हैं तो हृदय द्रवित हो उठता है और मस्तक उस महान संत की समाधि पर स्थित उनके चरणों की आकृति पर झुके बिना नहीं रहता।

इसीलिये निमाड़ के इस महान संत को व्योहार राजेन्द्रसिंह ने मध्य प्रदेश का कबीर कहा है और जिसका गौरवगान करते हुए पं० माखनलाल चतुर्वेदी ने जिन्हें 'नर्मदा तट का महान संत' कह कर उन्हें नर्मदा की तरह अमर, उज्ज्वल, सुन्दर, प्राणवर्धक और युग की सीमा रेखा बनने वाला संत कहा है।

संत किसी भी युग की देन होती है और संत, युग निर्माता हुआ करता है। संत मानव-जीवन का निर्माण किया करते हैं और जीवन की समस्त साधना के बाद एक-एक पल में युग के इतिहास को

बदलते हैं। इसके साथ ही प्रत्येक संत अपने युग की आवश्यकता हुआ करता है।

मनुष्य जीवन की महान कमजोरियों को अपनी पवित्र साधना के बल हटाते हुए देवत्व की ओर जाने वाले संत सिंगाजी अपने छोटे-से जीवन में इतने अधिक प्रेरणात्मक कार्य कर गये हैं कि वह आगे आने वाले समस्त संसार की पढ़ने की वस्तु, जीवन में उतरने की वस्तु बन गए हैं।

कुछ फुटकर टिप्पणियों और सूचनाओं के अतिरिक्त जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है, मुझे अपने अनुसंधान कार्य में किसी विद्वान की कोई ऐसी पुस्तकाकार विवेचना नहीं मिली जिसे मैं सहायक ग्रंथ कह सकूँ—इस विचार से यह प्रबंध मुख्यांश में सामग्री और प्रतिपादन—दोनों दृष्टियों से मौलिक कहा जायेगा।

मैंने अपने अनुसंधान के प्रक्रम में मेरे निदेशक—आदरणीय प्रो० कमलाशंकर मिश्र, डॉ० विनयमोहन शर्मा, पं० माखनलाल चतुर्वेदी, पं० परशुराम चतुर्वेदी, व्योहार राजेन्द्रसिंह आदि विद्वानों से निर्देश तथा परामर्श ग्रहण किया। मैं उनके प्रति कृतज्ञता किन शब्दों में ज्ञापित करूँ, यह एक समस्या है।

श्री मोतीसिंह जी (मांडला), प्रिय भाई दगड़ बड़ा जी, मांगीलाल काछी, घाना (तहसील खंडवा निमाड़), मांगीलाल जी महंत (सिंगाजी-समाधि-स्थल), मांगीलाल सेठ (सेलदा) और अन्य सिंगा-साहित्य प्रेमियों का मैं हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने समय-समय पर मुझे सिंगाजी के भजन और रचनाओं की हस्तलिखित प्रतियाँ अनेक कष्ट उठाकर भी उपलब्ध करवाईं, इनके सहयोग और सहायता के बिना मेरा कार्य आगे नहीं बढ़ सकता था।

मेरे सामग्री एकत्र करने के प्रयास में प्रिय भाई श्री गुलाबराय और प्रिय मित्र श्री शिवशंकर मेहता (प्राध्यापक-दर्शनशास्त्र, महाकौशल

महाविद्यालय, जबलपुर) तथा पूज्य भाई हंसराज गंगराड़े का सहयोग मेरे लिए बहुत लाभदायी सिद्ध हुआ है।

संत वाणी की दार्शनिक गुत्थियों और गहन अनुभूतियों के अध्ययन के रूप में मैं यह प्रबंध प्रस्तुत कर रहा हूँ। मुझ जैसा अल्पज्ञ इनकी गहराइयों के तल में पहुँच पाया है अथवा नहीं, इसका निर्णय मैं संत साहित्य के अधिकारी विद्वानों पर छोड़ अपना विनम्र वक्तव्य समाप्त करता हूँ।

—रमेशचंद्र गंगराड़े

पूर्वी और पश्चिमी निमाड़ 'संत सिंगाजी' से सम्बद्ध प्रमुख स्थल

निमाड़ जिले की भौगोलिक सीमा

इसके पूर्व कि हम, 'निमाड़ के संत-कवि सिंगाजी' के जीवन और कृतित्व का अध्ययन करें, उनके जन्म-स्थान और कार्य-स्थल निमाड़ जिले की, भौगोलिक स्थिति के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक जानकारी प्राप्त कर लें।

निमाड़, मध्यप्रदेश का एक महत्वपूर्ण जिला है। राज्य-पुनर्गठन के बाद निमाड़ का क्षेत्र बढ़ गया है, क्योंकि इसमें मध्य-भारत (होल्कर-स्टेट) का निमाड़ जिला भी सम्मिलित कर लिया गया है। पुनर्गठन के बाद इस वृहत निमाड़ जिले को, राज्य-शासन की सुविधा के लिये, 'पूर्वी और पश्चिमी निमाड़' नामक दो शासकीय इकाइयों में बाँट दिया गया है। खंडवा और खरगोन व मंडलेश्वर क्रमश: इन दो भागों के मुख्यालय हैं।[१]

संत सिंगाजी का जन्म स्थान पश्चिमी निमाड़ है और उनका कार्यस्थल पूर्वी निमाड़ की पावन भूमि रही है, इसलिये हम पूर्वी और पश्चिमी निमाड़ की भौगोलिक स्थिति का अलग-अलग वर्णन करेंगे।

पूर्वी निमाड़ :

यह मध्य-प्रांत के नर्मदा-संभाग में २१°५′ और २२°२५′ उत्तर तथा ७५°५७′ और ७७°१३′ पूर्व के बीच स्थित है। इसकी पहाड़ी और समतल भूमि, सतपुड़ा और विन्ध्याचल पर्वतों के बीच नर्मदा की की सौंदर्यपूर्ण घाटियों के मध्य, फैली हुई है।

१—देखिए—बायें पृष्ठ पर पूर्वी और पश्चिमी निमाड़ का नक्शा।

निमाड़ के उत्तर में इंदौर राज्य और धार, पश्चिम में इंदौर और खानदेश का कुछ हिस्सा, दक्षिण में खानदेश और अमरावती, अकोला जिले और पूर्व में होशंगाबाद व बैतूल स्थित हैं।

इस तरह यह जिला उत्तर में नर्मदा की सुन्दर तलहटी और दक्षिण में ताप्ती के उपजाऊ कछारों से घिरा हुआ है, और जिसके मध्य में सतपुड़ा पर्वत पश्चिम से पूर्व तक फैला हुआ है।

जहाँ तक इस जिले के नामकरण का प्रश्न है, निमाड़ शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। कुछ लोगों का मत है कि इस जिले में 'नीम' के वृक्ष बहुतायत से पाये जाते हैं और इस तरह 'नीम' से निमाड़ शब्द बन गया है। एक दूसरा मत है कि 'नीम' का मतलब आधा (Half) होता है और चूंकि यह जिला नर्मदा नदी के मुहाने की ओर के आधे (नीम) भाग में बसा हुआ है, इसे निमाड़ कहते हैं।[1]

इसकी उत्तरी सीमा को नर्मदा घेरती हुई गई है। इसी सीमा पर सैलानी और चाँदगढ़ के घने और सुहावने जंगल हैं। नर्मदा के पवित्र तट पर मांधाता (ज्योतिर्लिंग) एक टापू की तरह स्थित है, जो भारतवर्ष के कुछ महत्वपूर्ण तीर्थ-स्थलों में से एक तीर्थ-स्थल माना जाता है।

जिले के दक्षिण में आवना और सुकता नदियों के उपजाऊ कछार हैं। इसी ओर सतपुड़ा रेंज पर, इतिहास प्रसिद्ध, असीरगढ़ का किला स्थित है, जिसके खंडहर आज भी, इतिहास के शोध-कर्ताओं की समस्या और सैलानियों के लिये एक सुंदर प्रकृतिस्थल के रूप में, हमारा ध्यान आकर्षित किये बिना नहीं रहते।

1—"The name is considered to be derived from 'nim' half as Niwar was supposed to be half way down the course the Narbada........"

—The Imperial Cazetteer of India—Vol. XIX

यहाँ की जलवायु स्वास्थ्यवर्धक है।

इस जिले के प्रमुख शहर—खंडवा, बुरहानपुर और हरसुद--इसकी ३ तहसीलें हैं। ये तीनों शहर मध्य-रेलवे के प्रमुख रेलमार्ग (बंबई-दिल्ली) पर स्थित हैं और इसलिये उद्योग-व्यापार के लिये बहुत प्रसिद्ध हैं। खंडवा, जो पिछले अनेक वर्षों से जिले का मुख्यालय है, जैनियों का केन्द्र रहा है। आज भी यहाँ अनेक जैन मंदिर विद्यमान हैं।

बुरहानपुर, इतिहास काल से, मुगल शासकों का गढ़ रहा है और आज भी १६वीं शताब्दी की बनी हुई भव्य मस्जिदें वहाँ खड़ी हुई अपनी गौरवगाथा सुना रही हैं।

प्रमुख शहरों के अलावा जिले के दो प्रमुख तीर्थ-स्थल—ओंकार-मांधाता और सिंगाजी हैं।

मांधाता में भारतवर्ष के प्रसिद्ध १२ ज्योतिर्लिंगों में से एक शंकर-लिंग स्थित है। यहाँ नर्मदा के सुरम्य किनारे पर अनेक मन्दिर और धर्मशालाएँ बनी हुई हैं। यहाँ प्रतिवर्ष कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा को एक विशाल मेले का आयोजन होता है, जिसमें देश के कोने-कोने से तीर्थ यात्री आते हैं। बद्रीनाथ जाने वाला तीर्थ यात्री मांधाता आये बिना अपनी तीर्थ-यात्रा अधूरी समझता है।

सिंगाजी[1] —जहाँ संत सिंगाजी रहते थे और जहाँ उन्होंने समाधि ली—उस गाँव का नाम भी सिंगाजी है। यह गाँव, हरसुद तहसील

1—A small village and a railway station in the Harsud Tahsil, 28 miles north east of Khandwa on the small stream of Piprar. The village is named after Singaji, a defied cowheard, in whose honour an important annual fair is held.…and this village is hold revenue free for the support of Singaji's tomb, which is situated on the piprar.

—Nimar District Gazeteers, R. V. Russel—Published in 1908. P. 257

में, खंडवा से २८ मील की दूरी पर उत्तर-पूर्व में फिपराड़ नदी के किनारे बसा हुआ है। महान् संत सिंगाजी की याद में यहाँ प्रतिवर्ष आश्विन शुक्ल दसमी से पूर्णिमा तक एक भव्य मेला लगता है। हजारों की संख्या में श्रद्धालु जन यहाँ आते हैं और सिंगाजी की समाधि पर शक्कर का प्रसाद चढ़ाते हैं। यहाँ पर सिंगाजी की समाधि के साथ उनके माता-पिता, पुत्र, नाती आदि की समाधियाँ भी बनी हुई हैं। यह बंबई-दिल्ली लाईन पर रेलवे स्टेशन भी है।

यहाँ के लगभग १००० ग्रामों में बसी हुई अधिकांश जनता (लगभग ८६ प्रतिशत) हिन्दू है। इस जिले में मराठी भाषा-भाषी भी रहते हैं और यहाँ की आदिवासी जातियों में भील और भीलाले प्रसिद्ध हैं। यहाँ की स्थानीय बोली, जिले के नाम के अनुसार, निमाड़ी बोली कहलाती है। निमाड़ी, मालवी और राजस्थानी से तो प्रभावित है ही साथ ही कहीं-कहीं उसमें मराठी और भीली बोली के शब्दों का प्राधान्य दिखलाई देता है।

खेती और पशुपालन यहाँ का मुख्य व्यवसाय रहा है। इसी कारण यहाँ की जनता शिक्षा के क्षेत्र में, एक लम्बे अरसे तक, पिछड़ी रही और अंधविश्वासों के बोझ से दबी हुई अनेक कठिनाइयों के चक्र में पिसती रही है।

यहाँ के निवासियों में प्रमुख रूप से, बनिया, ब्राह्मण, राजपूत, अहीर (गवली), भील, भीलाले, नागर, नार्मदीय, मुसलमान, गुजर आदि जातियाँ पाई जाती हैं। बाद में ईसाई मत के अवलंबियों की संख्या भी बढ़ गई है।

पश्चिमी निमाड़ :

यह मध्य-भारत में इंदौर राज्य के दक्षिण में २१° २२′ और २२° ३२′ उत्तर तथा ७४° २४′ और ७६° १७′ पूर्व के बीच स्थित है।

इस जिले के तीन मुख्य शहर — खरगोन, महेश्वर और बड़वाहा हैं। [illegible] इस जिले का मुख्यालय है। महेश्वर (महिष्पति नगरी)

नर्मदा के पवित्र तट पर स्थित है जहाँ भगवान शंकर के भव्य मंदिर बने हुए हैं। यहाँ का सुंदर घाट दर्शनीय है। महारानी अहिल्याबाई के शासन-काल का यह केन्द्र-स्थल रहा है इसलिए यहाँ और इसके आसपास अनेक मंदिर, कुँए और बावड़ियाँ स्थित हैं जो अहिल्या-बाई की दान-शीलता और कल्याणकारी भावना का ज्वलंत उदाहरण हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से भी इस जिले का कम महत्व नहीं है। मराठा और मुगल शासन के ध्वंसावशेष आज भी हमें यहाँ के वीरों की गौरवगाथा सुनाते हैं।

पहले यह जिला 'सूबा' के अंतर्गत था और ११ परगनों में विभाजित था। अब उसको तहसीलों की संख्या बढ़ा दी गई है और इसका शासन कलेक्टर द्वारा चलाया जाता है जो खरगोन और महेश्वर दोनों स्थानों पर रहता है।

निमाड़ जिले का राजनैतिक इतिहास

सिंहावलोकन

निमाड़ जिले की भौगोलिक स्थिति और उसकी ऐतिहासिक महत्ता के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए "इंपीरियल गजेटियर आफ इंडिया" में, इसे इतिहास-काल की अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं का नाट्य-गृह कहा है।[1] इसका कारण निमाड़ की राजनैतिक उथल-पुथल

1. "Situated on the main route between Hindustan and the Deccan, and containing the fortress of Asirgarh which commands the passage of the Satpuras, Nimar has been at several periods of history the theatre of important events."

—Imperial Gazetteer of India vol. XIX. p. 103

और नाटकीय ढंग से क्षण प्रतिक्षण बदलने वाली ऐतिहासिक घटनाएँ हैं।

शासकों की परंपरा का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि प्राचीन-काल में यहाँ चौहानों का राज्य था किन्तु इस वंश की एक भी प्रशस्ति नहीं मिलती।[1] पृथ्वीराज रासो के अनुसार मालूम होता है कि निमाड़ के इतिहास प्रसिद्ध किले असीरगढ़ पर 'ताक' राजाओं का शासन था, जिन्होंने ई० सन् ११६१ में कन्नौज रण-क्षेत्र में गोरी से युद्ध किया था। इस तथ्य का इसके सिवाय और कहीं उल्लेख नहीं मिलता। ताक राजाओं के पश्चात् लगभग १०० वर्षों तक यहाँ चौहानों का राज्य था। ई० सन् १२९१ में अलाउद्दीन खिलजी ने दौलताबाद से लौटते समय असीरगढ़ पर आक्रमण किया था। उस युद्ध में "रायसी" को छोड़कर सम्पूर्ण राजवंश नष्ट हो गया था। इसी "रायसी" के वंशज वर्तमान पीपलौदा के राणा हैं।[2]

ई० सन् १२९४ में अलाउद्दीन अपनी दक्खन विजय से लौटता हुआ मध्य-प्रदेश से गुज़रा था। उसी समय उसने अचलपुर में मुकाम किया था और वहाँ अपना एक कर्मचारी नियत कर उसने विदर्भ को दिल्ली राज्य में जोड़ लिया था। ई० सन् १२९६ में दिल्ली की राजगद्दी पर बैठते ही अलाउद्दीन ने मेवाड़ को जीत उज्जैन, मांडू, धार, चंदेरी आदि हिन्दू राज्यों को जीत लिया।

कुम्हारी इलाके के बटियागढ़ के संवत् १३६७ के सती लेख से ज्ञात होता है कि उस समय यहाँ अलाउद्दीन का शासन था।[3]

अलाउद्दीन खिलजी की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली में जो विद्रोह हुआ था उसका शमन गयासुद्दीन तुगलक ने किया था और खिलजियों को हराकर बादशाह बन गया था। इसके शासन काल से सम्बद्ध एक

1. Ibid. p. 110.
2. Ibid. p. 108.
3. रायबहादुर स्वर्गीय हीरालाल कृत—"मध्य-प्रदेश की प्रशस्तियाँ।"

फारसी लेख बटियागढ़ में मिला है।[१] उसमें उसका राजत्वकाल हिजरी सन् ७२५ अंकित है, जो ई० सन् १३२४ में पड़ता है—

"न अह्द शुद गयासुद्दीन व दुनिया बिनाई खैर मैमूगश्त मनसूब"

ई० सन् १३६८ में तैमूर के आक्रमण से तुगलकों का राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। इस समय में मध्य-प्रदेश बहमनी और मालवा के हाकिमों के हाथों में आ गया। १५वीं शताब्दी के प्रारंभ में दिलावर खां, जो मालवे का राज्यपाल था, स्वतंत्र शाह बनकर बैठ गया। इसके पुत्र हुशांशार की मृत्यु के २ वर्ष पश्चात् मालवे का राज्य खिलजियों के अधिकार में हो गया। मालवे का प्रथम खिलजी सुलतान महमूद-शाह था। फरिश्ता के अनुसार सुलतान महमूद अन्य राजाओं की नीति के विपरीत तलवार के बल पर राज्य करना चाहता था। इसका परिणाम यह हुआ कि वह मारा गया और मालवा से खिलजी घराने का राज्य हट गया। ई० सन् १५३० में गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने मालवा को अपने राज्य में ले लिया।

मुहम्मद तुगलक के शासन काल में (जिसका सूत्रधार हसन बहमनी था) बहमनी राज्य का प्रभाव भी मध्य-प्रदेश पर दिखलाई देता है। बरार तो पूर्ण रूप से बहमनी राज्य के अंतर्गत था। हसन बहमनी का उत्तराधिकारी मुहम्मद शाह प्रथम और मुहम्मदशाह प्रथम का उत्तराधिकारी मुजहिद शाह था, जिसके समय में (ई० सन् १३७६) राज्य के सभी उमरा, अमीर व सरदार उसके विरोधी हो गये थे।

मुहम्मदशाह तृतीय (ई० सन् १४६३-१४८२) के समय में बहमनी राज्य पतन की ओर मुड़ गया। अपनी डाँवाडोल नीति के कारण मुहम्मदशाह तृतीय मारा गया और बहमनी राज्य का संगठन हिल गया।

---

२. वही।

निमाड़ पर फरुखी शासन :—

"सेन्ट्रल प्राविन्सेस डिस्ट्रिक्ट्स गजेटियर्स" में, "निमाड़–इतिहास एवं पुरातत्व" शीर्षक से निमाड़ ज़िले के राजनैतिक इतिहास पर प्रकाश डाला है। इसमें अकबर के शासनकाल की चर्चा करते हुए बतलाया गया है कि अकबर के समय निमाड़ दो सरकारों, हांडिया और बीजागढ़ में बाँट दिया गया और इसे मालवा सूबा के अंतर्गत कर दिया। इसके साथ ही खानदेश के मुहम्मद फारूखी राजा की राजधानी बुरहानपुर बना दी गई। इसीलिये निमाड़ का इतिहास वस्तुत: मालवा और खानदेश का इतिहास है।[१] निमाड़ ज़िले का कोई एक स्वतन्त्र राजनैतिक इतिहास उपलब्ध नहीं है। श्री प्रयागदत्त शुक्ल ने भी अपनी पुस्तक, "मध्य-प्रदेश का इतिहास और नागपुर के भोंसले", में निमाड़ ज़िले की चर्चा की है और उससे ज्ञात होता है कि निमाड़ की भूमि पर एक लंबी अवधि तक फारूखी वंश का शासन रहा है।

वस्तु स्थिति यह है कि तुगलक वंश के समय मुसलमानी भारत कई स्वतंत्र राज्यों में बँट गया था। इन्हीं प्रांतीय राज्यों में निमाड़ भी एक था। यह निमाड़ प्रान्त, गंजाल और हिरन काल के बीच स्थित था जिसकी राजधानी, हांडिया के उत्तर में, निमावर में थी।[१]

---

१. सेन्ट्रल प्राविन्सेस डिस्ट्रिक्ट्स गजेटियर, निमाड़ डिस्ट्रिक्ट, जिल्द अ, पृष्ठ २१।

1. The old Hindu geographical division of Prant Nimar comprised the sections of the Narbada valley lying between the Ganjal and Hiranphal.... Its capital was Nimawar, a town now situated in the Indore State opposite Handia.

—Central Provinces Districts Gazetteer, Nimar District, vol. A, p. 21.

सुलतान फिरोजशाह के समय में खानदेश राज्य की स्थापना हुई थी और सुलतान ने एक फरमान के द्वारा तापी (ताप्ति) कछार मलिक फरूख को दे दिया था। वैसे तो मलिक फरूख एक साधारण सिपाही था किन्तु तालनेर के युद्ध में इसका भाग्य चमका और वह सूबेदार बना दिया गया। इसके साथ ही मलिक फरूख का विवाह मालवा के सुलतान दिलावरखां गोरी की पुत्री के साथ हो गया और इस तरह उसका पाया और मजबूत हो गया।

ई० सन् १३७० में मलिक फरूख ने तापी के कछार में अपने शासन का सूत्रपात किया और उसका विकास उसके पुत्र नासिर खां ने किया। नासिर खां को गुजरात के सुलतान ने "खान" की उपाधि दी थी। इसी कारण उसका शासित मुल्क "खानदेश" कहलाया।

निमाड़ प्रान्त का इतिहास-प्रसिद्ध किला असीरगढ़[1] एक हिन्दू किलेदार से नासिरखां ने लिया था। असीरगढ़ प्राप्त हो जाने पर नासिरखां ने अपने दो प्रसिद्ध फकीरों (बुरहानुद्दीन और जैनुद्दीन) के आगमन पर उनके नाम से ताप्ती नदी के दोनों किनारों पर दो नगर—बुरहानपुर और जैनाबाद बसाये। निमाड़ पर इस फरूखी वंश का शासन लगभग ई० सन् १६०० तक रहा।[2] इस तरह फरूखी वंश ने सन् १३७० से १६०० तक शासन किया। उनकी वंशावली बुरहानपुर की जुम्मा मस्जिदों में फारसी और संस्कृत में शिलांकित है।[3]

---

१. जनश्रुति के अनुसार यह किला आसा अहीर ने आभीर युग में बनवाया था जो ८५० फुट ऊँचा है। यहाँ आसा देवी का स्थान है। पृथ्वीराज रासो में इस किले का उल्लेख किया गया है। पृथ्वीराज के समय में यहाँ का राजा "ताक" था।

2. The following account of the Faruki Kings was condensed by captain Forsyth from Farista's history.

३. इपिग्राफिका इंडिका, जिल्द ९, पृष्ठ ३०६, जिसमें संस्कृत वंशावलि भी अंकित है।

फरूखी वंश के अंतिम सरदार बहादुरशाह और अकबर के बीच मांडु क्षेत्र में युद्ध हुआ। बहादुरशाह गिरफ्तार कर लिया गया और इस तरह अकबर ने असीरगढ़ को अपने कब्जे में कर लिया और खानदेश और निमाड़ मिला दिये। इसके पश्चात् निमाड़ और खानदेश दिल्ली साम्राज्य के अधीन हो गए। शासन की सुविधा के लिए प्रान्त निमाड़ को मालवा के सूबे में मिला दिया और खानदेश और दक्षिणी निमाड़ को एक अलग सूबा बना दिया।

फरूखी शासकों ने अपनी राजधानी बुरहानपुर में कई सुन्दर तथा भव्य इमारतें बनवाई थीं। यह नगर वस्त्र व्यवसाय में अच्छी तरक्की कर रहा था। व्यापार की दृष्टि से भी इसका महत्व कम नहीं था। इसीलिए अकबर के शासन काल में भी बुरहानपुर निमाड़ का केन्द्र बन गया था। मुसलमानी युग में यहाँ कई मुसलमान और हिन्दू संत जन हुए। बुरहानपुर के औलिया हजरत शाह बुखारी सूफी संत थे जिन्होंने हिन्दू और मुसलमानों के बीच का भेदभाव दूर करने का प्रयास किया था। आदिलशाह फरूखी के समय में निमाड़ में सिंगाजी नाम के एक प्रसिद्ध संत हो गए। सारे निमाड़ के लोग श्रद्धापूर्वक उनकी मनौती मानते थे। यहाँ तक कि राजवंश के लोग उनके दर्शनार्थ उनके आसन पर पहुँचते थे।...... सिंगाजी जीवन के महान तत्वों के द्रष्टा और अनुभूतियों के माधुर्य से पूर्ण अनेक अत्यन्त सरल गीतों के रचयिता थे, जिनको आज भी ग्रामीण भी गा-गाकर संसार के तापों से बचने का प्रयास करते हैं। जहाँ सिंगाजी रहते थे उस गाँव का नाम सिंगाजी है।[1]

मुगल शासन काल में निमाड़ का यह नगर बुरहानपुर एक महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया था। सन् १६०९ में जहाँगीर के शासन काल में परवेज, खुर्रम आदि बुरहानपुर आये और यहाँ रहे। शाहजहाँ भी

१—देखिये—गोंड, मुस्लिम और मराठा शासन—श्री प्रयागदत्त शुक्ल—शुक्ल अभिनन्दन ग्रंथ—इतिहास खंड, पृष्ठ ७६।

बुरहानपुर में २ वर्ष तक रहा था। बेगम मुमताज महल यहीं पर जून में प्रसव पीड़ा से मरी थी।

इसके बाद सन् १६५८ ई० में औरंगजेब दिल्ली का सम्राट बना तब उसने दक्षिण की सूबेदारी राजा जयसिंह को सौंप दी थी। जयसिंह सन् १६६७ ई० में बुरहानपुर में ही मरा था। जयसिंह की मृत्यु के पश्चात् गाजीउद्दीन दक्षिण का सूबेदार हुआ। सन् १६७० ई० में इधर मराठों ने लूटना आरंभ किया और कई पटेलों से चौथ लेना आरंभ किया। सन् १६८४ में औरंगजेब ने बुरहानपुर में मुकाम किया। इसके बाद ही बरार में निज़ाम वंश का शासन आरंभ हो गया। सन् १६७० में मराठों ने खानदेश पर पहला हमला किया और बुरहानपुर तक लूट खसोट मचाई। धीरे-धीरे बुरहानपुर पर भी इनका कब्जा हो गया। सन् १७२० में निज़ाम के आसफजाह, पेशवा और निमाड़ की सेनाओं के बीच संघर्ष चलता रहा। यह संघर्ष सन् १७४० और १७६० की संधियों के बाद समाप्त हुआ। धीरे-धीरे निमाड़ के कुछ इलाके, कानापुर और बैड़िया के परगनों का छोड़कर, सिंधिया और होल्कर को मिल गये।

सन् १८०० से १८१८ तक पिंडारी और मराठों के हमलों और लूटपाट के कारण इतिहासकारों ने इस समय को The time of trouble कहा है। यहाँ पर पिंडारों का बड़ा जोर रहा है। हांडिया के घने जंगलों में नर्मदा और विंध्या रेंज के बीच इनका मुख्य केम्प रहा हैं। सन् १८१८ में अंग्रेजों ने पिंडारों को तितर-बितर कर दिया। उनका मुखिया छितु, शेर द्वारा मारा गया।

इस तरह क्रमशः निमाड़ का स्वरूप बदलता गया और सन् १८२३ की संधि के कारण कानापुर बेड़िया और बाद में सन् १८६४ में पूरा निमाड़ (जैनाबाद, मांजरोद, बुरहानपुर) सेन्ट्रल प्राविन्सेस के अन्तर्गत आ गया। जिले का केन्द्र स्थल मंडलेश्वर से उठकर खंडवा आ गया। निमाड़ जिले का जो वर्तमान रूप है वह धीरे-धीरे बनता

गया। खंडवा, बुरहानपुर और हरसुद इसकी तीन तहसीलें बनाई गई और खंडवा डिस्ट्रिक्ट हेड क्वार्टर बन गया।

संत सिंगाजी का जीवन-चरित

संत साहित्य का आरंभ ऐसे समय में हुआ जब भारतीय जनता आशा और निराशा के बीच झूल रही थी। आशा तो विदेशियों के आक्रमणों के कारण टूटती जा रही थी और मुसलमानी शासन की प्रतिक्रिया स्वरूप अपने आपके प्रति घोर निराशा का संचार हो रहा था। हिन्दुओं का बलात् धर्म-परिवर्तन, मंदिरों का नष्ट होना और मस्जिदों का निर्माण इत्यादि कार्यक्रम दिन प्रतिदिन सम्पन्न हो रहे थे। धार्मिक कट्टरता एवं धार्मिक लोलुपता एक दूसरे के समर्थक बने हुए थे। इन परिस्थितियों के बीच जिस-जिस महामना ने धार्मिक दृष्टि ऊपर उठने का प्रयास किया, वही संत बन गया।

संतपन और कवित्व दोनों में समानता है। भावुकता दोनों की आधार शिला है। जब जीवन की कठोरता सताती है, जनता का रुदन और क्रंदन असह्य हो उठता है, तब संत चुप नहीं रह सकता। इसी कारण संवत् १००० के पश्चात् ऐसे भावुक व्यक्तियों ने जन्म लिया जिनकी वाणी रागमय होकर अपने आप फूट पड़ी। इनका संतपन और कवित्व समान रूप से चलता रहा। इन संतों के अधिकांश कवि होने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उनका समय असाधारण था और जनता त्रस्त थी, पीड़ित थी। ये भावुक संत इनकी इस परिस्थिति को व्यक्त कर देते थे। भले उनकी भाषा परिमार्जित नहीं थी, उनकी वाणियों से जन जीवन का कल्याण अवश्यंभावी था।

संत न हिन्दू थे न मुसलमान। वे तो भावना में डोलते हुए जन-कल्याण के प्रणेता और आत्मा के पुजारी थे। इसी कारण हम देखते हैं कि कबीरदास के शिष्यों में मुसलमान भी थे और मुसलमानों में में भी संतों का प्रादुर्भाव हुआ। ये मुसलमान संत 'सूफी' कहलाते थे। ये भारतीय जन-जीवन संबंधित प्रेम कथाएँ लिख आत्मा और परमात्मा के मिलन का मार्ग बतलाते थे। दूसरे, संतों का जन्म जन-कल्याण के हेतु ही होता है और ये कठिन से कठिन परिस्थितियों के बीच से गुजर कर भी दोषहीन होते हैं। ये न केवल जीवन संग्राम में सफल होते हैं अपितु मानव-जाति के कल्याण के लिये अपना सर्वस्व बलिदान कर देते हैं। ये महान् हैं तो भी अपने आपको छोटा ही बताते हैं, इसीलिये 'नानक' कह उठता है—

'नानक नन्ह हो रहो जैसी नन्ही दूब,
बड़ा घास जल जायगा दूब खूब की खूब।'

इसी तरह संत वाणी ने प्रथम बार भारतीय समाज में निम्न वर्ग, अछूत और दलितों के उद्धार का बीड़ा उठाया। दृष्टिकोण यहीं से बदलता दिखलाई पड़ता है—

'जात न पूछो साधु की पूछ लीजिये ज्ञान'

इसी उक्ति के अनुसार हम देखते हैं कि रैदास चमार थे, दादू धुनिया थे और धन्ना जाट थे। कबीर ने भी उच्च वर्ग को ललकारा था—

'कबीरा खड़ा बजार में लिये लुकाटी हात,
जो घर दाजे आपनों चले हमारे साथ।

ये संत व्यवहारों में खरे और विचारों में स्पष्ट थे। अमानवीयता को उखाड़ ढोंग ढकोसलों को मिटा नई व्यवस्था करना ही इनका एक मात्र उद्देश्य था। इस समय भारतीय समाज दो खंडों में विभाजित था—हिन्दू और मुसलमान। हिन्दू अपनी मूर्ति-पूजा में व्यस्त थे और मुसलमान मूर्ति पूजा का विरोध कर रहे थे। इस उलझन को सुलझाने की एक गली संतों ने निकाली— [illegible]

'कहे कबीर एक राय जयजु रे हिन्दू तुरक न कोई,
हिन्दू तुरक का करता एकै ता गति लखि न जाई ।'

संत साहित्य की परम्परा की ओर दृष्टिपात करने से हमें कबीर, दादू, नानक एवं मलूकदास आदि के नाम स्मरण हो आते हैं परन्तु यह अत्यन्त दुःख का विषय है कि इन्हीं संतों की निर्गुण माला की लड़ी का एक मोती हमारी ही असावधानी के कारण गिर पड़ा है। उसकी वाणी में भी वही रहस्य है जो अन्य संतों की वाणी में है। वह भी कबीर के साथ गा उठता है—

'हिन्दू तुरक कवो[1] मत कोई, मूल दुवई[2] का एक सी होई'

यह वाणी संत सिंगाजी की है। आज से लगभग ४४० वर्ष पूर्व संवत् १५७६ मिति वैशाख शुक्ल ११, गुरुवार, पुष्य नक्षत्र में संत सिंगाजी ने जन्म लिया। इनकी माता का नाम 'गउर बाई' और पिता का नाम 'भीमांजी' गवली था।[3] मध्यभारत (राज्य पुनर्गठन के पूर्व का)

१—कहो। २—दोनों का।

३—माता-पिता के नाम और जाति के सम्बन्ध में इनके नाती और शिष्य दलुदास का एक अति प्रचलित पद—

देवो वचन कब आओ हमारे घर देवो वचन कब आओ ।।टेक।।
कोण तेरी माता कोण तेरो पिता कोण घर जलम धरायो।
माता गउर बाई पिता भीमाजी उन घर जलम धरायो।
कि तू गयो रे देश बंगाले की काहुर भणी आयो।
कि थारो देव सुघड़ हूं सामरथ ये मोहे भेद बताओ।
नहीं ये गयो रे देश बंगाले नहीं काहुर भणी आयो।
नहीं म्हारो देव सुघड़ हूं सामरथ यदुवन्सी को हुउ जायो।
कहे अण दलु सुणो भाई साधु कलजुग में मोहे पठायो।
(कोण—कौन, भणी—पढ़ आया, यदुवन्सी—यदुवंशी, हुउ—में, कलजुग—कलियुग, थारो—तेरा, काहुर—जादू)

की बड़वानी स्टेट के एक छोटे से ग्राम खजूरी[1] (दयालपुरा) में ही इनके माता-पिता शुरू से रहते थे और भैंसे आदि पालने का व्यवसाय करते थे। किंवदंती है कि सिंगाजी का जन्म उस समय हुआ, जब उनकी माता गऊर बाई अपने घर से १५-२० कदम की दूरी पर उपले पाथ रही थी। आज भी उस स्थान का महत्व माना जाता है और लोग उसकी पूजा करते हैं। आर्थिक कठिनाइयों के कारण संवत् १५८१-८२ में भीमाजी अपना सारा सामान लेकर खजूरी ग्राम को छोड़ निमाड़ जिले के हरसूद[2] नामक ग्राम में आकर बस गये। धीरे-धीरे सिंगाजी यहीं बड़े हुए और युवावस्था प्राप्त करने पर इनके पिता भीमाजी ने इन्हें भामगड़[3] के तत्कालीन राजा लखमेंसिंग के यहाँ १) माहवार वेतन पर, भामगड़ से हरसूद डाक लाने ले जाने की, नौकरी लगवा दी। सिंगाजी ने अपने एक पद में इस तथ्य का उल्लेख किया है कि वे राजा लखमेंसिंह के यहाँ नौकरी में थे और उनकी कार्यकुशलता एवं ईमानदारी से प्रभावित होकर मालिक ने उनका वेतन १) से बढ़ाकर ३॥) कर दिया था। यह प्रसंग उस समय का है जब सिंगाजी ने, गुरु मनरंगगीर से गुरु दीक्षा लेने के हेतु, नौकरी छोड़ने का अपना निश्चय प्रकट किया था—

तुम हो चाकर ईमानदार बोले लखमेंसिंग सरदार।
हाक-हलाली[4] मादुर[5] कहिये तुमको चाहे सब परवार।

१—खजूरी (दयालपुरा) ग्राम खंडवा से खरगोन जाने वाली सड़क से हटकर, पूर्व में स्थित है।

२—वर्तमान निमाड़ जिले (मध्य-प्रदेश) की एक प्रमुख तहसील—हरसूद। यह बम्बई-दिल्ली मेन लाइन पर स्थित है।

३—निमाड़ जिले की हरसूद तहसील का एक अति प्राचीन ऐतिहासिक स्थान जहाँ भीलाला शासन था और वहाँ के तत्कालीन शासक राव राजा लखमेंसिंग थे। उनके वंशज राव भीमासिंग आज भी हैं।

४—इमानदार। ५—बहादुर।

सबजा तूरी[1] बैठण ख देवां हां रे तुम बांधौ ढाल तलवार।
रोजी वढावां नाम चढ़ावां साड़ा तीन रुपया माहवार।
कहे जण सिंगा सुणो महाराज हमको नहीं माया से दरकार।

इस पद से यह भी ज्ञात होता है कि सिंगा जी केवल डाकिए ही नहीं थे, एक सैनिक (सरदार) भी थे और पाँचों हथियार बाँधकर घोड़ी पर सवारी कर अपना कार्य बड़ी मुस्तैदी से करते थे। इसीलिये प्रसन्न होकर उनके स्वामी ने उनसे नौकरी न छोड़ने का आग्रह किया और वेतन में वृद्धि भी की।

संत सिंगाजी के जीवन और कृतित्व को जानने के लिये जो आधार अपनाए गए हैं उनमें प्रमुख हैं—(१) जन-श्रुति (२) सिंगाजी की 'परचुरी' और (३) सिंगाजी की 'वाणी'।

(१) जनश्रुति : (अ) निमाड़ जिले के अनेक गाँवों में सिंगा-पंथियों का एक विशाल जन-समूह आज भी विद्यमान है। संत सिंगाजी के समाधि-स्थल पर उनके अनेक शिष्य रहते हैं। इनमें से कुछ शिष्यों के पास सिंगाजी की जीवनी, कथाओं और गीतों के रूप में उपलब्ध है, जिसे ये लोग गा-गा कर सुनाते और समझाते हैं। इन कथाओं का आधार इनके अपने पूर्वजों से प्राप्त परंपरानुगत ज्ञान-संग्रह हैं। इन कथाओं में ये लोग संक्षिप्त में सिंगाजी की जीवनी, गुरु-दीक्षा, वाणियाँ और समाधि आदि के सम्बन्ध में बतलाते हैं। ऐसी कथाओं को मैंने सुना है और अपने लिए उपयोगी नोट्स लिए हैं।

(ब) सिंगाजी साहित्य-शोधक मंडल-(सन् १९३६)[2] : निमाड़ जिले के केन्द्र-स्थल खंडवा के कुछ प्रमुख साहित्य प्रेमियों ने मिलकर निमाड़ के महान् संत सिंगाजी के जीवन और कृतित्व का

१—सबजा नाम की घोड़ी।

२—इस संस्था की चर्चा, श्री परशुराम चतुर्वेदी ने 'उत्तरी भारत की संत परंपरा' में संत सिंगाजी के सम्बन्ध में लिखते हुए की है—देखिए पृष्ठ ३८०।

शोधपूर्ण अध्ययन करने के हेतु एक मंडल की स्थापना की थी। इस प्रयास के फलस्वरूप इस संस्था ने सिंगाजी की जीवनी सम्बन्धी एक छोटी-सी पुस्तक (लगभग ४०-४५ पृष्ठों की) प्रकाशित करवाई थी। इस पुस्तक में सिंगा-साहित्य के प्रसिद्ध जानकार स्व० श्री विट्ठलराव पटवारी, मांडला (म० प्र०) के लेख के साथ-साथ मध्य-प्रदेश के वयोवृद्ध साहित्यकार और कवि पं० माखनलाल जी चतुर्वेदी तथा ब्यौहार राजेन्द्र सिंह जी की रचनाएँ भी हैं। अनेक कारणों से यह संस्था केवल यही एक पुस्तक प्रकाशित कर पाई और यह कार्य वहीं रुक गया। सिंगाजी से संबंधित कुछ आवश्यक जानकारी इस पुस्तक में मिलती है।

(२) सिंगाजी की 'परचुरी'[२]:

यह एक अत्यन्त प्राचीन हस्तलिखित पुस्तिका है। इसका रचनाकाल वि० संवत् १६१६ है और इसके रचयिता कोई जन-खेम नाम के व्यक्ति हैं। संवत् १६१६ में ही सिंगाजी ने जीवित-समाधि ली थी। इस ५२ पृष्ठ की परिचयात्मक पुस्तिका में रचयिता ने संत सिंगाजी की जीवनी पर पूर्ण प्रकाश डाला है। उनके जीवन और दर्शन के लिए मैंने इसे एक प्रामाणिक ग्रंथ माना है और इसीलिए इस 'परचुरी' के सम्बन्ध में एक प्रथम अध्याय ही लिखा है।

(३) सिंगाजी की 'वाणी':

यह ८१ पृष्ठों की एक छपी हुई पुस्तक है, जिसके रचयिता और संग्रहकर्ता श्री स्वामी घासीदास जी नामक व्यक्ति हैं जो संत सिंगाजी के परम अनुयायी और प्रेमी रहे हैं। इन्होंने दोहा और चौपाई में सिंगाजी जीवनी की लिखी है। इस पुस्तक का प्रमुख आधार बाबा दलुदास जी के भजन हैं। बाबा दलुदास जी सिंगाजी के नाती और शिष्य थे। इनके भजनों में सिंगाजी के जीवन की अनेक घटनाओं का

२—विशेष विवरण के लिए देखिए इस प्रबंध का—संत सिंगाजी की 'परचुरी' नामक अध्याय।

वर्णन मिलता है। बाबा दलुदास जी के कुछ महत्वपूर्ण भजनों का संकलन इस प्रबंध के परिशिष्ट में किया गया है। इस तरह 'बाबा दलुदास जी के भजन' भी सिंगाजी की जीवनी का एक महत्वपूर्ण आधार बन गये हैं।

इन पुस्तकों में वर्णित सामग्री और जन-श्रुति में कहीं-कहीं बड़ा अंतर है। अतः सिंगा जी के जीवन को पूर्ण रूप से जानने के लिये इन आधारों की सम्यक् विवेचना करना आवश्यक है।

जन्म स्थान और माता-पिता :

'वाणी' नामक पुस्तक में स्वामी घासीदास जी ने सिंगाजी के जीवन चरित्र के सम्बन्ध में निम्न पंक्तियाँ रची हैं—

चौपाई : आदि पुरुष जब किया बिचारा। दुखी जीव सब देखन अपारा॥
भारत भूमि पाप रहा छाई। संत रूप धर करों सहाई॥
देश गोंडवाना बहु दुख पावै। गौ को जोते भूमि बनावै॥
हिंसा करैं गौ जो मारैं। चारों वर्ण कर्म अस धारैं॥
सतलोक में हंस बुलाये। जीव उबारन हेतु पठाये॥
शृंगी ऋषि अवतार है भाई। सिंगाजी नाम धर भक्ति दृढ़ाई॥
सत धर्म की बांधी मरयादा। दया भक्ति और ज्ञान अगाधा॥[१]

इन पंक्तियों में सिंगाजी को एक ऐसा अवतारी पुरुष[२] बतलाया गया है जो इस पृथ्वी के कष्टों को दूर करने के लिए इस संसार में प्रकट हुए थे। इसी प्रसंग में आगे संत सिंगाजी के जन्मस्थान, जन्म-काल और माता-पिता के नाम आदि का वर्णन तथा उनकी नौकरी पर लगने का हाल भी मिलता है—

१—सिंगाजी की 'वाणी'—पृष्ठ ५।

२—इन्हें शृंगी ऋषि का अवतार कहा है।

दोहा : नगर पीपला प्रगट भये सिंगा सूर।
अधम जीव उद्धारिया कीनी भक्ति अपूर'।
जन्म खजूरी में भयो गौली घर अवतार।
माता गौरा को पय पियो हरो भूमि को भार।
जन्म समय लीला करी, सुनो संत चित लाय।
माता जानि प्रसूत की, जगह में पहुँची आय॥
कुचों से धारा बही दूध भयो पाषान।
पाये खेलत प्रभु को अचरज भयो महान।

चौपाई : कौन पुरुष अवतार है भाई। लीना गोदी तुरत उठाई॥
माया डारी मति भुलाई। गोदी लेकर पय पिलाई॥
ऐसे चरित्र कीने अपारा। चला पंथ भई जय जयकारा॥
सम्वत् पन्द्रह सौ छहत्तर जानी। जन्म भयो खजूरी बड़वानी॥
बैसाष सुदी नौमी सारा। प्रगट भये दिन बुधवारा॥
वहाँ से चलकर आये हरसूद। करी नौकरी प्रगटे हजूर॥[1]

आध्यात्मिक जीवन का सूत्रपात और गुरु-दीक्षा :

सिंगाजी अपने बाल्य-काल से ही सांसारिक प्रपंचों के प्रति उदासीन रहते थे। माता-पिता के बहुत आग्रह करने पर वे अपनी भैंसों के साथ जंगल में प्रकृति की निश्छल छाया में घूमते रहते थे। इसी कारण युवावस्था प्राप्त करने पर, इनके माता-पिता के कहने पर इन्होंने भामगढ़ के तत्कालीन राजा लखमेंसिंह के यहाँ नौकरी कर ली। यह सम्वत् १५६८ की बात है जब सिंगाजी की उम्र लगभग २४ साल की थी।

सिंगाजी अपने मालिक के यहाँ डाक लाने ले जाने का काम करते थे किन्तु अपने मालिक की दृष्टि में ये केवल डाकिये ही नहीं थे बल्कि एक परिवार के सदस्य के रूप में इनका सम्मान था। इसका

१. सिंगाजी की 'वाणी"—पृष्ठ—५।

कारण सिंगाजी के अनेक ऐसे आश्चर्यजनक कार्य हैं जिनके कारण इनके स्वामी का, अनेक कठिनाइयों में, बड़ा लाभ हुआ था। अनेक किंवदन्तियों में इनके अनेक आश्चर्यजनक चमत्कारों की चर्चा मिलती है।

वैसे तो इनके जीवन और नौकरी के समय की अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं किन्तु इनके सच्चे आध्यात्मिक जीवन का सूत्रपात तो उस दिन हुआ जिस दिन ये अपनी घोड़ी पर सवार भामगढ़ से हरसूद डाक ले जा रहे थे। उसी मार्ग में भैसांवाँ ग्राम के निकट इनके कानों में मनरंग स्वामी के मुख से ब्रह्मगीर की यह वाणी गूँज उठी—

"समुझि लेवो रे मना भाई, अन्त न होय कोई आपणा।"

सिंगाजी रुक गये और एकाग्र चित्त होकर उपरोक्त पद को सुनते रहे। उन्होंने इस पद को सुनकर सोचा कि जब अन्त समय कोई किसी का नहीं रह जाता तो संसार के इस माया-जाल से क्या लाभ। वे तुरन्त घोड़ी से उतर मनरंगगीर महाराज के चरणों में गिर पड़े और बोले—"मुझे अपने चरणों का दास समझ कर गुरु-दीक्षा दीजिए।" मनरंगगीर ने इनकी बात सुनी और इन्हें समझाते हुए कहा—"तुम गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए सांसारिक प्रपंचों में पड़े हुए हो। तुम्हें इस झगड़े में नहीं पड़ना चाहिए"[1]

इनके जीवन की, "आत्म ज्ञान और गुरु-दीक्षा," सम्बन्धी घटना के प्रसंग का वर्णन उनकी जीवनी की पुस्तक "परचुरी" में विस्तृत रूप और रोचकपूर्ण ढंग से किया है। अन्तर केवल इतना है कि इस प्रसंग में सिंगाजी का मनरंगगीर से साक्षात्कार, डाक ले जाते हुए न बतला कर, किसी सम्बन्धी के यहाँ जाते समय, होना बतलाया है। "परचुरी" में बतलाया है—"जब सिंगाजी अपने किसी सम्बन्धी के घर जा रहे थे तब उन्हें हरि गुणगान करते हुए मनरंगगीर स्वामी

१. "परचुरी"—पृष्ठ १–५।

की वाणी सुनाई पड़ी ।"[१] इस प्रसंग का वर्णन परचुरी में इस प्रकार है[२]—

एक समे गिणात के घर पगरण[३] होई। ताकों नोवतो[४] पोहचो आई।
निवता की संग तहाँ चलकर आये। साँझ-समे पौहचां थाये।
उतते आये मनरंग देवा। हरी गुण गावे निरगुण भेवा।
तिने सूरत[५] समानी काना। सिंगाजी के मन उपजो ग्याना।
पात्रा मोहोर हाम भवत बजाया। गाई मथवाड़ भोपा घुमाया।
जोगी जती हाम भवत सेया। ऐसा गुण तो कोई नहीं कह्या।
जनम हामारो अहेला[६] गया। हरी भक्ति को मरम न लह्यो।
कीजै गुरु बतावै पंथु। अखंड सुहाग मिले हरी सो कंथु।

सिंगाजी ने जब मनरंगगीर की उद्बोधक वाणी को सुना तो उनके मन में ज्ञान उत्पन्न हुआ और उन्होंने मनरंगगीर से कहा कि हमने अभी तक केवल व्यर्थ का भजन किया है। पाखंडी साधुओं की पूजा की है। अत: अब हमें गुरु-दीक्षा देकर मार्ग दर्शन कीजिए।

यह सब सुन कर मनरंगगीर ने सिंगाजी की ओर देखा और कहा-"जिस मार्ग पर तुम चलना चाहते हो वह बड़ा कठिन मार्ग है और मनुष्य का मन बड़ा चंचल है। इस मन को मारना असम्भव है।"

"सुणी स्वामी प्रती उत्तर दीयो। उपदेश न लागे काहू को कह्यो।
यो मन महन्त मरे ना भाई। कठण करणी राम से सगाई।

मनरंगगीर के उपरोक्त शब्दों को हृदयंगम करते हुए सिंगाजी ने नौकरी छोड़ कर गुरु करने का निश्चय किया। अपने मालिक के

१. वही, पृष्ठ १–५।
२. वही, पृष्ठ १–५।
३. पंगती।
४. निमंत्रण।
५. वाणी।
६. व्यर्थ।

दरबार में पहुँच कर उन्होंने सारे हथियार उतार दिये और नौकरी छोड़ कर गुरु-दीक्षा लेने मनरंगगीर के पास जा पहुँचे और विनय-पूर्ण शब्दों में प्रार्थना की—

आब दया करो मेरे सतगुरु साईं। देवो उपदेस आपणो कर लेई।
हाउं आनाथ मोहे प्रेम सुख दीजौ। तुम बीना न जाणु दूजों।

सिंगाजी की प्रार्थना को सुन मनरंगगीर ने समझाते हुए कहा कि प्रेम भक्ति कोई अच्छी बात नहीं है। फिर भी यदि तुम्हें उपदेश की आशा हो तो माया के संसार के प्रति उदासीन हो जाओ—

तब मनरंग बोले नीरमल वाणी। प्रेम भक्ति ना रहे छानी।
जो तुमखुं होये उपदेश की आसा। तजी माया मन फीरो उदासा।
तुम तो चाकरी के पेशा। तुम कैसा लागे उपदेसा।
जात का गवली मन का मैला। वाल विछोड़ा डारत हैला॥"

इसके उत्तर में सिंगाजी ने नम्र निवेदन किया कि मैं यह सब कुछ नहीं जानता। मैं तो अब तुम्हारी शरण में आ गया हूँ। मैं तो मूर्ख और हीन-मति हूँ और आपकी ये रहस्यपूर्ण वाणी कैसे समझ सकता हूँ। तुम तो मेरे लिये मुक्ति के दाता हो और मुझ जैसे अनाथों के नाथ हो। मैं तो केवल यह जानता हूँ कि नामदेव और कबीर जैसे महान पुरुष भी गुरु की शरण में आकर ही सफल हुए हैं। आप मेरे स्वामी हैं, मुझे दीक्षा दीजिये और अपना सेवक समझ कर अपनाइये—

"तुम हो स्वामी मुक्ति के दाता। सतगुरु आनाथन के नाथा।
नामदेव कबीर आये गुरु की सरणा। और ना की काहा कहू बरणा॥
चार बरण की कही न जानो। साचो सबद तुम्हारो मानो।
अब स्वामी दछा[1] मोहे दीजो। सेवक जाण आपणो करी लीजो॥

ऐसी विनम्र वाणी को सुन मनरंगगीर अति प्रसन्न हुए और उन्होंने सिंगाजी को अपना शिष्य बना लिया। दीक्षा प्राप्ति के पश्चात् सिंगाजी संतुष्ट हुए और पहली बार गुरु महिमा-गान निम्न शब्दों में किया—

---

१. दीक्षा।

"करी कृपा दीना उपदेसँ। तजो माया भयो नीरगुण भेस।
मनरंग स्वामी परमारथ कीनो। भये कृपाल मस्तक हात जो दीनो॥
तीन लोक में सतगुरु दाता। जाकी माया सब जुग खाता॥
सतगुरु हे देवन के देवा। आजरा आंमर जाकी सेवा॥

जनश्रुति के अनुसार गुरु-दीक्षा प्राप्ति की इस घटना का वर्णन कुछ भिन्न है। गुरु-दीक्षा की प्रार्थना के उत्तर में जब मनरंगगीर ने सिंगाजी से कहा कि तुम तो गृहस्थ हो और तुम्हें दीक्षा नहीं मिल सकती, तब सिंगाजी अपने घर वापस गये और अपने मालिक के सामने, गुरु करने और नौकरी छोड़ने का अपना निश्चय बतलाया—

नहीं माया के संत कोई भूके॥ टेक॥
अब तक सिपाही बणकर झूके।
जुग सवा[1] हो हमने करी हो चाकरी।
तब तक तुमको झुके॥
काम क्रोध हम राखें बगल में।
तुम देखो नजरा भर के।
झूठा था धन धाम कबीला।
अब तो सरणा रहे गुरुजी के॥
कहे जण सिंगा सुणो भाई साधु।
अबका अवसर हाम नहीं हुके॥

नौकरी छोड़कर सिंगाजी गुरु मनरंगगीर के स्थान पर आये और उन्हें ध्यानावस्था में देख निम्न शब्दों में प्रार्थना की—

सदा सरण सुख पाऊँ फिर भवरी न भव जल आऊँ॥ टेक॥
निंद्रा आहार तज्यो रे म्हारा सामरथ तुम्हारी मुरती म सुती मिलाऊँ॥
तज्यो परिवार न छोड़ी दो चाकरी अंब तो तुम्हारो कव्हाऊँ।
जसी पपैया[2] अखंड धुन मांड[3] अयेसो सबद सुणाऊँ॥

---

१. एक युग = १२ साल (सवा युग = १५ साल)
२. पपीहा। ३ रटता है।

इस प्रार्थना को सुनकर मनरंगगीर का ध्यान टूटा और उन्होंने सिंगाजी को गोद में लेकर दीक्षा दी। साथ ही सिंगाजी की प्रेम विह्वलता और त्याग की भावना देखकर गुरु ने निम्न भजन में, सिंगाजी की प्रशंसा की, जिसमें शिष्य को गुरु से बड़ा बतलाया है—

बात करी भव हारी न सिंगा जी, सबद धरै चित धरी न।
गुरु उपदेस लेण ख आयो तू, वाचा मनसा करी न।
बहुत कथो न बहुतक समझायो, तुन नई मानी आयो फिरी न।
भाई बंद परवार ख तज्यो रे तुन, तजि दियो सुत गौरी न।
मोह ममता माया विसराई, जे न जन की तरास नीवारी न।
कहे मनरंग सुणो भाई सादु, गुरु सी चेलो हुयो बढ़ी न।

उपरोक्त घटना के अनुसार उनकी गुरु दीक्षा प्राप्ति का संवत् १६१५ निश्चित होता है। इस समय सिंगाजी की अवस्था लगभग ३९ वर्ष की थी, क्योंकि संवत् १५९८ में उन्होंने नौकरी शुरू की थी और जुग-सवा[1] अर्थात सवा जुग या युग अर्थात १५ वर्ष नौकरी की। इस तरह इन्होंने २४ साल की अवस्था में नौकरी शुरू की और १५ साल बाद ३९ साल की अवस्था में इन्होंने नौकरी छोड़कर गुरु-दीक्षा ली।

संत-जीवन और समाधि :

गुरु-दीक्षा प्राप्ति के पश्चात् सिंगाजी का सच्चा संत जीवन प्रारंभ होता है। उक्त घटना के बाद सिंगाजी ने पीपल्या के जंगलों में (हरसूद तहसील में वर्तमान संत सिंगाजी का समाधि स्थल) अपना डेरा डाला और निगुण धारा के पद गा-गाकर जन-कल्याण करते रहे। इसी समय में वहाँ इनके अनेक शिष्य भी बन गये और इस तरह इनके उपदेशों का प्रचार हुआ। किन्तु यह जानकर आश्चर्य होता है कि इनके संत-जीवन की अवधि केवल ११ महीने की है, क्योंकि गुरु मनरंगगीर की आज्ञा से इन्होंने गुरु-दीक्षा के एक वर्ष के अनंतर ही जीवित

---

१. देखिये—नौकरी छोड़ते समय का भजन—"नहीं माया के संत कोई भूके।"
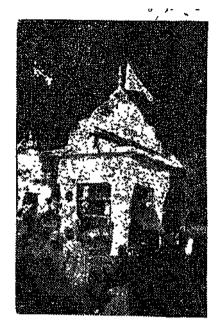
पीपल्या (तहसील हरसूद) में
संत सिंगा जी की समाधि
—मेले के अवसर पर हजारों
श्रद्धालु तीर्थ यात्री अपनी
श्रद्धांजलि अर्पित करने को
तत्पर हैं।

सिंगा जी की समाधि-स्थल पर स्थित समाधियाँ बायें से दायें—

(१) दलुदास की समाधि (बीच में) संत सिंगा जी की समाधि

(३) बुखारदास बाबा की समाधि

समाधि ले ली। जनश्रुति और इनके शिष्य दलुदास के पदों में समाधि की घटना का वर्णन मिलता है।

सन्तवर सिंगाजी श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर अपने गुरु मनरंगगीर के पास ही थे। जन्माष्टमी की रात्रि को जब मनरंगगीर को नींद आने लगी तो उन्होंने सिंगाजी से कहा कि—सिंगा, मैं तो सोता हूँ किन्तु मुझे कृष्ण-जन्म के समय अर्थात अर्धरात्रि के लगभग जगा देना। सिंगाजी ने, प्रतिवर्ष भगवान के जन्म लेने की बात को कोरा अंध-विश्वास और पूजा-पाठ को मिथ्याडंबर समझकर उक्त समय पर, अपने गुरु को नहीं जगाया। गुरु जागे और अवज्ञा करने के अपराध में गुरु ने इन्हें बड़ी सख्त सजा सुनाई—"जा दुष्ट, आगामी अष्टमी तक मुझे मरा मुँह दिखाना।"

सिंगाजी गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर अपने स्थान पर आ गये और उस दिन के ६ महीने बाद संवत् १६१६ की श्रावण शुक्ला नवमी को उन्होंने जीवित समाधि ले ली। जब गुरु मनरंगगीर ने समाधि लेने का यह वृतान्त सुना तो बड़े दुखी हुए और उन्होंने अपने क्रोध की बड़ी भर्त्सना की। वे सोचने लगे कि सिंगाजी जैसे हीरे को मैंने खो दिया—

"दुष्ट मोहे क्रोधानल कहाँ से आयो, मन हाथ को हीरो गमायो।"

उपाधि लेने की उक्त घटना का वर्णन सिंगाजी के पौत्र दलुदास के एक "पद" में मिलता है—

गुरु महिमा धन-धन जग माहिं। गुरु बिन तीरथ अरु दूजो नाहिं॥ टेक॥
गुरु मनरंग न अष्टमी कराई। सीख साखा सब लीया हो बुलाई॥
रच्यो रास हो भीड़ भई भारी। नर नारी सब कर गुल ख्यारी॥
कस्न राधिका रूप बनायो। नम्रलोक सब देखण आयो॥
गुरु न आसण दीयो लगाई। सिंगाजी कुठ हेल फुरमाई॥
जब रे सुहांगी न सुहांग लई आयो। सिंगाजी का मन बहु क्रोध जो आयो॥
चढ़यो चन्द्रमा घड़ी दुई चार। सिंगाजी न गुरु कुं नहीं पुकार॥
गुरु उठ बैठ्या आप ही आपा। सिंगाजी को दिया हो सरापा॥
सिंगाजी दौड़ी लाग गुरु का पाई। म्हारी जो मुक्ति को संसय दियो मिटाई

जन्म अष्टमी अयं भणी आवो। मुआं मुख हम कुं वितलाओ॥
नव दस मास बीती गया भाई। गुरु मनरंग कुं चेत न आई॥
श्यामगीर को लिया हो बुलाई। लई पत्रिका पीपले पठाई॥
कहे जण दलु सुणो भाई सादु। कुटुम संमेत सब लिया हो बुलाई॥

बाद में इस प्रकार की भी कथा है कि जब गुरु मनरंगगीर, सिंगाजी के घर वालों से मिलने आये तो पीपल्या के जंगलों में उन्हें सिंगाजी दिखे थे और उन्होंने इस तरह गुरु का वचन पूरा किया। गुरु ने कहा था—"जा मुझे मरा मुँह दिखाना।"

"परचुरी" में समाधि लेने की घटना का वर्णन मिलता है किन्तु उसमें समाधि लेने का कारण गुरु की अवज्ञा न बतलाकर यह बतलाया है कि सिंगाजी ने अपने आप समाधि लेने का निश्चय किया था। अपने समाधि के निश्चय को कार्यान्वित करने के पूर्व ही सिंगाजी को उनके गुरु मनरंगगीर का भी संदेशा मिला कि अब सिंगाजी को समाधि ले लेना चाहिए। यथा--

"येक समैये स्वामी सरण वीचारी। आभीपद मन माही धारी॥
जाये मीले आपणे परीवारा। तजी माया मोहा पसारा॥
जन सिंगा येऊ उबरे। पख पहेले मालूम करे॥
तब मनरंग कह्यो पठाई। श्रावण सुदी छूटै देही॥
पुरण मासी के दिन निकसे गात। कही पठायो सीख के हाथ॥"[1]

इस संदेश को सुनकर सिंगाजी अति प्रसन्न हुए और श्रावण शुक्ल नवमी को सिंगाजी ने समाधि लेने का अन्तिम निर्णय दिया—

गुरु के पास से संदेशो आयो। सिंगा स्वामी मन आनन्द पायो॥
गुरु को सबद मानी लीयो। सीस नवाय दण्डव्रत कीयो॥
गुरु को सबद मानी लीजै। पुरण मासी पहेले काम जो कीजै॥
श्रावण सुदी नवमी सार। ता दीन स्वामी न कीयो विचार॥[2]

समाधि के समय का आँखों देखा हाल, परचुरी-कार ने बड़े

१. "परचुरी" पृष्ठ ३६–३७। २. वही, पृष्ठ ३७।

ही मार्मिक ढंग से, लिखा है--"सिंगाजी की समाधि-अवस्था को देखकर ऐसा लग रहा है मानो एक ज्योति दूसरी ज्योति में समा गई है और उसका प्रकाश द्विगुणित हो उठा है। किन्तु दूसरी ओर सिंगाजी को समाधि में जाते देख उनका सारा परिवार, शिष्य तथा प्रेमी जन बिलख-बिलख कर रो रहे हैं"--

भयो स्वामी आन्तरध्यान। नीकसी जोत जोत मा समान॥
रोवे कुटुम कबेलो घर। नार सीख साखा आदिक अपार॥[1]

"परचुरी" में वर्णित समाधि का प्रसंग स्वाभाविक लगता है जब कि जनश्रुति पर आधारित प्रसंग अप्रत्याशित और अस्वाभाविक मालूम होता है। कदाचित् सिंगाजी के प्रेमियों ने सुनी सुनाई बात को "गुरु की अवज्ञा" के रूप में लिखकर, इस प्रसंग को और भी रहस्यपूर्ण और रोमांचकारी बनाने के लिए ऐसी कथा गढ़ ली होगी, ऐसा मेरा अनुमान है।

जनश्रुति और "परचुरी" में किंचित् विभिन्नताएँ होने पर भी एक बात निश्चित हो जाती है कि सिंगाजी का आध्यात्मिक या संत जीवन केवल १ वर्ष का था और उन्होंने संवत् १६१६ में देह त्याग कर समाधि ले ली थी। "निमाड़ डिस्ट्रिक्ट गजेटियर" में सिंगाजी की चर्चा की गई है जिसमें उनका समाधि-काल (मृत्यु-काल) ई० सन् १५६० बतलाया है, जो संवत् १६१६ के लगभग हो जाता है। इस प्रसंग में सिंगाजी की प्रशंसा में उनके चमत्कारों की चर्चा भी मिलती है।[2]

---

१. "परचुरी", पृष्ठ ३८।

2. Singaji was a member of Gaoli caste who is supposed to have died in about 1560. His piety was such that he was raised from the dead. If people get lost in the forest, they should call upon his name and in a short time he will appear in guise of a Gond or Bhil and guide them into the proper path. Another story told by him is that on one occasion the cattle were stolen by thieves, who carried them off to the jungle. But Sing-

सिंगाजी का १ वर्ष का आध्यात्मिक जीवन :

उपरोक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि सिंगाजी का आध्यात्मिक या सन्त-जीवन केवल एक वर्ष का था। संवत् १६१५ में गुरु मनरंगगीर ने उन्हें दीक्षा दी और संवत् १६१६ में उन्होंने समाधि ले ली। इस एक वर्ष के समय में वे कहाँ-कहाँ रहे और उन्होंने क्या किया, इन सब प्रश्नों का उत्तर 'परचुरी' में मिलता है।

गुरु-दीक्षा के पश्चात् सिंगाजी को संसार से एकदम विरक्ति हो गई और जब उन्हें गुरु ने अपने घर चले जाने का आग्रह किया तब उन्होंने कहा कि मैंने अपना घर पा लिया है और तुम ही मेरे माता-पिता, गुरु और देवता हो। तुम्हारे बिना सब झूठा है। सिंगाजी ने संसार को सकल माया का फंदा बतलाते हुए कबीर की तरह कनक और कामिनी की सेवा करने वाले को नर-अंधा कहा। माया का जो वर्णन उन्होंने गुरु के सामने किया वह उनके ही शब्दों में सुनिये—

सींगा कहे घर मेरो मे पायो। आवहू सरण तुम्हारे आयो।
तुम ही मात पीता गुरु देवा। तुम बीना झूठी सब सेवा।
और सकल सब माया के फंदा। कनक कामिनी सेवे नर अंधा।
माया ठगोरी ने सब जुग खाया। देव ब्रह्मा सबही नचाया।
ले डूबी कुल संमेता। और ना की का कहू बाता।
माया की संग हूं बहू दुख पायो। जाते सरण तुम्हारे आयो।[१]

फिर भी सिंगाजी अपने घर वापिस आये किन्तु उन्हें घर के काम काज में कोई रुचि नहीं रही थी। इससे उनके माता-पिता बड़े परेशान

---

aji by the force of his prayers made the thieves go blind in the forest and in this predicament they laid hold of the buffalos' tails by which to guide themselves. But the buffaloes, attracted by Singaji's songs, went home to their stables.

—Nimar District Gazetteer. p. 257.

१—'परचुरी'—पृष्ठ ५।

हुए और समय-समय पर उन्होंने सिंगाजी को भली-बुरी बातें भी सुनाईं, जिसका उन पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा।

इसके बाद, यद्यपि सिंगाजी तीर्थ आदि को आडंबर समझते हुए भी अपने शिष्यों के साथ मांधाता तीर्थ (ॐकारेश्वर) गये और वहाँ भी उन्होंने अनेक चमत्कारों से सबको आश्चर्य में डाल दिया।

मांधाता से लौटने पर सिंगाजी निर्गुण-मत के अनुयायी बन गये और उन्होंने सबसे नाता तोड़ दिया। वे हरसूद छोड़कर पीपल्या[१] (स्थान—सिंगाजी का समाधि-स्थल जहाँ अब मेला लगता है) आ गये। सिंगाजी ने पीपल्या आकर अपने शिष्यों के द्वारा अपने मत का प्रचार करना प्रारम्भ किया। उनके पीपल्या आने के सम्बन्ध में निम्नलिखित साखी मिलती है—

घन मूँदी घन परगना घन संतन का गाँव।
सिंगाजी के राज में सिंघ चरावे गाय॥
चोर न चोरी करी सक चुगल न चुगली खाय।
सिंगाजी न पावन कर्यो नगर पीपल्यों गाँव॥
हम जात का गवली बेचा दही और ताक।
सतगुरु की करपा भई तो चाख्या अमृत दाग॥

कहते हैं कि इसी स्थान पर उन्हें ब्रह्म-ज्ञान उत्पन्न हुआ और फिर वे दिन-रात अपने भजन-कीर्तन में लीन रहने लगे। इसका वर्णन 'परचुरी' में निम्न शब्दों में मिलता है।[२]

करे कीरतंन नीरंत्र नाचे। भीत मोडे आंग।
पाच पचीस संग कर लिया। सो नावे नीरगुण की संग॥

१—खंडवा-इटारसी मेन रेलवे लाइन पर एक स्टेशन, जहाँ पैसेंजर ट्रेन ठहरती है। यह गाँव निमाड़ जिले की हरसूद तहसील के अन्तर्गत है।

२—"परचुरी"—पृष्ठ १६।

स्वामी लागो हारी का ध्याने। लोकं वेद की आठक न माने।
होये मगन नीसंक कर गावे। देव द्रष्ट आंतरगत लावे ॥

सिंगाजी के इस अल्प- जीवन की अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाओं का वर्णन 'परचुरी' में किया गया है। इसके बाद यह समझकर कि अब उनका काय समाप्त हो गया है, उन्होंने जीवित-समाधि लेने का निश्चय किया जिसका वर्णन पिछले पृष्ठों में किया गया है। समाधिस्थ होने के पश्चात् भी इन्होंने कुछ प्रेमियों को दर्शन दिये। कहा तो यहाँ तक जाता है कि एक बार अपने गुरु मनरंग स्वामी को भी इन्होंने पीपल्या के जंगलों में दर्शन दिये थे, किन्तु जब मनरंग स्वामी गाँव में आये तो उन्हें ज्ञात हुआ कि सिंगाजी समाधिस्थ हो गये हैं।

जीवित-समाधि ले लेने के कुछ दिनों बाद सिंगाजी ने अपने एक शिष्य को जिसका नाम नारायण बतलाया गया है, दर्शन देकर उसे आदेश दिया कि अब उन्हें समाधि से निकाल लिया जाये और एक अच्छी समाधि (मंदिर) बनवाकर उसमें उनके शरीर को रख दिया जाय। उनके आदेशानुसार ऐसा ही किया गया और उनकी समाधि आज भी उसी स्थल पर स्थित है।

भजन और "दृढ़ उपदेश"

सन्त सिंगाजी ने दीक्षा प्राप्ति और समाधिस्थ होने के बीच के १ वर्ष के अल्पकाल में अपने सिद्धान्त के प्रतिपादन और जन कल्याण हेतु कई भजन गाये जो कि उनके सम-कालीन शिष्यों ने लिपिबद्ध कर दिये। इनके कुल भजनों की संख्या ८०० बताई गई है। ये सभी भजन निर्गुणधारा के हैं तथा इनमें से कुछ भजन (करीब ८५) समाधि के समय के गाये हुए बतलाये गये हैं। साथ ही इन्होंने दोहों में 'दृढ़ उपदेश' की रचना भी की है। यद्यपि उनके भजनों की संख्या ८०० बतलाई गई है किन्तु बहुत प्रयास करने पर भी और अनेक सिंगा-पन्थियों से व्यक्तिगत रूप से मिलने पर भी लगभग १०० भजनों से

अधिक एकत्र नहीं हो पाये हैं*। मैंने सिंगाजी के समाधि-स्थल पर रहने वाले उनके शिष्यों और अनुयायियों से इस विषय पर बातचीत की, उनका कहना है कि सिंगाजी के ८०० भजन तो कहीं भी नहीं मिल सकते। मैं सिंगाजी के भजन गाने वाले मंडलों के व्यक्तियों से भी मिला। इन मंडल वालों के पास भी इससे अधिक भजन नहीं हैं। इस बात के दो कारण प्रतीत होते हैं। पहला तो यह कि सिंगाजी के इससे अधिक भजन थे ही नहीं। लोगों ने अनुमान से यह संख्या निर्धारित कर ली है। और दूसरा यह कि सिंगाजी के भजन कहीं भी एक व्यक्ति के पास या एक पुस्तक के रूप में लिपिबद्ध या संग्रहीत नहीं हैं। अतः जो भजन प्राप्त हो पाये हैं उन्हीं से संतोष करना पड़ता है।

सिंगाजी ने कबीर आदि संतों की तरह 'दोहा' शैली में 'दृढ़ उपदेश' की रचना की है। यह 'दृढ़-उपदेश' लिखित रूप में उपलब्ध है और इसमें उन्होंने उपदेश के साथ-साथ अपने जीवन-दर्शन और विचार पद्धति का बड़ा ही रोचक वर्णन किया है। इस 'दृढ़-उपदेश' की एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति मुझे प्राप्त हुई है। इस प्रति का अनुशीलन, 'संत सिंगाजी का' 'दृढ़-उपदेश' शीर्षक से सिंगाजी की रचनाओं के अध्याय में किया गया है।

चमत्कार और किंवदंतियाँ :

अन्य संतों की भाँति संत सिंगाजी के विषय में भी अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। कहते हैं जन्म के समय पैदा होते ही ये पैरों पर खड़े हो गये थे। एक बार हरसूद के निकट के किसी गाँव में एक गाय कुएँ में गिर कर मर गई थी। लोगों के आग्रह पर इन्होंने उस मृत गाय को कुएँ से निकालकर पुनर्जीवन प्रदान किया था। नौकरी के समय की एक घटना का वर्णन इनके किसी भक्त ने एक भजन में किया है। उस भजन के अनुसार इन्होंने अपने मालिक के यहाँ चोरी करने वाले चोरों को पकड़कर उन्हें अपनी अलौकिक शक्ति से अंधा बना दिया था और फिर अपराध स्वीकार करने पर उन्हें आँखों की ज्योति प्रदान की थी।

'परचुरी' में भी इनके जीवन की जैसी अनेक घटनाओं का वर्णन है, जो आज हमें भले ही मिथ्या लगे किन्तु उनके प्रेमियों और भक्तों के लिए तो वे श्रद्धा का कारण बनी हुई हैं। एक ही समय दो स्थानों पर उपस्थित रहना, मांधाता में साधुओं और विरोधियों को पराजित करना, समाधि के पश्चात् भी अपने प्रेमियों को दर्शन देना और खोये हुए बालक को ढूँढकर वापिस देना कुछ ऐसी घटनाएँ हैं जो सन्त के जीवन की अलौकिक शक्ति का परिचय देती हैं।

सिंगाजी का परिवार :

संत और गृहस्थ के परिवार में बड़ा अन्तर है। गृहस्थ सिंगाजी के संत सिंगाजी हो जाने पर तो इनका परिवार बड़ा व्यापक बन गया था। अनेक शिष्य, भक्त तथा अनुयायी ही इनका परिवार था। किंतु जहाँ तक गृहस्थ सिंगाजी के परिवार का प्रश्न है, उसमें इनके माता पिता, भाई बहन, पत्नी, पुत्र, पौत्रादि सब ही थे। इनके प्रमुख शिष्यों में, इनके पौत्र दलुदास का नाम आज भी बड़ी श्रद्धा से लिया जाता है। महात्मा दलुदास ने संत सिंगाजी के सम्बन्ध में अनेक भजन बनाये और उन्हें ही अपना गुरु माना है। संत सिंगाजी की समाधि के पास ही दलुदास की समाधि बनी हुई है।

संत सिंगाजी का परिवार

पिता—भीमाजी गवली
माता—गऊर बाई

लिम्बाजी | सिंगाजी (पत्नी—जसोदा) | किसनाबाई (बहन)

सिंगाजी के पुत्र: कालू | भोलू | सदु | दीपू

कालू
दलुदास
(सिंगाजी का पौत्र)

इमें सिंगाजी के परिवार के व्यक्तियों की उपरोक्त नामावली का वर्णन "परचुरी" में मिलता है। यह नामावली सिंगाजी के समाधिस्थ होने के प्रसंग में लिखी गई है, जब सिंगाजी को समाधि में जाते देखकर उनका सारा परिवार रोता है[१]—

> बड़ो जेठी लींबाजी भाई। जीन सिंगाजी कुंठहेल फुरमाई।
> जननी जसोदा सिंगाजी की नार।
> कालू भोलू चारु सुंत। संदू दीपू नान्हा पूत
> ढुलमुल ढुलमुल नारायण रोवै। कीसना बाई के आसु न आवे
> रंगु वैण काका की बैठी। सोही सीस पटक लट छूठी।

गुरु परंपरा :

गुरु परंपरा को देखने से ज्ञात होता है कि उनके गुरु मनरंगगीर थे जो कि गुरु ब्रह्मगीर के शिष्य थे। सिंगाजी के समाधि-स्थल से जो गुरु-परंपरा प्राप्त हुई है उसे आगे उसी रूप में दिया जा रहा है—

संत सिंगाजी की 'परचुरी'

निमाड़ के सन्त कवि सिंगाजी की जीवनी से सम्बद्ध एक परिचयात्मक ग्रन्थ "परचुरी" नाम का है जिसकी रचना खेम नामक किसी सन्त ने संवत् १६१६ वि० में की थी।[२]

इस 'परचुरी' की विशेष चर्चा करना इसलिए आवश्यक प्रतीत हुआ कि इसके अध्ययन के बिना संत-सिंगाजी के व्यक्तित्व, उनकी विचारधारा, दर्शन तथा उन पर पड़े हुए आध्यात्मिक प्रभाव को नहीं समझा जा सकता। परचुरीकार ने इसमें संत-सिंगाजी की जीवनी पर

---

१. "परचुरी"—पृष्ठ १४,४६ और ३७।

२. परचुरी, पृष्ठ ५१/६—१; कहे खेम सुणो नरलोई
सींगाजी की परचुरी पुरी भई
सतगुरु परचे जन खेम जो कही।

प्रकाश डालते हुए उनकी विचारधारा और पूर्ववर्ती प्रभाव के सम्बन्ध में सिंगाजी के स्वकथन ही रख दिये हैं। ये कथन कहीं स्वानुभूति की अभिव्यक्ति के रूप में हैं और कहीं संवादों के रूप में।

इसको पढ़ने से ऐसा लगता है कि परचुरीकार संत-सिंगा के साथ रहा है और इस निकट सम्पर्क के द्वारा उसे सिंगा की जीवनी का परिचय मिलता रहा है। इसी परिचय को रचयिता ने पुस्तक के रूप में लिखकर इसका नाम 'परचुरी' रख दिया है।[१] 'परचुरी' शब्द 'परचना' (=परिचय प्राप्त करना) से व्युत्पन्न ज्ञात होता है। संत-साहित्य के गुटकों में 'परचई' अथवा 'परचुरी' शब्द का प्रयोग किसी प्रसिद्ध संत की जीवनलीला का परिचय कराने वाले ग्रन्थ के लिए होता है।

जिस प्रति से प्रस्तुत निबन्ध की सामग्री ली गई उसमें यद्यपि लिपि-काल नहीं दिया है, किन्तु देखने से वह काफी प्राचीन मालूम पड़ती है। इसका अनुमान इसके कागज, स्याही और लिपि से लगाया जा सकता है। हाथ से बनाये हुए कागज पर, बरू (=लकड़ी की कलम) से यह लिखी गई जान पड़ता है। इसका कागज एकदम जर्जरावस्था में है किंतु इसकी लिखावट बिलकुल स्पष्ट और चटकीली है। प्रारंभ और अन्त के तीन या चार पृष्ठ फटे हुए हैं। उनके टुकड़ों को जोड़कर सामग्री को पढ़ा जा सकता है। लिखने के लिए काली और लाल स्याही का उपयोग किया गया है। इसका आकार ७½"-५" है और यह आड़े पृष्ठों में (प्राचीन पोथी-पत्रा की तरह) लिखी गई है। इसको रचयिता ने 'साखी' और 'चौपाई' में लिखा है। कुछ चौपाइयों में एक घटना को लिखकर घटना की समाप्ति पर "वीश्राम" (विश्राम) लिखा है। यह "वीश्राम"

१. प्रामाणिक हिन्दी शब्दकोश (रामचन्द्र वर्मा) में 'परचना' शब्द का अर्थ साथ रहकर या सम्पर्क में जाकर सम्बन्ध स्थापित करना, मेलजोल बढ़ाना परिचय प्राप्त करना, दिया है। परचना से ही परचुरी शब्द गढ़ा गया है ऐसा मेरा अनुमान है।

की परम्परा भी अति प्राचीन है जिसे लिपिकार ने अपनाया है। विश्राम के पश्चात एक साखी दी गई है और फिर दूसरी घटना चौपाइयों में लिखी गई है। प्रत्येक विश्राम और साखी के पश्चात दूसरी घटना या दूसरा विषय प्रारंभ किया गया है। इस तरह हर विश्राम और चौपाइयों के बीच साखी है। साखी, विश्राम और चौपाई लाल स्याही से लिखे हैं, शेष काली स्याही से। एक विषय या घटना विवेचन के लिये क्रम से कहीं १८, कहीं १६ और कहीं ३०-३२ चौपाई लिखी गई हैं। इस प्रकार इसमें १६ विश्राम हैं। हर विश्राम के बाद चौपाई की क्रम-संख्या बदल गई है।

इस ५२ पृष्ठों की "परचुरी" में सिंगाजी की जीवनी लिखी गई है जो गुरु दीक्षा के प्रसंग से प्रारम्भ होकर समाधि लेने के प्रसंग पर समाप्त होती है। इसमें वर्णित सामग्री निम्न सूची से स्पष्ट हो जाएगी—

	विषय	परचुरी की पृष्ठ संख्या
१.	गुरु दीक्षा का प्रसंग–गुरु मनरंगगीर से दीक्षा प्रदान करने की माँग, गुरु द्वारा सांसारिक प्रपंच, ब्रह्म और माया सम्बन्धी विवेचन।	१ – ६
२.	गुरु दीक्षा के पश्चात सिंगाजी की चर्या-गृहस्थी के कार्यों और सांसारिक वातावरण के प्रति विरक्ति।	७ – ८
३.	ओंकार मांधाता[1] जाने का प्रसंग–मांधाता में एकाएक प्रकट होकर भक्तों को आश्चर्य चकित करना तथा उसी समय कोसों दूर अपने निवास-स्थान हरसूद के घर में भी रहना तथा अन्य चमत्कार।	६ – ११

१. ओंकार मांधाता-खंडवा से इन्दौर रोड पर नर्मदा तट पर ज्योतिर्लिंग होने से महत्वपूर्ण तीर्थ स्थान है जहाँ कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा को भव्य मेला लगता है।

---

1. देखिये मेरा लेख—सिंगाजी—(अनशीलन—जुलाई—सितम्बर ५७, भारतीय हिन्दी परिषद् प्रयाग की पत्रिका)

'परचुरी' के प्रसंगों का परिचय

गुरु-दीक्षा के प्रसंग में संत सिंगा माया के प्रति विरक्ति की भावना को बतलाते हुए गुरू की शरण में आना चाहते हैं :—

"माया की संग हूं वहू दुख पायो, जाते सरण तुम्हारे आयो"
गुरु मनरंगगीर समाधान करते हैं :—

बीन माया कैसी सगाई। बीन माया परमारथ न होई॥
जैसी वस्तर विन नागी देही। कठण भक्ति रामानन्द केरी॥
प्रमारथ कबीरा कीनो। वस्तर फाड़ हाठ मा दीनो॥[1]

गृहस्थी के प्रति उदासीनता के भाव के कारण सिंगाजी की माता उन्हें कोसती हैं, तब वे इस प्रकार विचार करते हैं :—

तब सिंगाजी समजे मन माहीं। माता सबन की ऐसी होई॥
कबीर की माता सिकंदर पुकारी। नामदेव की माता दीनो गारी॥[2]

उपरोक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि अपने शिष्य सिंगाजी में जाग्रति पैदा करने के लिए मनरंगगीर द्वारा रामानन्द, कबीर, नामदेव आदि के उदाहरण दिये गये थे। इन संतों की विचारधारा का प्रभाव सिंगाजी पर पड़ना स्वाभाविक ही था। और इसीलिए सिंगाजी में नामदेव और कबीर के संत-मत की पूरी छाप दिखलाई पड़ती है।

---

१. परचुरी पृष्ठ–६/१४–१५
१. परचुरी पृष्ठ—७।७-८

गुरु-दीक्षा के बाद इनके हरसूद से पीपले चले आने की चर्चा भी की गई है। इनके परिवार की जानकारी इस प्रकार दी गई है :—

बड़ो जेठो लींबाजी भाई। जीन सींधाजी कुठहैल फुरमाई ॥[१]
जननी जसोदा सींगाजी की नार।[२]
कालु भोलु चारु सुंत। संदु दीपु नान्हापुत ॥
दुलमुल-दुलमुल नारायेण रोवे। कीसना बाई के आसुन आवे ॥
रंगु बेण काका की बैठी। सो ही सीस पठक लट छूटी ॥[३]

इनके चमत्कारों से प्रभावित हो परचुरीकार ने अनेक स्थानों पर सिंगाजी की प्रशंसा की है, और उनके मत को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। सिंगाजी ने किसी वेद आदि का अध्ययन नहीं किया था और न वे इनमें आस्था ही रखते थे। वे तो 'हद छोड़ बेहद' को जानते थे और साथ ही उन्होंने इस संसार को 'राम की माया और राम को पसारो' भी कहकर अद्वैत ब्रह्म का निरूपण किया है।

यथा :—

आचरज भयां जगत मा साखी सुणी न वेद।
धन-धन कला साद की वीरला जाणे भेद ॥[४]

स्वामी लागो हारी का ध्याने। लोक वेद की आठक न माने ॥
गुरु को सबद सीर पर राखे। आजरा झरत आमीरस चाखे ॥[५]
हाउ सदा सेवक राम को चेरो।
ये ही माया राम की राम को पसारो ॥[६]

१—वही— पृष्ठ—१४।८
२—वही— पृष्ठ—४६।१०
३—वही— पृष्ठ—३७।१८
४—वही— पृष्ठ—११।२०
५—परचुरी— पृष्ठ—१६।१।
६—वही —पृष्ठ—२५।९।

संत सिंगा अपने जीवन में हमेशा संतुष्ट रहे और सादगी तो उनकी रग-रग में समाई हुई थी। अनेक अद्भुत कार्यों के कारण वे श्रद्धालुओं की प्रशंसा के पात्र बने हुए थे। 'प्रगठ चल्यो सींघाजी को पंथ' लिखकर रचयिता ने उनको नामदेव और कबीर की श्रेणी में रखकर पंथ-प्रवर्तक माना है। किन्तु वे सन्तों के से नम्र ही बने रहे। और यदि उन्हें किसी ने ललकारा—

जब हाम साची करी माना। रामानन्द कबीर तो ही सु ठाणा॥
स्वामी सिंगा नम्रतापूर्वक कहते हैं:—

कहे स्वामी हूं हे उनके पग की धूर।
काहा श्री रामानन्द काहा दास कबीर॥
ये ही पठंत्रो मोहे न दीजो। हूं हे आनाथ मोहे प्रेम सुष दीजो॥[1]

परचुरीकार का मत है कि संत सिंगा क्रमशः निर्गुणी होते चले गए और उन्होंने इस संसार को समझाने के लिए तथा अपना दृष्टि-कोण स्पष्ट करने के लिए 'सबद' पर अधिक जोर दिया। वे भजन-कीर्तन में लीन रहने लगे तथा लोगों को सद्वृत्ति धारण करने का उपदेश देते रहे। उनका मत था कि प्रेम और भक्ति बहुत कम व्यक्ति ही कर सकते हैं। यह संसार तो एक वृक्ष है और इसमें रहने वाले उस वृक्ष की शाखाएँ हैं। जिस शाखा की जैसी वृत्ति होगी वैसा ही फल पावेगी। परचुरीकार ने निर्गुण का गुण अपार कहा है:—

रोम-रोम रसना होत है, तोऊ पार न पाए।
नीरगुण को गुण अपार है, खेम काहा लुं गाए।[2]

कोई करे दाव कोई करे उपाव। प्रेम भक्ती वीरला जण भाव॥
येक वृक्ष और सकल साषा। जाके घट जैसो तैसो फल चाखा॥[3]

१—वही—पृष्ठ—२६।२०
२—वही—पृष्ठ—३०।२४
३—परचुरी—पृष्ठ—३१।३

संत सिंगा ने अपने जीवन काल में हमेशा अपने विरोधियों को नम्रतापूर्वक पराजित किया और इस कारण मुसलमान सरदार तक उनसे प्रभावित हो गये थे। उन्होंने जिस रूप में अपने अद्वैत मत को रखा है वह परचुरीकार की भाषा में सरल और सर्वग्राह्य होने पर भी बड़ा गूढ़ और गम्भीर है। इससे हमें उनके दार्शनिक सिद्धान्त का ज्ञान तो होता ही है साथ ही उनका निजी मत भी स्पष्ट होता है। कबीर की भाँति[1] उन्होंने अपने रहस्यवाद में अद्वैत और सूफीमत की गंगा-जमुनी एक साथ ही नहीं बहा दी प्रत्युत उन्होंने शुद्ध अद्वैत मत को ही प्रतिपादित किया है। संत सिंगा में सर्वत्र सर्वात्मवाद और अद्वैतवाद की पुष्टि ही मिलती है :--

आगम आधार गमन ही। सकल माही परकास ॥
बावन सर सो नाम आखमी। सबद-सबद नीकास ॥
ता बीना बेन ना नीकसे। बयेन बीना सो नाये ॥
सचराचर पुरी रह्यो। न्यारो कीयो न जाये ॥
पुस्प बास तो येक सो रहे। काहा चंपो काहा वेल ॥
तेल फुलेल काहा बसे। मीलकर भयो फुलेल ॥[2]

सिंगाजी का समाधि-काल :—

निमाड़ खंड मा सिंगा स्वामी भया।
अचल वली न श्रीराम गुण गायो ॥
सोहि संमस्त १६१६ मा सिंगाजी भये।
आति प्रेम निदान ॥
संत महन्त आनन्द होये। जा की हारी करे बखान ॥[3]

यह परचुरी सम्वत् १६१६ वि० में लिखी गई है। संत सिंगा का समाधि-काल भी सम्वत् १६१६ वि० में ही है। अतः यह रचना उनके

१—कबीर का रहस्यवाद—पृष्ठ—१८। डा० रामकुमार वर्मा।

२ - परचुरी—पृष्ठ—५०।२२-२३-२४-२५

३—वही—पृष्ठ—५२।१०,११।

निर्वाण के बाद उनके सहयोगी शिष्य या अनुरागी ने उनकी स्मृति को बनाए रखने के लिए की होगी और फिर उसी के पश्चात् किसी अन्य शिष्य ने उसकी प्रतिलिपि तैयार की होगी।

परचुरीकार ने इनकी समाधि के प्रसंग को लेकर लिखा है कि एक दिन गुरु मनरंगगीर का संदेशा आया कि अब सिंगाजी को समाधि ले लेनी चाहिए। उन्होंने गुरु की आज्ञा शिरोधार्य की और श्रावण शुक्ला नौमी संवत् १६१६ वि० को जीवित समाधि ले ली। इनके समाधिस्थ होने से सबको बड़ा शोक हुआ और इनके शिष्य नारायण दास ने समाधि-स्थल पर हर शरद्पूर्णिमा के मेले की योजना बना डाली। 'परचुरी' में इसका वर्णन यों है--

गुरु को सबद मानो लाजो। पूरणमासी पहेलो काम जो कीजो॥
श्रावण सुदी नौमी सार। ता दिन स्वामी ने कियो विचार॥
भयो स्वामी आंतर ध्यान। नीकसी जोत-जोत मा समान॥[1]
स्वामी ठाणी सो कीजो तिथा। कीओ सरद पुंणेव को मेलो॥[2]

भाषा, लिपि और शैली

इस हस्तलिखित परचुरी की भाषा, लिपि और शैली की विवेचना करने में, जिसके आधार पर संत सिंगाजी सम्बन्धी प्रस्तुत निबन्ध लिखा गया है, हमारा ध्यान उसकी निम्न विशेषताओं पर जाता है—

१. हस्तलिखित परचुरी देवनागरी लिपि में लिखी गई है और प्राचीन पोथियों की तरह इसमें शब्द या शब्द समूह पृथक्-पृथक् दिखलाने की चेष्टा नहीं की गई है। अतः पाठक के सम्मुख कभी-कभी यह कठिनाई होती है कि वह अक्षरों को मनमाने ढंग से जोड़-तोड़ कर मूल ग्रन्थ को विकृत रूप में भी पढ़ लेता है।

१—परचुरी—पृष्ठ—३७।१०
२—वही—पृष्ठ—३८।५

२. परचुरी का लिपिकार विशेष पठित नहीं जान पड़ता। उसके ज्ञान का स्तर सामान्य प्रतीत होता है। अतः पोथी अशुद्धियों-विशेषतः स्वर सम्बन्धी अशुद्धियों से भरी पड़ी है।

स्वर-वर्ण

स्वर-वर्ण और संयुक्त स्वर (अ आ इ ई ऋ ए ऐ ओ औ) के दो रूप पाए जाते हैं—

(१) अविकल रूप में, जब वे स्वतंत्र व्यवहृत होते हैं।

(२) मात्रारूप में जब वे व्यंजन के बाद व्यवहृत होते हैं। निम्न-लिखित स्थितियों को छोड़कर वे उसी प्रकार लिखे हुए पाए जाते हैं जैसे आज कल प्रचलित हैं :—

(क) अ को आ के रूप में लिखा गया है।

ऋ का शुद्ध स्वर-मूल्य लुप्त हो गया है और प्रायः 'रि' के रूप में लिखा गया है-यथा—जाग्रित ('जाग्रत' के लिए)

(ख) इ ई की मात्राओं का स्वरूप वही है जो वर्तमान देवनागरी में है। किन्तु लिपिकार ने दीर्घ एवं लघु स्वरों के विन्यास की ओर ध्यान नहीं दिया है। अतएव प्रत्येक पृष्ठ इस प्रकार के व्यत्ययों अथवा विपर्ययों से भरा पड़ा है, उदाहरणतया—

लिखित रूप—'सींघाजी', 'ठिकाणों', 'कीयो'।

उच्चरित रूप—क्रमशः 'सिंघाजी', 'ठिकाणो', 'कियो'।

(ग) उ, ऊ, के सम्बन्ध में भी वही वस्तुस्थिति है—

(घ) ए, ऐ के वर्तमान रूप नहीं मिलते। यह 'ये' के रूप में ही मिलते हैं।

व्यंजन वर्ण :—

व्यंजन वर्णों के निम्नलिखित रूपों का व्यवहार 'परचुरी' में किया गया है—

स्पर्श {
क ख ग घ — प फ ब
च छ ज — व भ म
ट ठ ड ढ ण
त थ द ध न
}

तरल—य र ल । व ड[1] ढ
ऊष्म—श स ष[2]
महाप्राण—ह

संयुक्त व्यंजन—वर्णों का भी व्यवहार प्रचुर रूप में किया गया है—प्र के दो उच्चरित रूप हैं—प्र और पर् । पोथी में परमार्थ के स्थान पर प्रमारथ लिखा मिलता है ।[3]

इसके अतिरिक्त न्र, ग्र, त्र आदि अन्य रकारान्त संयुक्त-वर्णों के भी दो उच्चरित रूप हैं । निम्न उदाहरणों में 'र' को पूर्व व्यंजन से संयुक्त करके लिखा गया है ।

द्रुमति—दुर्मति, (परचुरी पृष्ठ १२।३)
नग्र — नगर, „ „ „ „ १२।४
क्रम — कर्म, „ „ „ „ ७।३

कहीं कहीं श, ष और स वाले शब्दों के विवरण में बहुत अव्यवस्था दिखलाई गयी है । स को ष या श का रूप दिया गया है :—

श्वामी—स्वामी, (परचुरी पृष्ठ २४।८)

"ष" से हमेशा, जब इसका संयोग किसी अन्य व्यंजन के साथ नहीं हुआ तब "ख" का बोध करवाया गया है—

लीषी—लिखी, परचुरी पृष्ठ २३।२८
सुष—सुख, „ „ „ „ २३।३२

१—ड़ ध्वनि नहीं है ।
२—इसका उपयोग 'ख' के लिये किया है । संयुक्त अक्षर में "वृष्टि" आदि के रूप में मिलता है ।
३—परचुरी—पृष्ठ—१९।३

"ज्ञ" को प्राय: सदा "ग्य" या उसके साथ संबद्ध मात्रा पर अनुस्वार (ं) लगाकर व्यवहृत किया गया है। हिन्दी की कई बोलियों में यह रूप प्रचलित है।

ग्यांन—ज्ञान

"न" के स्थान पर बहुधा "ण" का व्यवहार किया गया है-

सुणावा—सुनावा

जाणे—जाने

"व" का व्यवहार "अ" के लिये किया गया है—

हुवा—हुआ

"ड़" के लिए ड ही लिखा है—

आखाडे—आखाड़े

घोडा—घोड़ा

आगे आने वाले अनुनासिक शब्द का पूर्ववर्ती वर्ण भी अनुनासिक मिलता है—

ब्रांह्मण—ब्राह्मण

ब्रंह्म—ब्रह्म

"क्ष" के लिये "छ" ही पाया जाता है। दन्त्य "न" के द्वारा उच्चारण का काम लिया गया है। चन्द्र बिन्दु (ँ) द्वारा स्वरों की अनुनासिक ध्वनि प्रकट करने की प्रथा ही नहीं है। इसका काम अनुस्वार से ही लिया गया है।

संयुक्त व्यंजन :— 51558

(१) वर्णलोप—

कलु	—	कलियुग, परचुरी,	पृष्ठ—३६।४
आंत्रजामी—		अंतर्यामी, ,, ,,	,, ,,—१३।७

(२) समीकरण—

पुंनेव	—	पूर्णिमा, ,, ,,	,, ,,—३७।५
अनंद	—	आनंद, ,, ,,	,, ,,—३३।३

(३) सरलीकरण—

झाज—जहाज

(४) क्ष का छ

दीछा—दीक्षा

प्रचुरी की भाषा

परचुरी की भाषा के सम्बन्ध में यही कहना युक्तिसंगत होगा कि उसकी भाषा मूलतः निमाड़ जिले की बोलचाल की भाषा 'निमाड़ी' है। इसी बोलचाल की भाषा के शब्द और शब्द समूहों को व्यवहृत कर उन्हें खड़ी बोली का रूप दिया है। खड़ी बोली के शब्दों को तत्सम रूपों में नहीं प्रत्युत विकृत रूप में लिखा गया है—

उपगार — उपकार

आमर — अमर

कामनी — कामिनी

नग्र — नगर

प्राश्चीत— प्रायश्चित

अस्तुति— स्तुति

नैश्चे — निश्चय

साथ ही साथ कुछ उर्दू के प्रयोग भी मिलते हैं—

बक्सो — बख्श दो (क्षमा करो)

दीदार — दीदार (दर्शन)

"निमाड़ी" के शब्द और वाक्य प्रयोग तो परचुरी में भरे पड़े हैं :—

छानु रहे रे भुआ — अरे मरे हुए अपने आपको सुधार

भाड़े या भाडे — गाली देना

चाल्या — चले

खात्या, नात्या — छोटे नाले

कोठड़ी — कमरा
खद खद हासे — गद गद होना
छेव — अंत

संस्कृत के कुछ तत्सम शब्दों के प्रयोग करने का प्रयत्न किया गया है किन्तु 'श' के स्थान पर 'स' ही पाया जाता है—

एकादसी, द्वादसी, त्रयोदसी।

परचुरी की लिपि बहुत सुन्दर है। इसकी भाषा के समन्वित रूप को देखकर परचुरीकार का दृष्टिकोण यह मालूम होता है कि श्रद्धेय संत सिंगा जी की जीवनी और विचारधारा को सर्वसुलभ बनाने के लिये ही ऐसी भाषा का उपयोग किया है। राजस्थानी के शब्दों का चयन भी किया है। वस्तुत: निमाड़ी, राजस्थानी, बुन्देली, मालवी, मराठी, गुजराती और खड़ी बोली का मिश्रण कही जा सकती है। इसके ल वर्ण का उच्चारण मराठी के ल जैसा किया जाता है। राजस्थानी के कुछ तत्सम रूपों का उपयोग[1] :—

निमाड़ी	राजस्थानी	खड़ी बोली
अपणा	अपणा	अपना
अजण्या	अजण्या	अजन्मा
अजाण्या	अजाण्या	अनजान

सिंगाजी का निमाड़ में प्रभाव तथा प्रचार :

"सिंगाजी" तो उस व्यक्तित्व का नाम है, जिसके पीछे आज भी समस्त निमाड़ बावला है। निमाड़-मालवा के हृदय में बसने वाली ग्रमीण जातियों के सिंगाजी आराध्य हैं। मैंने गूजर, आदि बड़ी-बड़ी जातियों की पंचायतें देखी हैं, जिसमें सिंगा महाराज की साक्षी रखने पर ही सारे फैसले होते हैं। किसी किसान का बैल, भैंस आदि कुछ गुम जाने दीजिए वह प्रभु सिंगा की मानता मानेगा, और अपनी

१—ये उदाहरण "पुरानी राजस्थानी" से लिये गये हैं—अनुवादक नामवरसिंह

गुमी हुई चीज मिलने पर अपने घर सिंगाजी के भजन करवायेगा और प्रसाद बाँटेगा। जिन दिनों किसानों की फसलें खड़ी रहती हैं, उन दिनों कितने ही भावुक किसान गुनगुनाया करते हैं "सिंगा महाराज फसल घर अच्छी आ जाय।"

निमाड़ के किसानों की आध्यात्मिक भक्ति का आधार संत सिंगाजी ही हैं। साल में एक मौसम ऐसा आता है, जब समस्त निमाड़ में—

म्हारा सिर पर सिंगा जबरा,
गुरु में सदा करत हूँ मुजरा॥

की धुनि आती है। और—

निर्गुण धाम सिंगाजी, जहाँ अखंड पूजा लागी।
जहाँ ज्ञान भरा माहमूर, जहाँ झिलमिल वरसे नूर॥

की रागिनी में जहाँ का किसान अपने आपको भुला देता है। जिस समय किसी वृद्ध का गाँव से अन्तिम प्रयाण होता है, उस समय आज से ४०० वर्ष पूर्व निमाड़ में होने वाले ग्वाला की वह आध्यात्मिक पंक्तियां प्रत्येक को रुला देती हैं। कितनों ही को जगत् भार-स्वरूप, झूठा और तृणवत् जान पड़ता है। मृतक की अर्थी रखी रहती हैं, और झांझ-मृदंग के स्वर में लाग गाते हैं—

"समुझि लेओ रे मना भाई, अंत न होय कोई आपना"

जन-जीवन में उनके प्रति अटूट श्रद्धा का भाव है। किसान, श्रमिक वर्ग, और पशुपालकों के तो सिंगाजी प्राण हैं। इसी को नर का नारायण होना कहते हैं। आज भी निमाड़ के भावुक श्रद्धालु ग्रामीण अपना बैल गुम जाने पर कहते हैं—"सिंगाजी महाराज मेरा बैल मिल जाने पर मैं कढ़ावा (प्रसाद) करूँगा"। निमाड़ की गूजर जाति का अपराधी यह कह कर छोड़ दिया जाता है कि "जा सिंगाजी का पांय लागोल" (संत सिंगाजी के पैर पकड़ ले सब अपराध मिट जायेंगे।)

संत सिंगाजी के प्रभाव की महिमा "गजेटियर" में दिये हुए वर्णन से और भी स्पष्ट हो जाती है जिसमें दर्शाया गया है कि निमाड़ में संत सिंगाजी की एक देवता के रूप में पूजा की जाती है।[१]

मैं तो यह कहता हूँ कि महाराष्ट्र में जो गौरव पंढरपुर को प्राप्त है वही गौरव नीमाड़ में सिंगाजी को है। नीमाड़ियों का तो वह आराध्य देव है, उपास्य है, भगवान् राम और कृष्ण सब कुछ वही है। निमाड़ के ग्रामों में जिसने अपने जीवन के कुछ दिन बिताये हैं, वह इस बात को अच्छी तरह जानता है। प्रतिवर्ष कुंआर मास में सिंगाजी का मेला भरता है और हजारों नहीं, एक लाख से अधिक आदमी इस मेले में जाते हैं। मध्य प्रदेश में इससे बड़ा मेला कहीं भरता ही नहीं। ढोरों के बाजार के विषय में तो कुछ कहना ही नहीं है।

जहाँ तक संत सिंगाजी की वाणियों तथा उनके साहित्य के महत्व का प्रश्न है संतों की सी सरसता और सर्व सुलभता उनमें स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। मैंने सिंगाजी स्थान, भामगढ़ और हरसुद

1. Two deised human beings are also widely revered. ....the other is Singaji; also a glorified cowherd who died in the odour of sanctity moer than 300 years ago. By several miraculous appearances and other supernatural circumstances, duly recorded by his desciple Khemdas,he acquired a divine reputation and is now the object of a wide popular devotion.

This is chiefly manifested at a fair held at his tomb on the banks of Piprar in Kunwar (September-October) mere too his decendents are entombed each under a stone platform surmounted by a pair of carved feet and they are associated with the original founder in the devotion of the people.

—Nimar District Gazetteers. P. 59.

आदि स्थानों का दौरा किया। सिंगाजी में गादी धारी महन्तों से मिला और हस्तलिखित "परचुरी" तथा जीवन सम्बन्धी सामग्री प्राप्त की है। उनके भजन, पद और दोहे इन्हीं स्थानों से प्राप्त हुए हैं। उनके भजनों में सिंगा अथवा 'जन सिंगा' नाम हमेशा रहता है। उनकी वाणी में अलंकारों का प्रदर्शन नहीं है, हृदय की आर्द्र भावना का स्रोत है, आत्मा के बन्द तालों की कुंजी है। उनके संगीत में जीवन का रस है, आत्मा की अनुभूति है, जन जीवन के कल्याण की भावना है और माया प्रपंच से दूर ब्रह्म में मिल जाने का उपदेश है।

पं० केवलराम शुक्ल, "साहित्य-शास्त्री" ने अपने एक लेख "निमाड़ के गोपाल-संत सिंगाजी" में सिंगाजी की वाणियों के संबंध में सत्य ही लिखा है --

"सिंगाजी एक अपढ़ ग्वाल थे किन्तु जो बातें वह कह गये हैं उन्हें समझने के लिए बड़े से बड़े विद्वान भी उलझन में पड़ जाते हैं। अनेक ग्रंथों के अध्ययन के बाद मनुष्य विद्वान और विवेचक बन स्थूल जगत का ज्ञाता हो आदर प्राप्त करता है, किन्तु वह समाज के पवित्र प्रेम और श्रद्धा का अधिकारी नहीं हो पाता। क्योंकि समाज उससे अपनी कृतार्थता और उद्धार की आशा नहीं करता। वहाँ समदर्शन के साथ सन्तोष और पवित्रता का अभाव सा रहता है।"

व्योहार राजेन्द्र सिंह जी ने तो सत सिंगाजी को मध्यप्रान्त का कबीर कहा है -"..................उस समय सिंगाजी तथा उनके शिष्य दलुदास के भजन सुनकर मुझे प्रथम बार उनकी प्रतिभा का परिचय मिला तथा अनुभव हुआ कि मध्यप्रान्त के कबीर इस सन्त की उपेक्षा कर हम कितना पाप कर रहे हैं।"

इसलिए महाकवि पं० माखन लाल चतुर्वेदी ने अपने लेख, "नर्मदा तट का महान सन्त" में उनके पदों की प्रशंसा करते हुए लिखा है--

"सिंगा के गीतों के दीपक लेकर निमाड़ के किसान सुदूर आसमान पर चमकने वाले सूरज और चाँद की आरती उतारा करते हैं वे सिंगाजी के गीत दीपों की शिखा को अन्य सन्तों के चरणों पर हिलता-झुकता देखते हैं किन्तु वे अपना मस्तक सिंगा रूपी प्रकाश-पुंज पर ही चढ़ाते हैं। कोई माँ अपनी गोद में कौशल्या का बेटा लिये बैठी हो। और दूसरे में अपना और यदि उसका अपना बेटा फिसल फिसल कर किसी चट्टान पर गिर जाय, तो उसे इस बात का भान ही नहीं रहता कि उसकी पुत्र-प्रेम की बेचैनी में कौशल्या का बेटा कहाँ फिसल कर गिर गया। वह तो दोनों हाथों अपने बेटे को उठाने दौड़ पड़ती है—क्योंकि उसके लिये एक दशरथ का लाला है और दूसरा अपना प्रसव-कसाला है, किंतु मैं इस भावना में भी संकीर्णता नहीं देखता, इसमें मुझे भारतीय संतत्व की आराधना, प्रभु-भक्त की पूजा, भारतीय संस्कृति की हिमायत और प्रभु के रहस्य की उलझन की सुलझाहट का प्रयत्न दीख पड़ता है।"

इसीलिये पं० चतुर्वेदी जी ने सिंगाजी को नर्मदा की तरह अमर, सुन्दर, प्राण-वर्धक और युग की सीमा-रेखा बनने वाला संत कहा है।

सिंगा साहित्य के प्रसिद्ध ज्ञाता श्री प्रभागचन्द्र शर्मा ने उनके गीतों के सम्बन्ध में निम्न वक्तव्य देकर सिंगाजी की साहित्यिक देन को सराहा है—

"यों सिंगाजी ने ८०० भजन लिखे। गीतों में शास्त्रीय स्वर-ताल नहीं है, किन्तु लय खूब है, काव्य नहीं है, किन्तु सत्य पूर्ण है, ज्ञान नहीं है पर अनुभव अटूट है, बाह्य-आकर्षण नहीं है पर अन्त:-सौन्दर्य ओत-प्रोत है, गर्व नहीं है नम्रता ही नम्रता है। गरज यह कि सिंगा का "जीवन" ही काव्य है फिर बिचारे काव्य की क्या चली ?

---

१. संत, सृष्टि का साकार सत्य।

मेले का स्थान

सिंगाजी की स्मृति में भरने वाले वार्षिक मेले का स्थल भी सिंगा जी के नाम से ही प्रसिद्ध है। यह मेला अश्वनी शुक्ला पूर्णिमा के दिन इस स्थान पर लगता है। इसी स्थान पर सिंगाजी ने समाधि ली थी। प्रांत के कोने कोने से लोग यहाँ आते हैं। यह मेला मवेशी बाजार के लिए प्रसिद्ध है क्योंकि सिंगाजी जाति के ग्वाले थे और पशुपालन उनका पारिवारिक व्यवसाय था। यहाँ पर सिंगाजी के प्रसाद के रूप में सैकड़ों मन शक्कर बँटती है किन्तु यह विशेषता है कि सैकड़ों मन शक्कर के बँट जाने पर भी एक भी चींटी या कीड़ा दिखाई नहीं पड़ता और न पक्षी आदि ही मँडराते हैं। वहाँ सिंगाजी की गादी पर महंत लोग सिंगाजी के सम्बन्ध में गौरवपूर्ण शब्दों में जानकारी देते हैं। जनता भी श्रद्धावश उनकी महानता का गीत गा उठती है :

जग में गरजे सिंगा साद, जग में गरजे सिंगा साद।

और निमाड़ का किसान ताल मृदंग पर गा उठता है :

सिंगा बड़े अवलिया पीर
जिनको सुमरे राव अमीर।

मेले के स्थान पर जो विशेषताएँ पाई जाती हैं उनकी महत्ता प्रतिपादित करते हुए "निमाड़ डिस्ट्रिक गजेटियर" में बतलाया गया है कि सात दिन तक चलने वाले इस मेले में हजारों श्रद्धालु आकर सिंगाजी की समाधि पर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।[१]

1—The fair is held in the month of Kunwar (September-October) and losts for 10 days. It is one of the principal cattle fairs of the province. ....It is believed that for 7 days all crows, flies or ants are kept away from the side of the fair by the power of Singaji. ....
Nimar District Gazetteers. Edited by—R. V. Russal I. C. S. P. 257.

सन्त सिंगाजी का समय

सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक परिस्थितियाँ

संत सिंगाजी का जीवन-काल विक्रम सम्वत् १५७६ से १६१६ के बीच का है। इसे ईस्वी सन् में उल्था करने से यह समय लगभग ई० सन् १५१६ से १५५६ के बीच आता है। विषय के विवेचन की सुविधा के लिए हम इनका समय ईसा की १६वीं शताब्दी मानते हैं।

संत सिंगाजी के समय और परिस्थितियों का विवेचन करने के पूर्व उनके पूर्ववर्ती कुछ सन्तों के समय और प्रभाव की चरचा करना आवश्यक है, जिनसे सिंगाजी प्रभावित हुए हैं और जिन्हें उन्होंने अपने संत-जीवन के लिए प्रेरणा-श्रोत माना है।

महाराष्ट्रीय संत नामदेव वि० सं० की चौदहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में पंजाब प्रान्त में भ्रमण कर रहे थे। उनका मूल सम्बन्ध महाराष्ट्र प्रान्त के "वारकरी सम्प्रदाय" के साथ था, किन्तु उनके विचारों की व्यापकता व कार्य पद्धति की रूप रेखा उन्हें अपनी परिधि के कुछ बाहर जाने को बाध्य कर रही थी। अतएव अपने जीवन के अन्तिम दिनों में उन्होंने उक्त सम्प्रदाय के नियमों का कदाचित् अक्षरश: अनुसरण भी नहीं किया और स्वानुभूति के आधार पर ही वे अपने उपदेश देते रहे। इनके ये उपदेश सदा एक मत का संदेश सुनाते रहे। इनकी लोकप्रियता के कारण इनके उपदेशों का वहाँ बहुत प्रभाव पड़ा और मालवा, राजस्थान एवं पंजाब में इनके अनेक अनुयायी बन गये और आगे चलकर इनके नाम को अपनाने वाले कई अन्य व्यक्तियों ने भी अपने मठादि स्थापित कर लिए। कबीर साहब ने भी संत नामदेव का नाम कदाचित् इन्हीं प्रचलित पदों से प्रभावित होकर बड़ी श्रद्धा के साथ लिया होगा।[१]

१—उत्तरी भारत की संत परम्परा—नामदेव का प्रभाव—पृ० १३१। श्री परशराम चतुर्वेदी।

संत कबीर के कबीर-पंथ का एक व्यापक क्षेत्र बन गया था और इनके मत का अत्यधिक प्रचार भी हुआ। आज भी भारत के अनेक प्रान्तों में कबीर पंथ का प्रचार है और एक जनश्रुति के आधार पर कबीरदास का नर्मदा तटवर्ती, भरौंच से १३ मील की दूरी पर शुक्र-तीर्थ के निकट जाना बतलाया गया है। कबीर के युग की परिस्थि-तियाँ भी बड़ी जटिल थीं और उन्होंने समाज-सुधार आंदोलन के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी कदम उठाया था। इन्हीं परिस्थितियों के बीच सिंगाजी का जन्म भी हुआ। सिंगाजी नामदेव और कबीर से प्रभावित हुए हैं। प्रमाण-स्वरूप उनकी जीवनी पर आधारित हस्त-लिखित पुस्तक "परचुरी" के कुछ अंश उद्धृत किये जा रहे हैं—

बिन माया कैसी सगाई। बिन माया प्रमारथ न होई॥
प्रमारथ कबीरा कीनो। वस्तर फाड़ हाठ मा दीनो॥[1]
तब सिंगाजी समजै मन माहीं। माता सवन की ऐसी होई॥
कबीर की माता सिकन्दर पुकारी। नामदेव की माता दीनी गारी॥[2]
कहे स्वामी हूँ है उनके पग की धूर।
काहा श्री रामानन्द काहा दास कबीर॥[3]

उपर्युक्त विवेचन से एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि सिंगाजी अपनी पूर्ववर्ती संत-परंपरा से प्रभावित थे और विशेषत: नामदेव और कबीर से। उनकी वाणियों में जहाँ एक ओर समाज-सुधार की ध्वनि सुनाई पड़ती है वहीं दूसरी ओर हिन्दू-मुस्लिम एकता का संदेश भी दिखलाई पड़ता है। कदाचित् ये ही तत्कालीन समाज की प्रमुख समस्याएँ थीं जिनके कारण जनता त्रस्त थी। इसीलिए श्री परशुराम चतुर्वेदी ने कबीर साहब के समय की परिस्थितियों को 'कलुषित

१—परचुरी—पृ० ६। १४-१५।
२—वही—पृ० ७। ७-८।
३—वही—पृ० २६। २०।

वातावरण' कहा है।[१] इन सब कारणों से यहाँ सिंगाजी के समय की चर्चा करने के पहले उनके पूर्वकालीन युग की चर्चा करना आवश्यक है।

वि० सं० ६०० के आसपास का समय वास्तविकता को परखने और जाँचने का युग था। सैकड़ों वर्षों से आती हुई विचार-पद्धति के अनेक अंगों पर एक आलोचनात्मक ढंग से विचार किया जाने लगा था। उनमें दिखने वाले अनेक दोषों की ओर इंगित करके सुधार की आवश्यकता बतलाई गई और प्रचलित विचार पद्धतियों को फिर से सुव्यवस्थित ढंग से समझने की चेष्टा की गई। इस कार्य में विविध सम्प्रदायों और व्यक्तियों ने विशेष रूप से हाथ बँटाया और धार्मिक एवं सामाजिक वातावरण पर विचार करते हुए उनमें व्याप्त दोषों पर आक्षेप किया। इन सम्प्रदायों ने तत्कालीन परिस्थितियों में परिवर्तन लाने के लिए विरोधी मतों की आलोचना की थी। ऐसे व्यक्ति-विशेषों में स्वामी शंकराचार्य का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। इन्होंने अपने समय के अवैदिक मतों को अमान्य ठहराया, वैदिक मतों में भी उपलब्ध दोषों की निन्दा कर उन्हें वेद विरुद्ध व अग्राह्य घोषित किया और उनके पीछे आने वाले भक्ति-प्रचारक आचार्यों ने भी प्रायः इसी पद्धति का अनुसरण किया। दूसरी ओर बौद्ध और जैन सुधारकों को ऐसे प्रामाण्य ग्रंथों के आधार पर चलने की आवश्यकता नहीं थी और न नाथ सम्प्रदाय को ही इस आधार की उपयोगिता प्रतीत हुई थी। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध 'वारकरी-सम्प्रदाय' ने मध्य-मार्ग को अपनाकर प्राचीन धर्म-ग्रन्थों को अपने मत का आधार बनाते हुए भी, अपने सिद्धान्तों को बहुत व्यापक बना डाला। सूफियों की, अपने मूल धार्मिक ग्रंथ 'कुरान-शरीफ' के प्रति पूर्ण आस्था दिखलाई पड़ती है किन्तु उसके अनुयायी इसकी व्याख्या एक विशेष किन्तु भिन्न दृष्टिकोण से करते दिखलाई पड़ते हैं।

१—उत्तरी भारत की संत परंपरा—श्री परशुराम चतुर्वेदी—पृ० १८५

इस प्रकार इसमें सुधारवाद और परिवर्तन के साथ एक नई समाज व्यवस्था की भावना लेकर काम करते हुए सम्प्रदायों की परंपरा दिखलाई पड़ती है। कोई बिगड़ी हुई स्थिति में परिवर्तन लाने का प्रयास करना चाहते हैं तो कोई प्राचीन व्यवस्था के झगड़े में न पड़कर एक नवीन और सर्वग्राही पद्धति को अपना कर अपने सुधार-सिद्धान्त को पुरस्सर करते दिखलाई पड़ते हैं। इस तरह इस युग में हमें सुधारकों के विभिन्न दलों के दर्शन होते हैं।

वि० सं० ६०० से १५०० तक का समय राजनैतिक एवं धार्मिक अव्यवस्था का युग था। इसका उल्लेख डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'मध्यकालीन धर्म साधना' में भी किया है।[1] सन् इस्वी की दसवीं शताब्दी में ब्राह्मण धर्म संपूर्ण रूप से अपना प्राधान्य स्थापित कर चुका था, फिर भी बौद्धों, शाक्तों और शैवों का एक बड़ा भारी संप्रदाय ऐसा था जो ब्राह्मण और वेद की प्रधानता को नहीं मानता था। यद्यपि इनके परवर्ती अनुयायियों ने बहुत प्रयत्न किया कि उनके मार्ग को श्रुतिसम्मत मान लिया जाये, परन्तु यह सत्य है कि अनेक शैव और शक्ति सम्प्रदाय ऐसे थे जो वेदाचार को अत्यन्त निम्न कोटि का आधार मानते थे और ब्राह्मण प्राधान्य को एक दम स्वीकार नहीं करते थे। इसके बाद ब्राह्मण मत क्रमश: प्रबल होता गया और इस्लाम के आने से एक ऐसा सांस्कृतिक संकट उत्पन्न हुआ जिससे सारा देश दो प्रधान प्रतिस्पर्धी धार्मिक दलों में विभक्त हो गया। अपने को या तो हिन्दू कहना पड़ता था या मुसलमान।

वि० सं० १२५० में तराई की लड़ाई में विजय पाकर मुहम्मद गोरी ने यहाँ पर अपने राज्य की स्थायी नींव डाल ली। इसी समय से हमारी भूमि पर मुसलमानी शासन का आरम्भ दिखलाई पड़ता है। क्रमश: गुलाम वंश (सं० १२६३:१३४७) खिलजी वंश (सं० १३४७ : १३७७) तक तुगलक वंश (वि० सं० १३७७ : १४६६) के

१—मध्यकालीन धर्म साधना—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी—पृ० ९०।

भिन्न व्यक्तियों ने यहाँ के राज-सिंहासन को सुशोभित किया। ये सुलतान 'मज़हबे-इस्लाम' की 'शरियत' के पाबंद होते हुए भी अपना शासन अपरिमित अधिकारों के साथ करते थे। इन सुलतानों के एक तंत्र शासन द्वारा हमेशा अन्याय और असहिष्णुता को ही प्रोत्साहन मिलता रहा। उधर बौद्ध धर्म का उस समय तक पूर्ण ह्रास होने लगा था व शंकराचार्य और कुमारिल भट्ट जैसे विरोधी प्रचारकों के प्रयत्नों द्वारा वह प्रायः समाप्ति पर था। सुलतानों के शासन-काल में स्वेच्छाचारिता की प्रधानता होने के कारण भिन्न-भिन्न विचारों एवं संस्कृतियों के संघर्ष के कारण अनेक जटिल और नवीन उलझनें पैदा हो रही थी। विभिन्न सम्प्रदाय पैदा हो रहे थे तथा एक दूसरे का खंडन कर आपसी वैमनस्य को बढ़ाकर समाज सुधार के नाम पर भोली भाली जनता को गुमराह कर रहे थे। मुगल सल्तनत के वैभव और विलास की मादकता से विभोर अधिकारी वर्ग मनमानी कर रहा था। इस तरह भारतीय जनता आशा-निराशा के बीच झूल रही थी। क्योंकि आचार भ्रष्ट व्यक्ति समाज से अलग कर दिया जाता था और वह एक नई जाति की रचना कर लिया करता था। दूसरी ओर सामने इस्लाम के रूप में एक सुसंगठित समाज था जो प्रत्येक व्यक्ति को अपने समाज में मिला लेता था। एक बार कोई भी व्यक्ति इस धर्म को स्वीकार कर लेवे तो इस्लाम समस्त भेद-भाव को भूल जाता था। समाज का वहिष्कृत व्यक्ति अब असहाय न था, इच्छा करते ही उसे इस सुसंगठित समाज की शरण मिल जाती थी। ऐसे ही समय में दक्षिण से भक्ति का आगमन हुआ और इस भक्ति की धारा में हमें दो रूपों के दर्शन हुए। ये वे दो धारायें हैं जिन्हें निर्गुण और सगुण धारा कहते हैं। सगुण उपासना ने पौराणिक अवतारों को अपना केन्द्र बनाया और निर्गुण उपासना से निर्गुण ब्रह्म को।

पहली साधना ने हिन्दू जाति की शुष्कता को आन्तरिक प्रेम से सींचकर रसपूर्ण बनाया और दूसरी धारा ने इस शुष्कता को ही

मिटा देने का संकल्प किया। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने इन दो धाराओं का उल्लेख करते हुए लिखा है :—

> "एक ने समझौते का रास्ता लिया दूसरी ने विद्रोह का, एक ने शास्त्र का सहारा लिया, दूसरी ने अनुभव का। एक ने श्रद्धा को पथ-प्रदर्शक माना, दूसरी ने ज्ञान को। एक ने सगुण भगवान को अपनाया, दूसरी ने निर्गुण भगवान को। पर प्रेम दोनों का मार्ग था, सूखा ज्ञान दोनों को अप्रिय था[1]।"

इससे इतना तो स्पष्ट है कि भारतवर्ष में दो प्रकार का सामाजिक स्तर था। एक में शास्त्र के पठन-पाठन की व्यवस्था थी, और अनेक आदर्शों पर संगठित सामाजिक व्यवस्था के प्रति सहानुभूति थी, और दूसरे में सामाजिक व्यवस्था के प्रति तीव्र असंतोष का भाव था। इन सब कारणों से समाज सुधार और आदर्श मार्गों के सुझाव के लिये स्वार्थ और लोभ मोह से ऊपर उठे हुए महात्माओं की आवश्यकता प्रतीत हुई। इस रूप में जो अपना घरबार छोड़ कर सामने आये और जिन्होंने संसार को माया का भ्रमजाल बतलाकर जीवन की वास्तविकता को समझने का संदेश दिया वे ही संत कहलाये।

संपूर्ण भारत की राज-व्यवस्था और समाज की धार्मिक स्थिति का सिंहावलोकन करने के पश्चात् अब सिंगाजी के जन्म-स्थान और कार्य-स्थल निमाड़ जिले और मध्य प्रांत की राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था का विवेचन करेंगे।

"मध्य प्रदेश का इतिहास और नागपुर के भोंसले" नामक पुस्तक में वयोवृद्ध साहित्यकार और इतिहासवेत्ता श्री प्रयागदत्त शुक्ल ने निमाड़ जिले पर ई० स० १३७० से मुसलमानों का प्रभाव बतलाया है।[2] कुम्हारी (जिला-दमोह, मध्य प्रदेश) इलाके के वीरान मौजा बटियागढ़

---

१. मध्यकालीन धर्म साधना — डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी — पृ० ९२।

२. मध्य प्रदेश का इतिहास और नागपुर के भोंसले—मुसलमानों का प्रभाव—प्रयागदत्त शुक्ल—पृष्ठ ७०।

के संवत् १३३७ के सती लेख से प्रकट होता है कि उस समय अलाउद्दीन खिलजी का शासन था। ई० सं० १३०६ में उसने दक्षिण भारत पर तृतीय आक्रमण किया था। गयासुद्दीन तुगलक के जमाने का भी एक लेख बटियागढ़ में मिला है, जिसमें उसका राजस्व-काल ७२५ हिजरी अंकित है।[1]

"ब अहदशुद गयासुद्दीन व दुनिया बिनाई खैर मैमूगश्त मनसूब"

उसका पुत्र महमूदशाह था जिसका उल्लेख बटियागढ़ के संवत् १३५८ के संस्कृत लेख में है।[2]

"निमाड़ का फरुखी-वंश" की चर्चा करते हुए शुक्ल जी ने बतलाया है कि ताप्ती के निकटवर्ती प्रान्त में मलिक फरुख को सम्राट फीरोजशाह से एक सनद द्वारा अधिकार मिल गया था।[3] मलिक फरुख के पश्चात् नासिर खाँ गद्दी पर बैठा। उसने असीरगढ़ को जीत कर बुरहानपुर और जैनाबाद दो नगर बसाये। इस वंश की वंशावली बुरहानपुर की जुम्मा मस्जिद में शिलांकित है।[4] ई० सं० १५३५ में इसी वंश के मुबारकशाह ने गुजरात पर अधिकार जमाना चाहा किन्तु अन्त में उसे असीरगढ़ माना जाना पड़ा। उसका पुत्र रजा अलीखाँ मुगल सम्राट अकबर की अधीनता स्वीकार करके मुगल सेना के साथ बहमनी राज्य के सुलतान से लड़ने के लिए गया और वहीं पर ई० सं० १५६६ में मारा गया। इस तरह इस वंश ने २३० वर्षों तक निमाड़ पर राज्य किया।

अकबर ने इस सूबे को मालवे के अन्तर्गत कर दिया और इसमें हण्डिया, मांडु और बीजागढ़ तीन परगने बनाये। ई० स० १६४१ में अंग्रेज वणिक दूत 'सर टामस रो' शाहजादा परवेज से मिलने के लिए

---

1. Batiagrh Stone inscription (Persian)—फारसी लेख।
2. Epigraphica Indica. Vol. 12. P. 44.
3. मध्य प्रदेश का इतिहास और नागपुरके भोंसले–प्रयागदत्त शुक्ल–पृष्ठ ७१
4. Epigraphica Indica, Vol. 9. P. 306.

बुरहानपुर आया था। जहाँगीर के जमाने में उसके पुत्र ने जो विद्रोह किया था उसको दमन हाड़ोती के राव रतनसिंह ने किया था। इसलिए बुरहानपुर की सूबेदारी उसे मिली थी, किन्तु वह शीघ्र ही मारा गया। इसके पश्चात् ई० स० १६७० में शिवाजी के प्रमुख सरदार प्रतापराव गुजर ने खानदेश को लूटा। ई० स० १६८४ में यहाँ पर औरंगजेब की छावनी बनी और कुछ समय रहकर वह मराठों से लड़ने के लिए औरंगाबाद गया था। ई० स० १७१६ से मराठों ने यहाँ से "चौथ" लेना शुरू कर दिया था जो "आफत सुलतानी" के नाम से मशहूर है।

"निमाड़ डिस्ट्रिक्ट गजेटियर" के अनुसार निमाड़ के इतिहास की जो झाँकी मिलती है, उसके अनुसार फरुखी-वंश के प्रभाव तथ्य की पुष्टि होती है।[1]

उपरोक्त विवेचन से सिंगाजी के समय (पूर्व और तत्कालीन) की राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था के सम्बन्ध में जो तथ्य प्रकट हुए हैं उनसे कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलते हैं। पहला तो यह कि सिंगाजी के कार्य-स्थल निमाड़ जिले पर एक लम्बे समय तक मुसलमानों का शासन था। इस जिले में और इसके आसपास लगे हुए इलाकों में अनेक युद्ध हो चुके थे। मुसलमानों की स्वेच्छाचारी

1. Praut Nimar was included in the territories of the Ghori Kings of Malwa. In Akbar's time it was divided into the two complete sarkars of Handia and Bijagarh and a Portion of third, Mandu, all of which were comprised in the Suba of Malwa.

Burhanpur was the capital of the Mohammodans, Faruki kings of Khandesh and afterwards of Subah Khandesh. The history of Nimar is therefore that of Malwa and Khandesh.

—Nimar District Gazetteers—History and Archeology—Vol. A. P. 21.

शासन-प्रणाली के फलस्वरूप जन-समाज में अत्याचार और असहिष्णुता का वातावरण बन गया था और हिन्दू-मुस्लिम विरोधी भावनाएँ प्रबल हो गई थीं।

दूसरे, देश में बौद्धों का सहजयान सम्प्रदाय धीरे-धीरे लुप्त होता जा रहा था और नाथ योगी सम्प्रदाय के अलावा सूफी-सम्प्रदाय का कुछ अधिक प्रचार होने लगा था। "चिश्चितिया शाखा" के फकीर अहमद साबिर ने "साबिरी उपशाखा" की नींव डाली थी और वि० सं० १४०० के लगभग "सुहर्वर्दिया शाखा" के शेख तकी ने अपने उपदेशों द्वारा यहाँ के निवासियों को प्रभावित किया था। उधर पूर्व की ओर बंगाली सूबे में वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय का आविर्भाव हो गया था। और कवि चंडीदास अपने मधुर पदों से जनता को मुग्ध कर रहे थे।

संत सिंगाजी पर उपरोक्त राजनैतिक और धार्मिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। इस अध्याय के प्रारम्भ में सुधारवादी दलों की चर्चा भी की गई है और इस सुधारवादी परम्परा में संत नामदेव और कबीर का देश के अधिकांश भाग पर प्रभाव पड़ा था। नामदेव का प्रभाव तो मालवा तक बतलाया गया है। मालवा, निमाड़ जिले से लगा हुआ ही था, अतः ऐसी स्थिति में इन विचारधाराओं का जो प्रभाव सिंगाजी पर पड़ा है वह भी उनकी सुधारवादी क्रांतिकारी भावना को प्रदर्शित करता है। उस समय सिंगाजी के सामने हिन्दू समाज की तिरस्कृत जातियों के मिलने के साथ-साथ मुसलमानों के साथ भी समझौता करने का प्रश्न था। अतः उन्होंने ऐसे सिद्धान्तों पर ही जोर दिया जो सर्व-सम्मत हो सकें। निर्गुण एकेश्वरवाद, क्रियाकलाप में शिथिलता तथा हृदय-वाद की अपेक्षा बुद्धिवाद ही पर जोर देने से यह सर्व सुलभ मत प्रचलित होना संभव था, अतः वही किया गया।

"संत साहित्य की सामाजिक पृष्ठ भूमि" शीर्षक से लिखते हुए

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने संतों के इस सुधारवाद के सम्बन्ध में लिखा है—

"इस विषय में तो किसी को मतभेद न होगा कि इस साहित्य में तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों की आलोचना की गई है। दीर्घ-काल से प्रचलित धार्मिक विश्वासों, सामाजिक और वैयक्तिक आच-रणों के मान तथा विभिन्न संप्रदायों द्वारा स्वीकृत सिद्धान्तों पर या तो आक्रमण किया गया है, या उनके सम्बन्ध में संदेह प्रकट किया गया है। यह विभिन्न संतों के उस तीव्र असंतोष का फल है जो उन्हें सामाजिक परिस्थितियों के कारण अनुभूत हो रहा था।"[१]

इन सब कारणों से संत सिंगाजी ने कबीर दादू आदि संतों की भांति निर्गुण मतवादी ज्ञानाश्रयी शाखा की विचार पद्धति को ही अपनाया है। उन्होंने रूढ़िवाद, बहुदेव वाद और जन्म श्रेष्ठत्व वाद आदि का खंडन कर एक अगोचर, अलख, परब्रह्म की उपासना के आधार पर समाज में एकता, समता और भ्रातृ भाव स्थापित करने का प्रयास किया। इनकी वाणियों में जाति भेद, लिंग भेद और धर्म भेद सभी भौतिक भेद भावों का खण्डन मिलता है।

---

१. मध्यकालीन धर्म-साधना—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ ८६।

सिंगाजी की रचनाएँ—उनका "दृढ़-उपदेश" और अन्य कृतियां

सिंगाजी की निम्नलिखित रचनाएँ उपलब्ध हैं—

१—सिंगाजी का दृढ़-उपदेश।

२—सिंगाजी का आत्म-ध्यान।

३—सिंगाजी का दोष-बोध।

४—सिंगाजी का नरद।

५—सिंगाजी की शरद।

६—सिंगाजी की देश की वाणी।

७—सिंगाजी की वांणावली।

८—सिंगाजी का सात वार।

९—सिंगाजी की पंद्रह तिथि।

१०—सिंगाजी की बारह मासी।

११—सिंगाजी के भजन—

(अ) समाधि के भजन।

(ब) निर्गुण-मार्ग के भजन।

सिंगाजी और उनका 'द्रढ़ उपदेस'

संत कवि सिंगाजी की वाणियों का लिपिबद्ध रूप बहुत ही अल्प मात्रा में उपलब्ध है। उनके जीवन चरित पर आधारित 'संत सिंगाजी की परचुरी' नामक एक प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक प्राप्त हुई है। इस प्रबन्ध के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण होने के कारण; इस पुस्तक की विवेचना एक प्रथक अध्याय में विशेष रूप से की है।

दूसरी महत्वपूर्ण हस्तलिखित पुस्तक, 'संत सिंगाजी का द्रढ़ उपदेस' के नाम से प्राप्त हुई है। इस पुस्तक में २०१ पद संग्रहित हैं जो दोहा और चौपाई के रूप में लिखे गए हैं। यह ग्रन्थ संत के दार्शनिक सिद्धान्त का विधिवत् विवेचना करता है। इसके विभिन्न पदों में ब्रह्म निरूपण, संसार; माया, जीवात्मा, स्वर्ग-नरक, पारिवारिक सम्बन्ध और जीवन को प्रपंच में डालने वाले मोह, क्रोध, मद लोभ और ईर्ष्या आदि तत्वों का गहन किन्तु सरल, सुलभ भाषा में वर्णन मिलता है।

'द्रढ़ उपदेस' की जो प्रति उपलब्ध हुई है उसमें लिपि-काल नहीं दिया गया है किन्तु वह अति प्राचीन मालूम होती है। इसकी रचना हाथ से बने कागज़ पर बर्रू से हुई है। इसका कागज़ पीलापन लिए हुए मोटा है किन्तु इसकी लिखावट अत्यंत स्पष्ट और आकर्षक है। इसका आकार एक आधुनिक 'डायरी' का है। जो कहीं भी जेब में रखकर ले जाई जा सकती है। इसकी पृष्ठ संख्या ३६ है और प्रत्येक पृष्ठ संख्या, द्र० १, द्र० २ रूप में लिखी हुई है। रचयिता ने इसे चौपाई और दोहों में लिखा है। इसके लिखने में काली और लाल स्याही का उपयोग किया गया है। चौपाई काली और दोहा लाल स्याही में लिखे गये हैं। विभिन्न विषयों पर चौपाई और दोहें लिखे

हैं। १०, १२, १६ अथवा १८ पदों की चौपाई के पश्चात् दोहा है दोहों और चौपाइयों की कुल संख्या २०१ है।

लिपिकार ने इसका आरम्भ 'श्रीगणेशाये नमः' से किया है इसकी समाप्ति इन शब्दों में हुई है :—

'ईती सिंघा जी महराज का द्रढ़ उपदेस शंपूर्ण समाप्त'।

इस ३६ पृष्ठों एवं २०१ पदों के 'द्रढ़ उपदेस' में सिंगाजी के संपूर दर्शन का निचोड़ मिल जाता है।

सिंगाजी का समय १६ वीं शताब्दी का है और इस युग की दे के रूप में संतों ने संसार को अनेक संप्रदायों के मोहांधकार निकालने के प्रयास में बहुदेववाद और त्रिविध संप्रदायवाद से अल ले जाकर एक परम सत्ता के प्रकाश के द्वारा निर्गुण मार्ग का निर्देश किया है। इस निर्देशन में हमें सिंगाजी के अनेक पद या दोहे इस ग्रंथ में प्राप्त होते हैं। यद्यपि यहां उनके इन पदों की तुलनात्मक व्याख्या हमारा अभीष्ट नहीं है तथापि विषयानुसार उदाहरण सहित व्याख्या की जा रही है।

संत साहित्य का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि संतों का ब्रह्म, नाम, रूप, जाति और वर्ण से रहित है, परे है। वह अलेख, अकथ तथा अगोचर है। संसार की भाषा उस शक्तिमान का वर्णन करने में असमर्थ है। इसीलिए सिंगाजी की वाणी ने ब्रह्म का निम्न रूप में विवेचन किया है ;—

आखंड हये कछु एकला नाहीं, जयेसा माखन दुद के माहीं।
वार नहीं-नहीं कछु पारा, जयेसा धाम सुरीज मनभारा॥

संतों ने इसी कारण परब्रह्म को निराकार तथा अज्ञ आदि नामों से संबोधित किया है। इसके साथ ही परमात्मा को 'एक' माना है और विश्व को मिथ्या भी कहा है। सिंगाजी ने तो यहाँ तक कह डाला ;—

सींघा अयेसा कोई आपरूप हये, सब कोई करे वाकी आस।
नाम ठाम कछू नहीं वाके, कयसे सुमरे दास॥

संत-साहित्य में 'नाम' की महिमा सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। किन्तु संत सिंगाजी के मतानुसार ब्रह्म का कोई नाम नहीं है। उसे किसी नाम विशेष से पुकारना व्यर्थ है :—

नाम लिये कहो काहाते होई, नाम लिये तरे न कोइ।
नाम-नाम कहे सब कोई, वो बारा रास ती न्यारा होई॥
पूकार-पूकार मुवा आजान, अंतकाल न पोंहचे ठीकाण।
नाम होय तो बोले सही, अंधि दुणीया भर्म गई॥

इस तरह सिंगाजी ने ब्रह्म को अरूपा और अनाम बतलाया है। वह तीनों गुणों से परे है। वह सत् है, अमर है, जन्म, रोग और जरा, मृत्यु से मुक्त है। पंचतत्व से बना हुआ त्रिगुण से आरोपित पुतला तो 'जीव' की कोटि में आ जाता है—

पंचतत्व त्रिगुण लगाया, मन तृष्णा तो जीव कव्हाया।
देह धरी, सब जीव कव्हाये, आगू खएच पीछु नी आवे॥

कबीर के राम भी निर्गुण हैं और त्रिगुण विशिष्ट शरीरधारियों से परे हैं। वे रूप-रेखा रहित, निराकार, निर्विकार, उन्मुक्त, अनन्त और सीमारहित हैं :—

त्रिगुण रहित फल रमि हम राखल,
तब हमरो नाम राम राई हो। (क० ग्रं० १०४)

सिंगाजी ने ब्रह्म को खोजते हुए बतलाया कि वे सभी जीवों में उसी प्रकार व्याप्त हैं, जिस प्रकार सभी काष्ठों में अग्नि अदृश्य रूप से निहित है :—

खोजो सादु ब्रह्म हये कयेसा, जैसा अग्नि काष्ट प्रकासा।
जे समजे तिसीका भाग, जैसी काष्ट मा रहेते आग॥

यद्यपि निर्गुण शब्द से प्राय: निर्गुण ब्रह्म का बोध होता है तथापि सिंगाजी के अनेक पदों में ऐसे उद्धरण मिलते हैं जो उस भावना की ओर इंगित करते हैं जिसे हिन्दी कविता की निर्गुण धारा में बड़थ्वाल ने परात्परवाद कहा है और जिसके अनुसार ब्रह्म-तत्व निर्गुण और

सगुण दोनों से परे है। ऐसे पदों से तात्पर्य यह है कि ब्रह्म प्राप्ति की उच्चतम अवस्था में परमानन्द की अवस्था में भक्त सब प्रकार के भेद-भाव भूल जाता है और विवेचन बुद्धि (Intelligence), से परे जा पहुँचता है। वहाँ तर्क असफल हो जाते हैं, वाणी मूक हो जाती है और गूँगे के गुड़ का स्वाद लेने वाले के समान वह ब्रह्म प्राप्ति-जन्य मधुरता का आस्वादन भर करता है—उसका वर्णन करने में असमर्थ रहता है।

ऐसे ब्रह्म को 'विरला जन' ही समझ सकता है—

सकल ध्यावे जोजक म आवे, येक कुं ध्यावे पारांगत होवे।

क्योंकि आत्मा में ही परमात्मा विद्यमान है। हमारा मोहांधकार हमें उससे दूर ले जाता है। यथा—

सींधा जल मां डुबी घाघरी, जल घाघर के माहैं।

आलम डुबी ब्रह्म में, आंधे को सुजत नाहैं

और—न कछू कुचि न कछू ताला, सहेजु सहेज भया उजियाला।
बिना सूरज होय उजाव, बिना सिप जो मोति पाव॥
भमरा देखे हात न आवे, ये ही मता बीरला जन पावे।
सकल मु रहेस सकल सुन्यारा, न वाद का सवाद सुवी प्यारा॥
जीव बुद्ध छाडी ब्रह्म बुद्ध जो आवे, तब तो सांई सरीका हो जावे।

ऐसे परम ब्रह्म को न समझ सकने का कारण यह है कि जीव (मनुष्य) माया के भ्रम में पड़ा हुआ है। न केवल मनुष्य प्रत्युत जीव जन्तु तक इस माया के अधीन हैं—

भुली हारणी जात न जाणी, बकरी कुं माये कर मानी।
भूली गोचड़ी थान कुं घावे, लोही पीये दुद न पावे॥

ईश्वर की निर्गुण कल्पना का अर्थ है, मूर्तिपूजा का खण्डन। सिंगा जी ने मूर्तिपूजा की निन्दा अनेक स्थलों पर की है। मनुष्य परमात्मा को पत्थरों में, शिवालयों में खोजता फिरता है; किन्तु यह उसका केवल

भ्रम है। पत्थर की मूर्ति ईश्वर नहीं हो सकती। ऐसी मूर्ति की पूजा करना पाखंड, आडंबर और अज्ञानता का द्योतक है।

देव देव कहे सब कोई, देव सब फतर ते होई।
देव पूजे भला न होई, विनंती करी करी मुवा सब कोई॥
देव देवी की मती करो आसा, ताथि सादो रहो निरासा।
टीका टोला लाओ मत कोई, ये सब सादो पाखंड होई॥
पथर पूजे तो पतर पाव, नीरजीव की संग जलम गवाव।
सालगराम पूजो मत कोई, आंतकाल फतर ते होई॥

पत्थर के शालिग्राम (सालिगराम) को पूजने से कहीं अच्छा है सजीव आत्मा—राम की पूजा।

कबीर ने भी कहा है—

जेती देखौं आतमा, तेता सालिक राम।
साधू प्रतसि देव है, नहिं पाथर सूं काम॥

(क० ग्रं० ४४)

इस सृष्टि की रचना के सम्बन्ध में भी सिंगाजी ने विचार किया है। कबीर आदि ने सृष्टि रचना को बड़ी वृहत कल्पना करते हुए बीज रूप में ही सृष्टि-सिद्धान्त की ओर इंगित किया था। किन्तु सिंगाजी ने स्पष्ट रूप में कह दिया कि यह संसार "एक" पुरस (ब्रह्म) की रचना है और उसी ने छोटी-बड़ी वस्तुओं का निर्माण किया है। उस सर्वशक्तिमान की इस वास्तविकता को देखने के लिए "ज्ञान-दृष्टि" की आवश्यकता है—

सींघा येक पुरस की रचना सारी, कीया नाह विस्तार।
ज्ञान दृष्टि देखीया, दूजा नहीं सीरजनहार॥

इसीलिए इस परब्रह्म को आत्मा में ही खोजने को कहा है। भजन, कीर्तन, या नाम स्मरण से कुछ नहीं मिल सकता। अपने अंतर में ही उसे देखा जा सकता है।

राम कहे होय कछू नाहीं, देखो संतो हीरदा माहीं।

ब्रह्म का देस ही निराला है और उस स्थिति या अवस्था पर पहुँच कर ही उसकी उपलब्धि हो सकती है। वहाँ पहुँच कर मनुष्य माया जाल के भ्रम से मुक्त हो जाता है। उस परम स्थिति का वर्णन इन पंक्तियों मे स्पष्ट किया गया है—

चार वेद नहीं चारई खाणी, उस देस कछु पवन नी पाणी।
भूक प्यास लोभ नहीं आस, जीहा खेले कोई वीरला दास॥
रात दीवस धूप नहीं छाया, आव न जाव मोह न माया।
आन्धा जपे मन समभाव, गांव न खेते नांव न ठांव॥
दुर नहीं जाए नजीक रहेणा, भरमी भरमी बेहाल न होणा।

किन्तु इस स्थिति को पाने के लिए आत्म-ज्ञान की अपेक्षा की है-गीता में भी कहा है—"नहि ज्ञानेन सदृश पवित्रमिह विद्यते।"

संत कबीर ज्ञान की आंधी चाहते हैं—

देखो भाई ज्ञान की आई आंधी,
सबै उठानी भ्रम की टाटी रहै न भईया बांधी।[1]

जीव (मनुष्य) की चर्चा भी इस ग्रंथ में विशेष रूप से की गई है। जीव एक मिट्टी का पुतला है अथवा जीव एक ही चाम से मढ़ा हुआ अनेक रंगों से बना हुआ है। यह चार दिन के लिए इस संसार में नाचता है और अंत में कोई इसका साथ नहीं देता। संत तुलसीदास जी ने भी विनय पत्रिका मे दर्शाया है—"नाचत हो निसी दीवस मर्‌यो।" इस जीव की कोई जाति नहीं है। यह तो पानी के एक क्षण भंगुर बूँद के समान है जो सागर के जल में गिर कर पानी हो जाता है। यथा—

माटी के डेरा फेर माटी ते होई, गया पवन देख्या ना कोई।
मेरी मेरी करता जनम गँवाया, खाए न पाया आया न गया॥
एक चाम का पुतला आनेक तरंगा, दीना चार नाचे कोई नहीं संगा।
याके जात पात मूल ते नाहीं, गया बूँद दरियाव के माहीं॥

१—संत कबीर — डा० रामकुमार वर्मा, पृ०-४६।

जीवन की इस क्षण भंगुरता के कारण ही कवि ने इस संसार की असारता को इंगित करते हुए इसे भ्रमपूर्ण और झूठा बतलाया है। हमारे सब रिस्ते नाते और पारिवारिक सम्बन्धों का कारण भी झूठा मोह है। न कोई किसी का पिता है न माता। यह सब "स्वारथ का मेला" है। जीव तो "परदेशी" है अत: परदेसी से क्या नेह, क्या नाता और क्या सम्बन्ध—

मोह की कही ये भगनी और भाइ, ये परदेसी जीव की कयेसी सगाइ।
काहा का बाप काहा की माई, कहो केतका दीन की सगाई ॥
ये सकल स्वारथ का मेला, आंत न काल कु जायगा अकेला।

इस माटी की देह की निस्सारता के साथ ही साथ उन्होंने नर और नारी में कोई अन्तर नहीं समझा है। सबका रचने वाला एक ही है और इसलिए हृदय में कोई पाप लाना अज्ञानता है—

नर नारी का एकई बाप, काहे को हिरदे लाओ पाप।

इस मोह-माया के असार संसार से छुटकारा पाना ही जीव का परम धर्म है। इसी प्रसंग में सिंगाजी ने भारतीय सनातन पद्धति पर आधारित ८४ लाख योनियों की चर्चा भी की है और जीव की मनुष्य-योनि सर्वोत्तम बतलाते हुए कहा है कि यह योनि बार-बार नहीं मिलती। किन्तु साथ ही इस बार-बार के आवागमन से छुटकारा या मुक्ति पाने को प्रेरित किया है। इस संसार में पाप-पुण्य कुछ नहीं है यह तो केवल औपचारिक बंधन मात्र हैं—

घर-घर फिरे भुख मरे, कहो विनंती कोण सुं करे।
अयेसा जनम वहोर न लीजे, लख चवरासी दुख का हालू सहीजे ॥
पाप-पुंन बंधन हये दोई, अंत काल तेरा तू होई।

और इसीलिए हर्ष-शोक, दुख-विषाद करना व्यर्थ है।

मनुष्य दिन-रात हाय-हाय किया करता है और अंत में अकेला जाता है—

हाये-हाये करता सब दीन बीता, अंत काल को जायेगा रीता।
हारक सोक करो मत कोई, करता करे सो नेश्चे होई ॥

तत्कालीन विषम परिस्थितियों के बीच बहुदेववाद, मूर्ति-पूजा, तीर्थ-यात्रा, जाति-पाँति और सम्प्रदाय, वेद और शास्त्र आदि निरर्थक रूढ़िवाद फैले हुए थे। समाज भ्रम के अंधकार में भटक कर पथ-भ्रष्ट हो रहा था। साधु और पाखंडी वाह्याडंबर के द्वारा भोली-भाली जनता को गुमराह कर रहे थे। विभिन्न सम्प्रदाय अपना-अपना ढोल पीट रहे थे। स्वार्थ-सिद्धि व व्यभिचार एवं अनाचार का बोलबाला था। ऐसे समय में जनता को एक सीधा मार्ग दिखलाने की आवश्यकता थी। इसके लिए संतों ने अपनी वाणियों में न केवल व्यंग्य और कटाक्ष-पूर्ण शब्दों का उपयोग किया प्रत्युत जनता को कड़ी डाँट-फटकार भी बतलाई। तमाचे मार-मार कर गुमराहों को सीधे मार्ग पर लाने वाले का व्यक्तित्व कैसा होता है यदि इसे समझना हो तो संत-साहित्य के पन्ने उलटिये। बीच बाजार में खड़े होकर भले को भला और बुरे को बुरा कहने वाले इन संतों के सिवाय और कोई फक्कड़ नहीं हो सकते थे।

सिंगाजी ने अपनी इस डाँट-फटकार में देव-पूजा को व्यर्थ बतलाया। तीर्थ-यात्रा एवं गंगा-स्नान को आडंबर सिद्ध किया। उनका मत है गंगा-यमुना जैसी पवित्र नदियों में स्नान करने से देह धुल सकती है, मन का पाप नहीं धुल सकता। इसीलिये तीर्थ जाकर मनुष्य का तर जाना अंधविश्वास मात्र है—

तीर्थ गए कहो काहाते होई, तीर्थ गए तरे न कोई।
तीर्थ गए और गाट को खाई, बुड़की दइ-दइ जल मुंन्हाई॥
मन कुं पाप देह कुं नाहीं, काहाँ जाये धावे जल माहीं।
देह कुं पाप होये तो जल धोये जाये,
मन का कीया मन फल लै आवे॥

वेद, गीता के पठन और श्रवण से आत्म-शुद्धि नहीं हो सकती जब तक मन शुद्ध नहीं है, क्योंकि हृदय की तृष्णा ही हमारे भ्रम का कारण है—

वेद पढ़े कहो काहाते होई, वेद पढ़े तरे न कोई।
तले कागज उपर स्याही, आँधा रे पंडत देखे न माही॥
आप कहे सुणावे लोग, कयसे बुझे हिरदा की आग।
लालुच झूट कभु न जाई, ये सकल सब झूट से होई॥

ब्राह्मण समाज जन्म से ही अपने आपको ऊँचे वर्ग का समझ कर अन्य वर्गों पर प्रभुत्व जमाता रहा है। संत तुलसीदास ने ब्राह्मणों की चर्चा करते हुए उन्हें जन्म से ही ऊँचा माना है। किन्तु सिंगा जी ने इस बात को अस्वीकार करते हुए बतलाया है कि मनुष्य कर्म से ऊँच या नीच होता है, जन्म से नहीं। केवल गले में जनेऊ का तागा डाल लेने से कोई ऊँचा नहीं बन सकता। ब्राह्मण अपने को ऊँचा कहता है और नीच के घर का माँगकर खाता है। भिक्षा में अपना स्वत्व समाप्त कर देता है—

सकल ब्राह्मण देख्या जोई, धागा नाखे उत्तम न होई।
चाल है नीच नीच नहीं जात, सुरता जण तुम सुनो हो बात॥
सींघा ऊंच जात वीप्र कव्हावे, नीच घर मागण जावे।
तरण तारण कुं गउ बतावे, सो फेउ विष्टा खावे॥

सिंगा जी ने, ब्राह्मणों के कर्म देखकर उन्हें सबसे नीच कोटि का बतलाया है—

उत्तीम जात वीप्र कव्हावे, सुत्तक मृतीक घर मा लावे।
मसाण जाये गउ ते लेई, उनसे नीच और न कोई॥
कामल बेचे हाट म जाई, झुटा बोले और खुसी भाई।
अयेसा सकल ब्राह्मण देख्या जोई, इनसे नीच आवर न कोई॥

यज्ञ आदि करवा कर ब्राह्मण-भोजन या जाति भोज देने का भी सिंगा जी ने विरोध ही किया। यज्ञ करके यदि परब्रह्म को नहीं पहिचाना तो यज्ञ व्यर्थ है। ब्राह्मण-भोजन और जाति भोज भी दिखावा है—

जग कीया कहो काहावे होई, जग किया तरे न कोई।
जग कीया जगन्नाथ न जाना, साई का मन कभुं न माना ॥
सोभा करी लोक जीमाथा, अंतकाल आपजस ते आया ॥
गिन्यात जीमाये कहो काहाते होई, गिन्यात जीमाय्रे तग्या न कोई।
कोई गया जीमी कोई गया रीता, देखो साढु जग का फजीता ॥

उस युग की सबसे बड़ी कठिनाई जातिवाद और हिन्दू-मुसलमानों की समस्या थी। संत कबीर ने हिन्दू-मुस्लिम समस्या पर बहुत कुछ कहा है। सिंगा जी ने ऊँच नीच के भेद को मिटाने की बात कही है—न कोई हिन्दू है न कोई मुसलमान। सबका बनानेवाला "एक" ही है।

हिन्दु तुरक कओं मत कोई, येक बाप का बेटा दोई।

इस नश्वर संसार को न समझ कर भूल-भुलैया में पड़े रहने का कारण सिंगाजी ने मोह-माया और प्रपंच का जाल बतलाया है। कवि को इस बात का कभी दुख होता है कि मनुष्य को जन्म मिला है किन्तु उसे संसार को समझने के लिए आँखें नहीं मिलीं। इसीलिए वह मेरा-मेरा करता है किन्तु कब पवन (साँस) चला जाता है, पता नहीं चलता—

जनम दीया पण नयेण न दीया, सकल फुतला आंधला कीया।
माटी का डेरा फेर माटी ते होई, गया पवन देख्या न कोई।
मेरि मेरि करता जनम गमाया, खाण न पाया आमर न भया।

इसीलिये वह हिंसा वृत्ति में पड़ा हुआ है—

आप मारे और आप संघारे, जीव हिंसा करे संसारे।

प्रभु के प्रति प्रेम ही आध्यात्मिक उन्नति और यौगिक साधनाओं का एकमात्र आधार है। पर यह कोई सुगम काम नहीं है। मनुष्य के हृदय में बिना आत्म-शुद्धि के प्रेम और स्नेह का संचार नहीं हो सकता। उन्होंने ब्रह्म प्राप्ति के लिये प्रेम की सीढ़ी लगाने को कहा है—

प्रीत सीड़ी तुम लाओ रे भाई, ताते तत्काल पा पोंह्चे जाई।
सहेजे सहेजुँ प्रीत लगाओ, ताते तुम आगाऊ जाओ॥

इसी तरह कबीर ने भी कहा है—

कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
(क० ग्रं० ६९)

इस ग्रंथ में, सिंगाजी ने भटके हुए लोगों को उपदेश देने वाले साधु संतों की पहिचान भी बतलाई है। सच्चा संत कौन है और उपदेस कौन दे सकता है? सच्चा संत और उपदेशक वही है जिसकी करनी और कथनी में कोई अंतर नहीं होता। जिस तरह केवल गंतव्य स्थान पर पहुँचने के लिए चलते हुए आगे बढ़ने की आवश्यकता है, केवल कहने मात्र से वहाँ नहीं पहुँचा जा सकता। उसी तरह जैसा कहे वैसा करने से ही कार्य पूर्ण हो सकता है।

मारग चले तो गाँव क जाई, कहे-कहे पोहवण न पाई।
उपजे विनसे न सांई हमारा, और दीसे सब अक्रम का मारा॥
देखे और साहेब हुरदे आवे, साई बुध संत की कव्हावे।
जांता मन कु फेरे कोई, ते नर सहेजे पारंगत होई॥

इस प्रकार से संसार माया के मोह में फँसा भटक रहा है। संतों की रज्जु में साँप और रेत में चाँदी के भ्रम को सिंगा जी ने भूले हुए मृग के उदाहरण से समझाया है, जो कस्तूरी गंध को घास में ढूँढ़ता फिर रहा है—

भूला मृग आपण खोजे, दवड़त फिरे जडांत सूंघे।
भूली मछली पाणी मुं घर करे, नीर न पीवे प्यासी मरे॥
ऐसा भूला लोक ब्रह्म मां फिरे, बीन पंथ कहो कयसे तीरे॥

मिथ्या, अहंकार, ईर्ष्या, क्रोध आदि को त्याग कर आत्म-संतोष धारण करना चाहिये—

झूट खोओ साच लेओ तो सही, आप ठगाओ आवर ठगीये ते नाहीं।
क्रोध खोओ सोल संतोस करो, शोक खोओ हारक मन धरो॥

इस "द्रढ़ उपदेस" के संग्रह में एक स्थल पर सिंगा जी की वाणी में संसार की स्थिति के प्रति ग्लानि, क्षोभ और निराशा के साथ ही साथ वेदना दिखलाई पड़ती है। ब्रह्म के बिना, उस परम स्थिति पर पहुँचे बिना यह जीवन धिक्कार है। धन, देव पूजा, तीर्थ-व्रत, दान-पुण्य, संतान सुख, सब प्राप्त होने पर भी यदि परब्रह्म से दूर रहे तो यह जनम धिक्कारने योग्य है। हरि भक्ति के बिना उन्होंने संसार को बार-बार धिक्कारा है।

सोना रूपा होये तो घणा, तुम बीना धकार जीवणा।
हाती घोड़ा होय ते घणा, तुम बीना धकार जीवणा ॥
नौबत नगारा घुरे आभारा, तुम बीना जीवणा धीकारा।
तीरथ वरत करते घणा, तुम बीना धकार जीवणा ॥
देवा देवी पूजे ते घणा, तुम बीना धकार जीवणा।
दान पुंन करे अपारा, तुम बीना जीवणा धीकारा ॥
कटक खंगार होवे अपारा, पुत्र कलत्र होय घणा परीवारा।
ऐसा माया का सुख भोगे आपारा, हरीभक्ती बिन ध्रग ध्रग संसारा ॥

सिंगाजी के इस ग्रंथ 'द्रढ़ उपदेस' के २०१ पदों में से कुछ अत्यधिक महत्वपूर्ण पदों के उदाहरण देकर संत के जीवन-दर्शन का विश्लेषण किया है। इनमें हमें स्थल-स्थल पर कबीर, दादू, दरिया आदि संत कवियों की विचारधारा से समानता दिखलाई पड़ती है, किन्तु इस अध्याय में तुलनात्मक विवेचन हमारा लक्ष्य नहीं है।

"द्रढ़ उपदेस" की "निमाड़ी" भाषा के संबंध में "सिंगा जी की वाणियों की भाषा" नामक अध्याय द्रष्टव्य है।

(२) सिंगाजी का आत्म-ध्यान :

"आत्म ध्यान" में सिंगाजी ने योग, प्राणायाम और समाधि का विशद वर्णन किया है। योग से सम्बन्धित नाड़ियों, षटचक्र, कुंडलिनी आदि का वर्णन इस रचना की विशेषता है।

शिवसंहिता के अनुसार शरीर में ३,५०,००० नाड़ियां हैं। इनमें तीन नाड़ियां मुख्य हैं—इड़ा, पिंगल और सुषुम्ना। सुषुम्ना नाड़ी के निम्न मुख में कुण्डलिनी निवास करती है। सुषुम्ना की भिन्न-भिन्न स्थितियाँ, जिनमें से कुण्डलिनी आगे बढ़ती है, चक्रों के नाम से पुकारी जाती हैं। इन चक्रों का वर्णन सिंगाजी ने किया है, जिससे हमें इन चक्रों की स्थिति, आकृति और रंग आदि का समुचित ज्ञान होता है—

१—मूलाधार चक्र :

मूलद्वारे गणेश देवता। रंग पीला। पाखड़ी चार। जाप ६००१।

२—स्वाधिष्ठान चक्र :

स्वाधिष्ठान चक्र ब्रह्मा देवता। रंग श्वेत। पाखड़ी छै

जाप ६०००।

३—मणिपूरक चक्र :

नाभिकमल विष्णु देवता। रंग नीला। भीतर नीला। पाखड़ी ८।

जाप ६०००।

इस तरह षट-चक्रों का वर्णन मिलता है।

इस रचना की दूसरी विशेषता यह है कि सिंगाजी ने इसमें प्रकृति के उपादान और मनुष्य के अंग-प्रत्यंगों की तुलना करते हुए उनमें एक अनूठा साम्य दिखलाया है। यह एक दम मौलिक उद्भावना है—

जैसी रचना बाहर है, तैसी भीतर देख।
बाहर भीतर एक है, कहन को है अनेक।

इस तथ्य को इस तरह समझाया है—

"यदि यह देह पृथ्वी है तो इसमें पर्वत क्या है? घुटने और हड्डियाँ पर्वत हैं। इसमें झरने चाहिये तो इस देह के १० द्वार ही झरने हैं। इसमें सूर्य और चंद्रमा देखना हो तो हमारी दो आँखें सूर्य और चन्द्रमा हैं। इसका, आकाश हमारा मस्तक है और हमारे भय और भ्रम इस मस्तक रूपी आकाश के बादल स्वरूप हैं। "अनहद-

नाद" ही इन बादलों की गर्जना है। क्रोध ही काल है और परमेश्वर ढूँढ़ने वाले "सोह" को ही परमेश्वर समझ सकते हैं।"

बाहर भीतर जलमई, अन्तर नहीं लगार।
अपने नयन आपको देखे, न कछु वार न पार।

मानव शरीर की प्रकृति के साथ उपरोक्त तुलना अनूठी है और इसमें हमें प्रकृति के साथ सामंजस्य बैठाकर देह की नश्वरता और ब्रह्म की अनित्यता का ज्ञान होता है।

सकल जीव एक कर लेखे। ऊँच नीच कोई मत लेखे॥
लालच लोभ सकल है कांची। हुश्यारी करो नहीं होयेगी हाँसी॥

"आत्म-ध्यान" अथवा योग-साधना के लिये उपरोक्त उपदेश एक दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

(३) सिंगाजी का दोष-बोध :

प्रस्तुत रचना में सिंगाजी ने संक्षिप्त में मानव-समाज में व्याप्त बुराइयों और कमजोरियों की ओर इंगित करते हुए मनुष्य के कुछ दोषों की व्याख्या की है।

मनुष्य स्वार्थवश अनेक दुष्कर्म करता रहता है और ऐसे दुष्कर्मों से दूर रहने के लिये अनेक उपदेशात्मक ग्रंथों की रचना भी हुई है। इन्हीं से दूर रहने के लिये विद्वान अपने भाषणों में इनकी चर्चा करते हैं। किन्तु सिंगाजी ने इन दोषों का विस्तृत विवेचन न करते हुए संक्षिप्त में केवल यही बतलाया है कि मनुष्य को किन-किन बुराइयों से दूर रहना चाहिये। इस रचना में परम्परानुगत उपदेश की झलक भी दिखलाई पड़ती है। यथा—

दोष संत को सताये का। दोष मेरी मेरी किये का।
दोष व्यभिचार किये का। दोष ब्रह्म छोड़ देव सेवने का॥

(४) सिंगाजी का नरद

"नरद" शब्द संस्कृत के नर्द्—नर्दति का अपभ्रंश है। नर्द् के अनेक अर्थों में, अव्यक्त वाचा, ध्वनि करना, शब्द करना, चीत्कार

करना, गुण गान करना[1] आदि महत्वपूर्ण हैं। यहाँ पर नरद शब्द ध्वनि करना अथवा गुणगान करना के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। सिंगा जी की प्रस्तुत रचना, इस अर्थ के अनुसार ब्रह्म और सद्गुरु के गुणगान के रूप में लिखी गई है। इस गुणगान में अनेक स्थलों पर कवि ने इस संसार के अज्ञान के प्रति गहरा क्षोभ भी व्यक्त किया है।

इस ब्रह्म के गुणगान में उन्होंने प्रारम्भ में ही गुरु की महत्ता प्रतिपादित की है। तप योग और साधना से ब्रह्म नहीं मिलता। सद्गुरु की कृपा मात्र से ब्रह्म सहज ही प्राप्त हो जाता है—

तप किया न खाक लगाई। सतगुरु दिया सहज बतलाई।

और वह जगदीश्वर (ब्रह्म) कैसा है—

अन्न खाय न पानी पीवे। हातरु पांव शीश नहिं दीखे॥
ना बोले ना रूप दिखावे। ऐसा तू जगदीश कहावे॥

यह ब्रह्म विश्व के कण कण में व्याप्त है किन्तु संसार भ्रम में भूला भटक रहा है—

तीन लोक में किया पसारा। क्यों कर भूला सब संसारा॥

इस अज्ञानी जीव को यही सच्चा रास्ता अपनाना चाहिए अन्यथा वह अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच ही नहीं सकता—

बिन देखे क्यों चलिये बाटा। जाय पड़े कहीं औघट घाटा।
जन सिंगा भूलो संसारा। जीते जी कोई उतरे पारा।

इन्हें मुक्ति का अथवा ब्रह्म-प्राप्ति का मार्ग पंडित-जन नहीं बतला सकते क्योंकि पंडित स्वयं नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं—

अहो पंडित तुम देखो विचारी। कौन भया पुरुष कौन भई नारी।
आप गावे आप सुनावे। भजन कपूत मुक्ति नहीं पावे।
अपनी मुक्ति को आप न जाने। तो क्यों बांचे वेद पुराने।

अतः वास्तविकता को समझे बिना वेद पुराण पढ़ना भी व्यर्थ है।

१—दृष्टव्य : तारणीश आकृत शब्दार्थ कौस्तुभ।

(५) सिंगाजी की शरद

शरद कहो तुम संशय मेटो। हर्ष शोक नहीं करना।
घड़ी एक दिन दो चार में। अखिर अन्त को मरना।

उपरोक्त पंक्तियों से सिंगाजी की "शरद" नामक रचना प्रारम्भ होती है। "शरद" शब्द का प्रयोग "शरद-पूर्णिमा" की क्षण-भंगुरता के अर्थ में किया गया जान पड़ता है। मनुष्य अपनी देह को अनेक प्रकार से साज सँवार कर उसको सौंदर्य-पूर्ण बनाना चाहता है। इसके साथ ही इस देह के लिए अनेक प्रपंच करता है और अपने अनेक दैहिक और भौतिक स्वार्थों की पूर्ति करना चाहता है। किन्तु कदाचित् वह यह नहीं जानता कि यह देह नश्वर है, यह सौंदर्य पानी के बुलबुले की तरह क्षण-भंगुर है। किसी क्षण भी पलक मारते ही इस देह का नाश हो सकता है। इसी रहस्य को समझाने के लिए कवि ने शरद-पूर्णिमा के उदाहरण से यह बतलाया है कि इस दो घड़ी के जीवन में जब कि अन्त में इसका नाश ही होना है, हर्ष-शोक करना अज्ञान है।

"शरद" का सौंदर्य अप्रतिम होता है किन्तु यह भी क्षणिक ही है। उस पर फिर क्रमशः अमावस्या का अन्धकार छा जाता है।

जिस तरह पूर्णिमा का चन्द्रमा क्रमशः छोटा होता जाकर एक दिन अमावस्या के घोर अन्धकार में लुप्त हो जाता है, उसी तरह जीव भी नश्वर है। उसका भी इस जगत में आना जाना लगा रहता है।

इस रचना में हमें जीवन और जगत के इस रहस्य की चर्चा मिलती है। इसलिए जीव को बोध कराते हुए सिंगाजी कहते हैं—

कहाँ से आया कहाँ जायगा कहाँ जीव का बासा।
सोई पंथ तुम खोजो साधु और झूठी सब आसा॥

इसीलिए इस जीव को नश्वरता का ज्ञान हो जाना अपेक्षित है।

अपनी इन्द्रियों पर बन्धन लगाकर ही हमें विश्वात्मा के दर्शन हो सकते हैं—

> सुन्न करो तुम शहर बसाओ मारो पाँचो थाना।
> आकाश ऊपर महल है जिनका बिन पेड़ी का जाना॥

संसार के नाते रिश्ते झूठे हैं। नारी पुरुष का भेद अज्ञान है। इन दोनों का मूल एक ही है। इसी तरह यदि मुख से राम-राम कहने वालों का मन स्थिर नहीं है तो फिर यह राम नाम भी झूठा है—

> कोई कहे बेटा कोई कहे बेटी कोई कहे पुरुषा नारी।
> संजोग कहो तो सब ही झूटे तौली दुनिया सारी।
> मुख सेती राम कहो मन तो फिरै उजड़ा।
> खेत कहे मोहे नेक न खेड़ो कैसे पाके बाड़ा।

(६) सिंगाजी की देश की वाणी

संतों का देश ही निराला है। सबसे अलग, सबसे न्यारा। वहाँ मैं और मेरा-तेरा कुछ नहीं है। पुरुष और नारी का भेद भाव नहीं है। उनका देश जाति पाँति के संकुचित दायरों से अलग एक नवीन समाज-रचना के प्रेरक वातावरण से भरा हुआ है। विश्व-बंधुत्व की भावना ही कदाचित् संतों का संदेश है, और यही संदेश सिंगाजी की इस देश की वाणी में, सारी भौतिक और लौकिक सीमाओं को लाँघता सा दिखलाई पड़ रहा है।

सिंगाजी जिस वातावरण का निर्माण करना चाहते हैं वहाँ न जीवन है न मृत्यु और न वहाँ कुल अथवा जाति ही है। उनका कथन है कि इस संसार में पाप-पुण्य, झूट-सच, जप-तप, जमीन-आसमान और बादशाह-काजी जैसा कोई भेद नहीं है। सब एक हैं। सब समान हैं—

> मेरे देश शक्ति नहीं शीवै। मेरे देश मरे न जीवै॥
> मेरा देश बेटा नहीं बेटी। मेरे देश सांच नहीं झूटी॥

मेरे देश पूजा नहीं पानी। मेरे देश जापा नहीं थापी॥
मेरे देश जमी नहीं आसमाना। मेरे देश बालक नहीं ज्वाना॥
मेरे देश बादशाह नहीं काजी। मेरे देश उपराव नहीं पाजी॥
मेरे देश पाप नहीं पुन्न। मेरे देश बोले नहीं मौन॥

इसी रचना में सिंगाजी ने अपने देश की चर्चा करते-करते एक स्थल पर संसार की नासमझी के प्रति क्षोभ के साथ-साथ कठोर व्यंग्य भी किया है—

कहैं सिंगाजी कहते-कहते हैराण हुवा। अब कछु कहा न जाय।
कूकर स्वभाव छोड़े नहीं। फीर-फीर हाड़ चबाय॥

(७) सिंगाजी की बांणावली :

साधारणत: बांणावली से बाणों की अवली का अर्थ लिया जाता है। यहाँ ये बाण (तीर) अभिव्यक्ति की तीव्रता और तीखेपन के अर्थ में प्रयुक्त हैं। इस अर्थ में "चुभते चौपदे" और "नावक के तीर" तो प्रसिद्ध ही हैं—

सतसइया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखन मा छोटे लगें घाव करें गम्भीर।

विचारों को कम से कम शब्दों में कह देना गागर में सागर भर देना है किन्तु कभी-कभी कम से कम शब्दों में बात कुछ ऐसे ढंग से कही जाती है कि वह सीधे कलेजे में बाण (तीर) की तरह धँसती है। इसी विशेष अर्थ में सिंगाजी की यह "बांणावली" "नावक के तीर" से किसी दर्जे कम नहीं है। अन्तर केवल है तो विराग और अनुराग का। बिहारी आदि कवियों के "तीर" हृदय में अनुराग पैदा कर मनुष्य को संसार के भ्रम में भटकाते हैं तो सिंगाजी के ये "बाण" विराग पैदा कर जीवन की क्षण भंगुरता और संसार की असारता का सन्देश देते हैं।

संत सिंगाजी की प्रस्तुत रचना ऐसे ही "वाणी की अवली" है, जिसमें उन्होंने जीवन की अनेक महत्वपूर्ण स्थितियों और भावनाओं पर विचार किया है। उन्होंने मनुष्य के अनेक भाव और मनोविकारों का बड़ा गहन और गम्भीर विवेचन किया है। शोक-हर्ष, झूठ-सत्य, धैर्य-चंचलता, प्यार-त्याग, मोह-ममता आदि तत्वों की पांडित्य-पूर्ण व्याख्या की है। जीवन की गहन अनुभूति की अभिव्यक्ति इस रचना की विशेषता है—

निद्रा तो सुख की। जागना तो चिंता को॥
आवना तो जीव को। प्रलय तो तन को॥

हम अपने जीवन में झूठ और सत्य की अच्छाई और बुराई पर अनेक प्रकार से विचार करते हैं। धैर्य धारण करना चाहिये, मन की चंचलता हानिप्रद है। इन्हीं बातों को उन्होंने कितनी सूक्ष्मता से समझाया है—

झूठ तो लोभ की। साँच तो मुक्ति की॥
धीरज तो वृक्ष की। चंचलता तो पवन की॥

और नाद (ध्वनि), दौड़ (गति), वर्षा, तान, डूबना, तरना, तपस्या आदि बातों पर इस प्रकार विचार किया है—

नाद तो अनहद की। दौड़ तो जम की॥
वर्षा तो सोहं की। तान तो कोयल की॥
तरना तो वैराग्य का। डूबना तो अज्ञान का॥
तपस्या तो पत्थर की। हलकाई तो आकाश की॥

(८) सिंगाजी का सात वार :

हमारे जीवन में सात वार (सप्ताह के सात दिन, सोमवार, मंगलवार आदि) का व्यावहारिक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण स्थान है। इन दिनों या वारों को शुभ या अशुभ मानते हुए हम अपना कार्यक्रम बनाते हैं। शुभ दिन पर अपना कार्य आरम्भ करते हैं और अशुभ दिन को टालने का प्रयास करते हैं। सात वार के इस व्यावहारिक

पक्ष के अलावा ज्योतिष-शास्त्र में ये वार अपने नामों के अनुसार ग्रहों के प्रतीक भी हैं, जैसे—रविवार-सूर्य, सोमवार-चन्द्र इत्यादि। संत सिंगाजी ने इन परम्परानुगत विश्वासों की अवहेलना कर, दोहों में रचित अपनी प्रस्तुत रचना में, इन वारों या दिनों पर सर्वथा मौलिक दृष्टि से विचार किया है। इस रचना में उन्होंने प्रत्येक वार के माध्यम से जीवन की क्षण-भंगुरता, ज्ञान की गहनता, और ब्रह्म-प्राप्ति के मार्ग की महत्ता पर विचार किया है—
जैसे बुधवार के सम्बन्ध में उनका कथन है—

बुधवार से बुद्ध विचारे। जीवन मरण की क्रिया सारे॥
पाँच तत्व लै ब्रह्म म धरे। सो नर जीते मरते क्यों डरे॥

और गुरुवार (बृहस्पतिवार) की व्याख्या उन्होंने इन शब्दों में की है—

बृहस्पतिवार बहुरि नहीं आवे। अनदेखेगै को ल बतावे॥
बढ़े अकाश चवघड़िया वाजे। अविचल देखे तेरा ही राजे॥

बृहस्पतिवार बार-बार जन्म न लेने की शिक्षा देता है और 'अनदेखे' (जिसे देखा नहीं है—ब्रह्म) का मार्ग बतलाता है। मनुष्य को चाहिए कि वह साधना के द्वारा 'आकाश' (शून्य) में पहुँच जाये जहाँ अनहद नाद सुनाई देता है—यही वह स्थान है जहाँ ब्रह्म प्राप्ति हो सकती है।'

(९) सिंगाजी की पंद्रह तिथि :

सात वारों की तरह हिन्दी महीनों की तिथियाँ (प्रतिपदा, दूज, तीज, पूर्णिमा आदि) भी हमारे जीवन और कार्य प्रणाली में बहुत सहायक हैं, । शुभ और अशुभ तिथि का प्रश्न हमारे सामने हमेशा बना रहता है। सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहों की गति का ज्ञान भी हमें इन तिथियों से ही होता है। मनुष्य जन्म से मृत्यु-पर्यन्त इन तिथियों के चक्कर में पड़ा रहकर जीवन का भूलभुलैया में भटकता फिरता है। यहाँ तक कि मनुष्य का शुभ तिथि पर जन्म और मरना भी उसके लिए शुभ तलाया गया ब है।

संत सिंगाजी की दृष्टि में तिथियों का यह भौतिक महत्व बिलकुल नहीं है, और इसीलिए उन्होंने दोहा शैली में रचित अपनी प्रस्तुत रचना में इन तिथियों का विवेचन करते हुए एक भिन्न विचार प्रस्तुत किया है। ऐसा लगता है मानों ये तिथियाँ उनके लिए संख्या सूचक शब्दों से अधिक महत्व नहीं रखतीं। इस संक्षिप्त विवेचन में जीव, ब्रह्म, माया और सृष्टि की बड़ी सुन्दर व्याख्या मिलती है। यथा—

दूज (द्वितीया) के सम्बन्ध में उनका मत है—

दूजे दूज दूजा नहीं कोई। जो जाने सो आप ही होई।
चंदा सूरज जहाँ जोति लागी। सुख लिया दुख गया सब भागी।[1]

बारस (द्वादसी) में 'ब्रह्म' की कितनी सरल व्याख्या की गई है—

'वह बारह रास (राशियों) से न्यारा है, उसका कोई नाम-ठाम नहीं है, वह बिना शरीर का है, वह मुक्त है, वह हाथ में नहीं आता इस पर भी कोई अपने आप को उससे दूर समझकर भटके तो भटका करे।'

बारस बारह रास ते न्यारा। देह बिना साहब है मेरा।
मुक्त दीसे पर हात न आवे। ता पर कोई रंडापो गाले।[2]

'रंडापो' का अर्थ विधवा के वैधव्य से है। जैसे स्त्री पति के बिना वैधव्य काटती है उसी तरह जीव अपने अज्ञान के कारण 'ब्रह्म' के बिना भटकता रहता है और अपने को उससे दूर पाता है।

(१०) सिंगाजी की बारहमासी :

संस्कृत और हिन्दी के कुछ कवियों ने ऋतु-वर्णन और विरह-वर्णन में वर्ष की विभिन्न ऋतुओं और बारह महीनों की विशेषताओं का वर्णन किया है। जायसी के "पद्मावत" में नागमती के विरह-वर्णन की "बारहमासी" तो अपनी कला के कारण अति प्रसिद्ध हो गई है

१—सिंगाजी की वाणी—संग्रहकर्ता—श्री स्वामी घासीदासजी, पृष्ठ ५८

२—वही, पृष्ठ ५९।

संत सिंगाजी ने इन ऋतुओं के प्राकृतिक सौंदर्य से परे हटकर इनके माध्यम से मनुष्य को अनेक गम्भीर सन्देश दिये हैं। इस एक छोटी-सी रचना में सिंगाजी ने ब्रह्म-निरूपण किया है और भेद-दृष्टि की अनुपयोगिता की ओर इंगित किया है।

विभिन्न विद्वानों और कवियों ने अपनी अनुभूति को व्यक्त करते हुए इन महीनों का महत्व प्रतिपादित किया है। इसीलिए कृषक, व्यापारी, प्रेमी, विरही, योगी, संन्यासी आदि के लिये ये महीने विभिन्न महत्व रखते हैं और तदनुसार इनका उपयोग किया जाता है। किन्तु सिंगाजी ने इन महीनों के द्वारा जीवन की गहन अनुभूतियों को दर्शाया है :—

सावन—

सावन सागर भरिया। थाह अथाह भरा है दरिया।
नहीं है पारा नहीं है वारा। जिसके गर्भ से सकल संसारा।

वैसाख—

वैसाख वस्तु आप में खोजे। पाँच पचीस को संग कर बोधे।
उड़ना पक्षी का खोज बतावे। वो नर देह धरे नहीं आवे।

अगहन—

अगहन से तो मिलकर रहो। नयन खोलकर अजपा गहो।
इंगला पिंगला जिनने साधी। सहज सुन्न में ली समाधी।

माघ—

माघ मगन बुध्दि विचारो। हिन्दू तुर्क का संग निवारो।
दोनों पंथ से रहो न्यारा। कहे जन सिंगा सदा मतवारा।

(११) सिंगाजी के भजन—

इनके पदों, भजनों आदि का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उनका जीवन-दर्शन भी उनके पूर्ववर्ती रहस्यवादी और निर्गुण पंथी संतों के दर्शन पर आधारित है। उनमें जीवन की नश्वरता, आत्मा की अमरता, गुरु भक्ति आदि तत्व की प्रधानता दिखलाई पड़ती है। मूर्ति

पूजा में उन्हें भी विश्वास नहीं है। तीर्थ आदि जाकर स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करने की अभिलाषा को न केवल उन्होंने निराधार बतलाया है प्रत्युत ढकोसला मात्र कहकर अवहेलना की है। एकेश्वरवाद और अखंड ब्रह्म की भावना इनके भजनों में स्पष्ट होती है। इनके कुल भजनों की संख्या ८०० बताई गई है। ये सभी भजन निर्गुणधारा के हैं तथा इनमें से कुछ भजन (करीब ८५) समाधि के समय के गाये हुये बतलाये गये हैं। इनके भजनों का सम्यक विवेचन, "संत सिंगाजी का दर्शन और साधना पद्धति", तथा "कवि सिंगाजी" नामक अध्यायों में किया गया है।*

---

*—सिंगाजी की समस्त रचनाओं का संकलन इस प्रबंध के परिशिष्ट में किया गया है।

संत सिंगाजी की वाणियों की दार्शनिक पृष्ठ-भूमि

संत कवियों ने जिस 'ब्रह्म' की उपासना की है उसके निर्गुणत्व का श्रेय उन्हें नहीं दिया जा सकता। न तो निर्गुण ब्रह्म की उद्भावना संतों ने की है और न ही सूक्ष्म ब्रह्म की खोज। इस सम्बन्ध में तो केवल इतना ही कहा जा सकता है कि अनेक कालों से चली आती हुई ब्रह्म-चिंतन की धारा को इनके विचारों में प्रश्रय दिया गया। वस्तुत: ब्रह्म-चिंतन की यह धारा वेदों और उपनिषदों से निकली तथा जैन और बौद्ध-काल में विस्तृत होती हुई चौदहवीं पन्द्रहवीं शताब्दी तक संतों के ज्ञान-क्षेत्र में अपने पूर्ण विकास पर पहुँच गई। इसलिये संत-मत को समझने के लिए इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना आवश्यक है।

डा० यदुनाथ सिन्हा के मतानुसार वेदान्त दर्शन, वेद और उपनिषदों के विचारों की पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित है।[1] वेदों में बहुदेववाद, एकदेववाद और एक सत्यवाद के बीज मिलते हैं। ऋग्वेद की ऋचाएँ उन देवताओं की स्तुति में गाई गई हैं, जो प्राकृतिक दृश्यों के मानवीकृत रूप हैं। किन्तु सूक्ष्म विश्लेषण से यह भी विदित होता है कि ऋग्वेदीय युग के पश्चिमांश में ऋषियों का बहुदेववाद एकदेववाद की ओर अग्रसर हो चला था।[2] कहीं-कहीं तो ऐसे सर्वात्मवाद की भी झलक मिलती है जिसमें एक देवत्व की भावना केवल सर्व देवत्व का अपितु व्यापक प्रकृति (Nature) का भी, प्रतिनिधित्व करती है। सर्वात्मवाद का यह बीज पश्चाद्वर्ती वैदिक साहित्य में विकसित होकर वेदान्त-दर्शन में अपने चरम रूप को प्राप्त हुआ।[3] आगे चलकर साम

१. भारतीय दर्शन—डा० यदुनाथ सिन्हा—पृष्ठ २७६।

२. संत कवि दरिया—एक अनुशीलन—डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, पृष्ठ ५४।

३. संस्कृत साहित्य का इतिहास—मैकडोनेल—पृष्ठ ७०, ७१।

और यजुष् में ऐसे मंत्र मिलते हैं जिनमें परमानन्द-जन्य आत्म विस्मृति का वर्णन है। डा० राधाकृष्णन ने इस स्थिति का चित्रण करते हुए लिखा है कि इन वर्णनों को पढ़कर हमें योगियों की उन दिव्य आनन्दानुभूति जन्य अवस्थाओं की याद आ जाती है, जिसमें सुन्दर "ध्वनियाँ" सुन पड़ती हैं और अद्भुत "दृश्य" गोचर होते हैं।[1] डा० रामकुमार वर्मा ने 'कबीर का रहस्यवाद' नामक ग्रंथ में ऐसी ही दिव्य-स्थिति का वर्णन किया है। सेंट मार्टिन की रहस्यवाद से सम्बन्ध रखने वाली परिस्थिति यहाँ समझ सकते हैं जब उन्होंने कहा था :—

"मैंने उन फूलों को सुना जो शब्द करते थे और उन ध्वनियों को देखा जो जाज्वल्यमान थीं।"[2]

ऋग्वेद का यह मत कि सभी देवता ईश्वर के रूप हैं, उस व्यापक सिद्धान्त पर आश्रित है कि मूल सत्ता एक ही है। प्रसिद्ध पुरुष-सूक्त में वैदिक ऋषि सम्पूर्ण जगत को एक रूप में देखते हैं। मानवीय इतिहास में प्राय: यही अद्वैत की प्रथम अनुभूति है। इस सूक्त का कुछ उपयोगी अंश नीचे उद्धृत किया जाता है :—

"पुरुष के सहस्त्र मस्तक हैं, सहस्त्र नेत्र हैं, सहस्त्र पैर हैं। वह समस्त पृथ्वी में व्याप्त है और उससे दस अंगुल परे भी है।"[3]

"जो कुछ है और जो कुछ होगा, सो सब वही पुरुष है। वह अमरत्व का स्वामी है। जितने अन्न से पलने वाले जीव हैं सबमें वही है। उसकी इतनी बड़ी महिमा थी। और उससे भी बड़ा वह पुरुष

---

१. इण्डियन फिलासफी—डा० राधाकृष्णन–पृष्ठ ११६।

2. I heard flowers that sounded and saw notes that shone.—
—अंडरहिल रचित, मिस्टिसिज्म–पृष्ठ ८।

३. ऋग्वेद, १०, ९०, १–३।
सहस्त्र शीर्षा पुरुष: सहस्त्राक्ष: सहस्त्रपात:।
सभूमि विश्वतो वृत्वा त्यतिष्ठदशांगलम ॥१॥

था। सम्पूर्ण विश्व उसका एक पाद (चौपाई) मात्र है; तीन पाद बाहरे अन्तरिक्ष में है।"[१]

"तत्व एक ही है, ऋषि उसका नाना रूपों में वर्णन करते हैं; कोई उसको अग्नि कहता है, तो कोई यम और कोई मातरिश्वन्। वह 'एक सत' पुरुष नहीं है; वह न पुरुष है और न स्त्री है; वह अनुभय है। तत्व प्राण के बिना प्राणवान है। उसके अतिरिक्त और कोई नहीं था।[२] यहाँ विशुद्ध अद्वैतवाद के दर्शन होते हैं। वह "एक" बाद में ब्रह्म या आत्मा के नाम से अभिहित हुआ।[३]

वेदान्त के विकास में तीन युग देखने में आते हैं। (१) आदि-काल, (२) मध्यकाल और (३) अन्तिम काल।

(१) आदिकाल जिसमें श्रुतियाँ वेद का साहित्य; विशेषतः उप-निषद का साहित्य पाया जाता है, जो वेदान्त का मूल स्रोत कहा जा सकता है। इस युग में वेदान्त के विचार विशेषतः द्रष्टाओं की रहस्यमय अनुभूतियों तथा कवित्वमय उद्गारों के रूप में प्रकट हुए।

(२) मध्यकाल जिसमें इन विचारों का संकलन, समन्वय तथा युक्तिपूर्वक प्रतिपादन किया गया है। इस युग का प्रधान ग्रंथ ब्रह्म सूत्र है।

(३) अन्तिमकाल जिसमें हम उन समस्त भाष्यों तथा टीकाओं को रखते हैं जिनमें वेदान्त के विचारों को तर्क की कसौटी पर रख

---

१. पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२॥
एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥

२. ऋग्वेद, १०, १२९, १-२।

३. दि सिक्स सिस्टम्स आफ इंडियन फिलासफी, अध्याय २, वासं।
ए स्टडी आफ वेदान्त, अध्याय २; सोल।

कर विचार किया गया है। इस युग में इस विषय पर, वेद की दुहाई न देकर, स्वतंत्र युक्तियों द्वारा, विवेचन किया गया है।

ऋग्वेद में बहुत से ऐसे मंत्र पाये जाते हैं जिनमें सभी देवताओं को एक ही ईश्वर के भिन्न-भिन्न रूप या शक्ति कहा गया है। 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति..........' अर्थात् एक ही सत्ता है जिसे विद्वान भिन्न नामों से पुकारते हैं।[1]

संतों के ज्ञान मार्ग का आदि रूप अथर्ववेद में वर्णित व्रात्यों की सभ्यता में मिलता है। व्रात्य का अथर्ववेद में महत्वपूर्ण स्थान है। विद्वानों का मत है कि अथर्ववेद का यह "व्रात्य" वस्तुतः ऋग्वेद का "पुरुष" ही है, जो उपनिषदों और सांख्य से होता हुआ संतों के यहाँ "सत्पुरुष" के रूप में ग्रहण कर लिया गया है।

उपनिषद्-युग में आने पर ब्रह्म चिंतन की शैली में काफी विकास मिलता है। रानाडे महोदय ने उपनिषद् को "पश्चाद्भावी भारतीय दार्शनिक विचारधाराओं की उद्गमभूमि" कहा है।

यद्यपि उपनिषदों को "वेदान्त" की संज्ञा दी गई है, तथापि उसका साहित्य वैदिक साहित्य से पृथक अपनी विशिष्ट सत्ता रखता है। उपनिषदों में कुछ प्रमुख समस्याओं पर विचार किया गया है, जैसे—वह क्या है जिसके ज्ञान से अज्ञात ज्ञात हो जाता है ? किस तत्व को जान लेने से अमरत्व प्राप्त हो जाता है ? ब्रह्म क्या है ? आत्मा क्या है ?

बृहदारण्यक में शाकल्य और याज्ञवल्यक्य के वार्तालाप में इन सब प्रश्नों का एक ही उत्तर में समाधान मिलता है।[2]

शाकल्य—"हाँ, किन्तु ठीक-ठीक कितने देवता हैं, याज्ञवल्यक्य ?'

याज्ञवल्यक्य—"एक।"

एक ईश्वर और एकान्त सत्ता, दोनों भावनाएँ वस्तुतः एक ही हैं।

१—ऋग्वेद—१।१६४।४६ और भी मंत्र देखिए—१०।१४।५, १०।१२९, १०।८२ आदि।

२—बृहदारण्यक, ३९ १।

इसका विवेचन करने के लिए उपनिषदों में दो भिन्न दृष्टिकोण मिलते हैं। एतरेय और बृहदारण्यक में कहा गया है कि पहले आदि में केवल यह आत्मा मात्र था।[१] बृहदारण्यक में फिर कहा गया है कि आत्मा को जान लेने से सब कुछ ज्ञात हो जाता है।[२] छांदोग्य और मुंडक में कहा गया है, "यह सब कुछ ब्रह्म है।"[३] अन्त में यहां तक कह डाला है–"यह आत्मा ही ब्रह्म है", "मैं ब्रह्म हूँ।"[४]

इस 'एक' ब्रह्म की विवेचना करते हुए स्पष्ट किया गया है कि यह "एक' ब्रह्म सर्वव्यापी और संसार के सभी प्राणियों में निवास करने वाला "निर्गुण" ब्रह्म है :

एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासी साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥[५]

यह ब्रह्म अति सूक्ष्म है और इन्द्रियों के परे है :

अव्यक्तस्तु परः पुरुषो व्यापको लिंग एव च।[६]

इस ब्रह्म,को मन से, वचन से, और आँखों से नहीं जाना जा सकता

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा।[७]

इस तरह उपनिषदों में आत्मा और ब्रह्म के सम्बन्ध स्थापित

१—ओम् आ मा वा इदम् एक एव अग्रे आसीत् (एतरेय, १।१।१)।
—आत्मा एव इदम् अग्रे आसीत् (बृहदारण्यक, १।४।१)।

२—आत्मानि खलु अरे द्रष्टे श्रुते मते विज्ञाते इदं सर्वं विदितम्
(बृहदारण्यक, ४।५।६)।

३—सर्वं खलु इदं ब्रह्म (छांदोग्य, ३।१४।१)।
—ब्रह्म एव इदं विश्वम् (मुंडक, २।२।११)।

४—अयम आत्मा ब्रह्म (बृहदारण्यक, २।५।१९)।
—अहं ब्रह्म अस्मि (बृहदारण्यक, १।४।१०)।

५—श्वेताश्वतरोपनिषद, ६।४।

६—कठोपनिषद—८।१०९।

७—"वही"–१२।११३।

करते हुए दोनों को वस्तुत: एक ही माना है। ऐसे ही विवेचनों में ब्रह्म की सूक्ष्मता को व्यक्त करने के लिए नेति-नेति का प्रयोग भी मिलता है। छांदोग्य में यह दिखलाया गया है कि ब्रह्म विश्व के अणु-अणु में व्याप्त है और उससे भिन्न कोई दूसरी सत्ता नहीं है। यही भावना, "सर्व खल्विदं ब्रह्म" में स्पष्ट है।

कहीं कहीं "ब्रह्म" के लिए "निरंजन" शब्द का भी प्रयोग किया गया। इसी "निरंजन" का नाथ पंथियों ने और बाद में संतों ने प्रयोग किया।

आगे चलकर श्रीमद्‌भागवत और गीता में निर्गुण ब्रह्मवाद का विकसित रूप दिखलाई पड़ता है। भगवान कृष्ण ने अर्जुन को समझाते हुए कहा है कि यह सारा विश्व त्रिगुणात्मक है और तुम इससे परे हो जाओ। स्वयं अपने को भी कृष्ण ने इस त्रिगुणात्मक प्रकृति से अलग माना है।[१]

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभि: सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्य: परमव्ययम्॥

गीता में कृष्ण ने अपने आपको निर्गुण कहा है। वे अज, अविनाशी, सर्वव्यापी, निर्विकार और इन्द्रियातीत हैं।[२] इस सूक्ष्म ब्रह्म को जानने के लिए ज्ञान की आवश्यकता है। गीता में भी ज्ञान की महत्ता स्वीकार की गई है :

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।[३]

आत्मा और जीव :

ब्रह्म आत्मा ही है। "तत्त्वमसि"। "मैं ब्रह्म हूँ", अहं ब्रह्मास्मि", "यह आत्मा ब्रह्म है।" अयमात्म ब्रह्म।[४] कठोपनिषद में बतलाया

१—गीता—७।१३।
२—"वही"—७।२५।
३—"वही"—
४—बृहदारण्यक, ३।४।५, ३।७।३, ।—छांदोग्य, ८।१।३, ३।१३।१७ ।

या है कि आत्मा सभी वस्तुओं में निहित है और प्रकट रूप से दिख-
ाई नहीं देता। किन्तु जो सूक्ष्म दर्शी हैं वे अपनी कुशाग्र बुद्धि से उसे
देख लेते हैं।[1] इसके साथ ही कठोपनिषद में विश्वात्मा और
जीवात्मा का अन्तर बतलाया गया है। ये प्रकाश और अन्धकार की
भाँति परस्पर विरोधी हैं। जीवात्मा संसार में जन्म लेता है और
मरता है। विश्वात्मा संसार के बन्धन में नहीं पड़ता। जीवात्मा
ज्ञानेन्द्रियों से युक्त होता है और भोक्ता है। विश्वात्मा अनादि,
अनन्त और नित्य है।[2] श्वेताश्वतर उपनिषद में भी परमात्मा और
जीवात्मा का भेद बताया गया है। दोनों ही अज हैं। परमात्मा ज्ञ है
और जीवात्मा अज्ञ है। परमात्मा ईश है और जीवात्मा अनीश है।
मुण्डक उपनिषद कहता है कि जीवात्मा अपने अज्ञान और असा-
मर्थ्य के कारण दुखी है और जब उसे अपने अन्तर्यामी परमात्मा का
प्रज्ञान होता है तब उसके दुख छूट जाते हैं।[3]

शंकर का अद्वैत वेदान्त :

शंकर ने उपनिषदों की एक तत्ववादी प्रवृत्ति का अद्वैतवाद में विकास किया। उन्होंने निर्गुण ब्रह्म पर जोर दिया और ईश्वर, जीव तथा जगत को माया से कल्पित माना। उन्होंने ईश्वर को माया की उपाधि से युक्त ब्रह्म कहा गया है। जीव, माया के अपर रूप से परिच्छिन्न ब्रह्म है।

शंकर ने आत्मा को ब्रह्म अर्थात परम तत्व माना है। जीव देहस्थ आत्मा है। आत्मा उपाधियों से अपरिच्छिन्न है। इसी कारण आत्मा का पारमार्थिक सत्ता है और जीव की व्यावहारिक सत्ता। अतः आत्मा विशुद्ध चैतन्य स्वरूप है। वह नित्य, शुद्ध बुद्ध और मुक्त है। वह

१—एष सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते—कठोपनिषद, ३।१२।

२—कठोपनिषद, १।२।१२, १८, १९।

३—श्वेताश्वतर—१।९।

—मुंडक—३।१।२।

निराकार और परमार्थ है। वह जीव से भिन्न है लेकिन जीव उससे भिन्न नहीं है। आत्मा जीव का सत्य-रूप है ।[१]

ब्रह्म अनन्त और असीम है। वह सर्वव्यापक है। वह काल में असीम है, क्योंकि उसका आदि और अन्त नहीं है। ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ सत्य नहीं है।[२]

इस तथ्य को समझाते हुए उन्होंने बतलाया है कि इस दृश्यमान जगत को हम हमारी चेतना के द्वारा अनुभव करते हैं किन्तु आत्मा स्वयं ही चेतना है। चेतना को शंकर ने आत्मा का गुण नहीं माना है। वे कहते हैं कि आत्मा, चेतना का दूसरा नाम है। इसीलिये शंकर ने आत्मा को 'चित्' कहा है। विशिष्टाद्वैत ने चेतना को आत्मा का एक आकस्मिक गुण माना है किन्तु शंकर ने आत्मा को शुद्ध निराश्रित चेतना माना है। आत्मा की यह विवेचना शंकर के सिवाय किसी भी दर्शन में नहीं मिलती।

माया :

माया सांख्य की प्रकृति की तरह स्वतंत्र तत्व नहीं है। माया ईश्वर के अधीन है। वह उसकी शक्ति है। वह नाम रूप के अव्यक्त बीजों को अपने अंदर रखती है। एक ही ईश्वर जो स्वरूपतः चैतन्य है, माया या अविद्या के कारण अनेक प्रतीत होता है। ब्रह्म के अतिरिक्त ईश्वर या जीव का कोई अस्तित्व नहीं है।[३]

उपनिषदों में सृष्टि के वर्णन के साथ ही साथ संसार को मिथ्या भी कहा गया है। शंकर ने इसकी व्याख्या करते हुए इस सृष्टि का कारण 'माया' बतलाया है। 'माया' ईश्वर की शक्ति है। माया से उपहित ब्रह्म ईश्वर है। ईश्वर अपनी माया के द्वारा इस वैचित्र्य-पूर्ण

---

१. ब्रह्मसूत्र, शांकर भाष्य, १.३.१९।

२. तैत्तिरीय, शांकर भाष्य, २.१।

३. ब्रह्मसूत्र, शांकर भाष्य, १.२.२२, १.३.९।

सृष्टि की अद्‌भुत लीला दिखलाते हैं। जो तत्वदर्शी हैं वे इस लीला को समझ जाते हैं और इस मायामय संसार में केवल ब्रह्म मात्र उन्हें सत्य प्रतीत होता है।

शंकर ने माया और अविद्या का एक ही अर्थ में प्रयोग किया है। इसके दो मुख्य कार्य हैं—१-जगत के आधार ब्रह्म का असली स्वरूप छिपा देना और २—उसे दूसरी वस्तु या संसार के रूप में आभासित करना।

माया को महामाया भी कहते हैं। ईश्वर महामायी है। परमार्थ ब्रह्म ही सत्य है और माया असत् है। केवल जगत की नाना वस्तुओं को उत्पन्न करने के उपयुक्त सत्यता उसमें है। वे नाम-रूप के परिणाम हैं और नाम-रूप अविद्या या मायाकृत हैं। वे माया के परिणाम हैं; लेकिन ब्रह्म के विवर्त हैं।[१] इस तरह जगत ब्रह्म का विवर्त है, उसका परिणाम नहीं। किसी वस्तु के विकार का आभास (जैसे—रस्सी का साँप के रूप में दिखलाई पड़ना) विवर्त कहलाता है।

दृश्यमान वस्तुएँ माया अथवा अविद्या के विकल्प हैं। वे ब्रह्म को न जानने के कारण दिखाई देती हैं। ब्रह्म के अनुभव के पश्चात उनकी सत्ता नहीं रहती।

श्वेताश्वतर में कहा गया है कि इस संसार में जीव माया से घिरा हुआ है। माया प्रकृति है और इस माया का अधिपति ईश्वर है, उसके ही अंगों से यह सारा संसार व्याप्त है।[२] "माया" जो ऋग्वेद में "अलौकिक पराक्रम" अथवा "कलाबाजी" के अर्थ में प्रयुक्त हुई है, आगे चलकर शंकर के अनुसार यही माया अविद्या और भ्रम के रूप में दिखलाई पड़ती है। इसी कारण दृश्य जगत की सत्ता भ्रान्तिजन्य मानी गई। यही मायावाद आगे चलकर वेदांत दर्शन का एक प्रमुख

---

१. ब्रह्मसूत्र, शांकर भाष्य, २.१.२२, २७.३१,३३; २.२.२।

२. श्वेताश्वतर, ४.९.१०।

सिद्धान्त बन गया । संतों ने इसी के आधार पर अपनी वाणियाँ रची हैं। उन्होंने मनुष्य के अपार दुखों का कारण "माया" को बतलाया है।

जीव :

ब्रह्म सूत्र में इस भेद-बुद्धि का कारण 'अविद्या' बतलाया है। जीव ज्ञाता, भोक्ता और कर्त्ता है। वह अपने कर्मों से पाप-पुण्य का संचय करता है और उनका फल भोगता है । वह देश, काल और निमित्त के अधीन इस संसार में जन्म लेता है और मरता है। उसका बंध और मोक्ष होता है। यद्यपि वह आत्मा से भिन्न नहीं है और अमर है, तथापि अविद्या के कारण इच्छाओं से प्रेरित कर्मों का कर्त्ता होने से उस पर मरणशीलता का आरोप होता है।[१]

आत्मा और जीव का भेद पारमार्थिक नहीं है, बल्कि अविद्या निर्मित है। जीव आत्मा का ही परिच्छिन्न रूप है। जो नाम-रूपात्मक उपाधियों का मूल है वही जीव का भी मूल है। नामरूपमय शरीर नष्ट होने पर जीव आत्मा में लीन हो जाता है।[२]

जीव पारिमार्थिक नहीं है। वह बुद्धि के द्वारा कल्पित है। जैसे आकाश एक ही है लेकिन उपाधियों के कारण वह घटाकाश, मठाकाश इत्यादि अनेक प्रतीत होता है वैसे शरीर और मनस् की उपाधियों के कारण एक आत्मा अनेक दिखाई देती है।[३]

आत्मा का बुद्धि से सम्बन्ध अज्ञान के कारण होता है जिसका नाश ज्ञान से होता है। जब तक जीव और ब्रह्म के अभेद के ज्ञान का उदय नहीं होता, तब तक अज्ञान दूर नहीं होता। सम्यक् दर्शन से जीव के सांसारिक अस्तित्व का नाश होता है।[४]

---

१. ब्रह्मसूत्र, शांकर भाष्य, १.२ ११,१७।

२. ब्रह्मसूत्र, शांकर भाष्य, १.२.२० ; —मांडूक्य कारिका, शांकर भाष्य, ३.३.४।

३. "वही", २.३.३०। ४. मांडूक्य कारिका, शांकर भाष्य, ३.६।

शंकर ज्ञान और कर्म में वरोध मानते हैं। कर्म मार्ग प्रवृत्ति का मार्ग है परन्तु ज्ञान निवृत्ति का मार्ग है, उसके द्वारा सभी क्रियाओं से निवृत्ति हो जाती है।

अत: शंकर के अनुसार इस संसार की वास्तविकता को समझने के लिये ज्ञान की आवश्यकता है और उनका निर्गुण ब्रह्म भी ज्ञान-गम्य ही है। गीता में भी बार-बार ज्ञान की महत्ता पर जोर दिया गया है जिसकी चर्चा हम पीछे कर आये हैं।

जैन और बौद्ध मत :

आगे चलकर जैन तीर्थंकरों ने ज्ञान की भावना को पुरस्सर किया तथा शुद्धाचार पालन के द्वारा ही मोक्ष की उपलब्धि बतलाई। जैनियों के सिद्धान्तानुसार यह जगत अनादि और अन्त माना गया है। वे आत्मा की दो कोटियाँ मानते हैं, व्यवहारनय और शुद्धनय। शुद्धनय आत्मा ज्ञानमय है, नित्य है और ज्ञानी ही उसे प्राप्त कर सकता है।

जैन मत के अनुसार जीव निसर्गत: मुक्त है, पर संसार के प्रपंच-पूर्ण कर्मों के कारण उसका देह और संसार से सम्बन्ध रहता है। जब जीव का कर्म से सम्बन्ध टूट जाता है तभी वह मुक्त हो जाता है। इसके लिए सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र्य की आवश्यकता है।

गौतम बुद्ध ने अनात्मवाद का विस्तार किया। संसार को अनित्य मानकर गौतम ने निर्वाण को ही नित्य कहा और शुद्ध आत्मा से ही उसकी उपलब्धि प्राप्त की। निर्वाण-पद के अधिकारी के सामने जन्म, मरण आदि कुछ नहीं रहता, वह बिलकुल शून्य में रहता है, निर्गुण, निराकार।

बौद्ध संघ की दूसरी विशेषता यह थी कि उसमें जाति-भेद का नाम नहीं था। भारत ही क्या सारे विश्व में एक साथ 'बुद्धं शरणं गच्छामि' की आवाज गूँज उठी थी। यहाँ ऊँच नीच का भेद भाव कुछ नहीं था। निर्गुण संतों ने भी इसीलिए कहा—'जात पाँत पूछै नहिं कोई, हरि

को भजै सो हरि को होई।' बौद्ध मत में दुख के अनेक कारण बतलाये गये हैं किन्तु इन सब कारणों का मूल अविद्या या अज्ञान है।

बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् बौद्धमत कई शाखाओं में विकसित हुआ। इनमें हीनयान और महायान नाम से दो प्रधान शाखाएँ प्रसिद्ध हुईं। हीनयान शाखा में व्यक्तिगत-साधना का प्राधान्य था किन्तु महायान शाखा में संसार के सब जीवों के निर्वाण के प्रयत्न की व्यवस्था थी। आगे चलकर इन्हीं शाखाओं से वज्रयान और सहजयान शाखाओं का विकास हुआ।

नाथ पंथ और सिद्ध साहित्य :

डा० धर्मवीर भारती ने अपनी पुस्तक 'सिद्ध साहित्य' की प्रस्तावना में लिखा है,--'नाथों और संतों के हिन्दी साहित्य पर इन सिद्ध का अधिकांश प्रभाव प्रत्यक्ष न होकर परम्परा रूप में आया है........।' इस तथ्य की जाँच करना आवश्यक है।

महायान शाखा से वज्रयान का विकास वज्रयानी साहित्य में दिखलाई पड़ता है। वज्रयानियों ने बुद्ध द्वारा वर्जित मद्य-मांस-मैथुनादि को सर्वथा ग्राह्य माना और इसका जोर यहाँ तक बढ़ा कि नारी और मदिरा, साधना और सिद्ध के, प्रधान अंग बन गये। 'निर्गुण-काव्य दर्शन' में वज्रयानियों की इस भावना को और स्पष्ट किया गया है— 'ऐतिहासिकों का कहना है कि ७ वीं शताब्दी में उड़ीसा के राजा इन्द्रभूति और उनके गुरु अनंगवज्र ने अपनी सारी शक्ति लगाकर यह सिद्ध करने की चेष्टा की थी कि नारी ही मुक्ति देने वाली है और पुरुष ही मुक्ति का उपाय है। शराब उनके लिए अमृत का पर्याय था।'[1]

इसी की प्रतिक्रिया स्वरूप गोरखनाथ का आविर्भाव हुआ। इस वासना-पूर्ण वातावरण में फँसे हुए समाज को उन्नत बनाने के लिए इन्होंने हठयोग का प्रवर्तन किया। इस मत से डा० धर्मवीर भारती

---

१. निर्गुण-काव्य-दर्शन, सिद्धिनाथ तिवारी—पृष्ठ ३३।

सहमत हैं। इस सम्बन्ध में यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि गोरखनाथ नाथ-सम्प्रदाय के प्रवर्तक नहीं थे। यह नाथ-परम्परा और कनफटी साधनाओं की परम्परा अति प्राचीन है और किसी न किसी रूप में पाशुपत लाकुलीश मत से इसका घनिष्ट सम्बन्ध रहा है।[1] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि गोरखनाथ ने योग मार्ग को एक व्यवस्थित रूप दिया।[2]

संत साहित्य का अध्ययन करने से उसमें योगमार्गी परम्पराओं की वज्रयानी पद्धतियों का रूप दिखलाई देता है। योग के द्वारा सांसारिकता के प्रपंचों से दूर होकर ब्रह्म प्राप्ति का उल्लेख संत साहित्य में इसी परम्परा से आया है। संतों को यह पद्धति परम्परा से प्राप्त हुई है।

योग और निर्गुण मत :

निर्गुण मत में योग आदि का वर्णन भी मिलता है। इस योग की परम्परा भी वेद साहित्य से आरम्भ होती है। उपनिषदों ने ब्रह्मज्ञानी के लिए सब इच्छाओं का त्याग कर एकान्तिक जीवन व्यतीत करने की बात कही है। कठोपनिषद् में ब्रह्म प्राप्ति के लिए मनोनिग्रह, बुद्धि-दृढ़ता और इच्छा-नाश पर जोर दिया है, जिसमें योग का महत्व प्रतिपादित हुआ है। यथा :—

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्॥
तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ॥[3]

संतों की भक्ति-भावना :

संतों की भक्ति-भावना की चर्चा करते हुए कुछ विद्वान इस निष्कर्ष

---

१. सिद्ध-साहित्य डा० धर्मवीर भारती—पृष्ठ ३२३।
२. नाथ सम्प्रदाय, हजारी प्रसाद द्विवेदी—पृष्ठ ९८।
३. कठोपनिषद—६, १०, ११।

पर पहुँचे हैं कि संत परम्परा निर्गुण को मान्यता देते हुए भी केवल ज्ञानाश्रयी नहीं है, उसका मूल स्वर भक्ति का स्वर है। यह एक ऐसी विशेषता है जो गोरखनाथ और उनके अनुयायियों में नहीं मिलती। द्विवेदी जी स्पष्ट लिखते हैं:—"केवल एक वस्तु वे कहीं से नहीं ले सके। वह है भक्ति। वे ज्ञान के उपासक थे और लेशमात्र भावुकता को भी वे बर्दाश्त नहीं कर सकते।[1] कबीर, दादू आदि संतों का नवीन भक्ति साधना से परिचय हुआ था। उसके प्रति उनमें प्रबल उत्साह था, उन्होंने एक नई निष्ठा, एक नई आस्था ग्रहण की थी जिसमें ज्ञान और योग गौण थे, भावना और भजन प्रमुख थे। किन्तु फिर भी उन्होंने योग-मार्ग का परित्याग नहीं किया था।[2] इसीलिए इस परम्परा में योगमार्गी साधना पद्धति, पारिभाषिक शब्द, प्रतीक, उलटवासियाँ संतों को उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त हुई।

योग का क्षेत्र शरीर के भीतर का क्षेत्र है, बाहर का नहीं। इसीलिए संतों ने बाहरी आडंबर की निन्दा की। हमें उनके साहित्य में वेदपाठ, तीर्थ-स्नान, व्रतोद्यापन, छुआछूत आदि पर जोरदार टिप्पणियाँ मिलती हैं। ब्राह्मणों के प्रति जो खीज सिद्धों में दिखलाई पड़ती है वही संतों में दृष्टिगोचर होती है। संत सिंगाजी की वाणियों में भी इसी विचारधारा के दर्शन होते हैं, जिसका विवरण अन्यत्र दिया जायेगा।

हमने पहले बतलाया है कि संत कबीर और नामदेव निर्गुण-मत के प्रवर्तक हैं। ये संत अपने समय की सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों से प्रभावित हुए हैं। इन्होंने उपनिषदों का अद्वैतवाद, शंकर का मायावाद, नाथों और सिद्धों से हठयोग, रहस्यवाद तथा बाह्याडंबर के विरुद्ध तीखी उक्तियाँ, सूफियों से प्रेम-साधना आदि भावनाओं को ग्रहण कर उसका अपनी शैली में एक मौलिक समन्वय प्रस्तुत किया जिसे आज हम "संत मत" कहते हैं।

---

१. नाथ सम्प्रदाय, हजारी प्रसाद द्विवेदी—पृष्ठ १८८।

२. सिद्ध-साहित्य—डा० धर्मवीर भारती—पृष्ठ ३२७।

हिन्दू-मुस्लिम, ऊँच-नीच और छोटे-बड़े का भेदभाव मिटाकर संसार में विश्व-बन्धुत्व की स्थापना कर प्रेम और मित्रतापूर्ण वातावरण स्थापित करना इनका लक्ष्य था।

इसी परम्परा में हम निमाड़ के संत सिंगाजी को पाते हैं। उनकी वाणियों में एक ओर जन-समाज की अज्ञानता के प्रति एक तीखा किन्तु मधुर व्यंग्य दिखलाई पड़ता है, तो दूसरी ओर दर्शन की रहस्यमय विधाओं के दर्शन होते हैं।

सिंगाजी के दार्शनिक विचार :

प्राणी मात्र में अपने जीवन को समरस बना उनके सुख-दुःख को अपनी आत्मा में अनुभव करने वाला तत्व-ज्ञानी संत होता है। सिंगाजी उसी कोटि के संतों में से एक थे। सांसारिक माया मोह की सतह से बहुत ऊपर रहकर अपने जीवन को अपनी ही आत्मा में मस्त और चिंतन में मगन कर आनन्दातिरेक से विह्वल हो जाने वाले परम दार्शनिक के रूप में सिंगाजी को हमने पाया है।

भक्त भगवान की वस्तुस्थिति को समझने के बाद उसमें विश्व को अन्तर्हित मान अपने मन को अन्तर्मुखी वृत्तियों द्वारा सर्वतोभावेन उसमें सन्निहित कर आत्मा और प्राणों को तन्मय कर देता है। इस स्थिति में पहुँच कर भक्त "सोहं" (वह मैं हूँ) की अनुभूति में "सर्वं ब्रह्ममयं जगत" (सारा संसार ब्रह्ममय है) की दिव्य दृष्टि पाता है। दार्शनिक को वस्तु तत्व के ज्ञान के लिये जिस विश्लेषणात्मक बुद्धि की आवश्यकता होती है, उक्त अवस्था में दिव्य दृष्टि पाने के बाद भक्त को भी ज्ञान तत्व के दिव्य दर्शन होते हैं, और भक्त—

"तो में मों में खड्ग में राम रह्यो जग छाई"

की प्रेम विह्वल पुकार करने लगता है और प्राणिमात्र के सुख-दुःख को अपने शरीर और प्राणों में उतरा हुआ पाता है।

अपने आपको लघुता की परम सीमा पर दर्शाना सन्त स्वभाव होता है। क्योंकि त्याग की अन्तिम स्थिति पर पहुँचकर अपने

व्यक्तित्व को मिटा देने के बाद ही मनुष्य प्रेम और भक्ति के सिंह-द्वार में प्रवेश करने का अधिकारी होता है। जब तक हृदय से अहं भाव नष्ट न होगा, प्रियतम उसमें कैसे आ सकते हैं? सिंगाजी ने उस सिंह-द्वार में प्रवेश पाने का अधिकारी अपने को बनाया। वे कहते हैं :—

"राह हमारी बारीक है, हाथी नहीं समाय।
सिंगाजी चींटी हुई रह्या, निर्भय आवन जाय॥"

"आव न जाय" शब्द का अर्थ बार-बार आने और जाने से नहीं है, प्रत्युत इतना अधिकार प्राप्त कर लेने से है कि फिर उस द्वार पर किसी प्रकार की रोक टोक न हो। क्योंकि उस प्रेम राज्य में पहुँच जाने के बाद—प्रभु की चरण सेवा में पहुँच जाने के बाद—फिर आना कैसे हो सकता है? गीता में भी तो श्रीकृष्ण ने यही कहा है :—

"यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम"

अर्थात् जहाँ जाकर मनुष्य नहीं लौटते वही मेरा परम धाम है। एक बार प्रियतम के चरणों में पहुँचकर और प्रेम रस का स्वाद लेकर फिर उसे छोड़ा ही नहीं जा सकता। सिंगाजी ने अपने मन को उद्दिष्ट कर यही बात कही है :—

'आवागमन मत कीजे रे मन, म्हारा फिरी जलम मत लीजे।'

सन्त की कोटि इतनी ऊँची होती है कि जिस स्थान पर वह हरएक वस्तु को इतना नजदीक और प्रत्यक्ष देखने लगता है कि उसका ज्ञान इतना विषद हो जाता है जितना सहस्रों ग्रंथों के अध्ययन से भी अधूरा रह जाता है।

सिंगाजी एक अपढ़ ग्वाले थे किन्तु जो बात वे कह गये हैं उन्हें समझने के लिये विद्वान भी उलझन में पड़ सकते हैं। अनेक ग्रंथों के अध्ययन के पश्चात् मनुष्य स्थूल जगत का ज्ञाता हो आदर प्राप्त करता है, किन्तु वह समाज के पवित्र प्रेम और श्रद्धा का अधिकारी नहीं हो पाता। क्योंकि समाज उससे अपनी कृतार्थता और उद्धार की आशा नहीं करता। वहाँ समदर्शन के साथ सन्तोष और पवित्रता का अभाव सा रहता है।

साधक गुरू मनरंगगीर को अपनी साधना द्वारा सिद्ध बना देने वाले संत सिंगाजी ने इस बात का अनुभव किया और कहा :—

"चौ दिसा से नाला आया तब दरियाव कहाया रे
गंगाजल की मीठी महिमा देशन देश बिकाया रे।"

अर्थात अनेक ग्रंथों के अध्ययन से बुद्धि-सागर या विद्या-वारिधि बन सकते हैं किन्तु सन्त की वाणी मन्दाकिनी का गौरव है, उसे नहीं प्राप्त हो सकता।

ब्रह्म जिज्ञासा :

संत कबीर ने बार-बार कहा है कि उनके जीवन का लक्ष्य ब्रह्म विचार करना है।[१] इसी तरह संत सिंगाजी ने भी अपने आपको "परब्रह्म" का पंथी बतलाया है :—

हम पंथी पारि ब्रह्म का, अपरम पद दूर।
निराधार जहाँ मठकिया, जहाँ चंदा न सूर॥
अक्षर तो खिरता नहीं, खिरता सोई झूठ।
झूठ होये वाको छांड़ दे, सच्चा लेवो उठाय॥

ब्रह्म विचार का प्रश्न बड़ा कठिन है और इसलिए 'परब्रह्म' का पंथ भी कम कठिन नहीं। उपनिषदों में ब्रह्मज्ञान की दुलर्भता का संकेत बार-बार किया है। यह आत्म-ज्ञान सबको प्राप्त नहीं होता। जिस पर प्रभु की कृपा हो जाये उसी की प्रवृत्ति इस ओर हो पाती है। इस प्रवृत्ति के उदय होते ही साधक के हृदय में तीव्र ब्रह्म-जिज्ञासा उत्पन्न होती है। इसीलिए अध्यात्म-शास्त्र के सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ 'ब्रह्म सूत्र' का आरम्भ 'ब्रह्म-जिज्ञासा' से ही हुआ है। इस ब्रह्मजिज्ञासा के उदय होते ही साधक ब्रह्म में लीन हो जाता है। साथ ही उपयुक्त मार्ग-निर्देशन के लिए गुरु की खोज में चल पड़ता है। वह अपना सर्वस्व त्याग देता है और उसकी इंद्रियाँ शांत हो जाती हैं। संत सिंगाजी ने

१. कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ–२७३।

इसी कारण सर्वस्व त्याग कर गुरु कृपा प्राप्त की और आत्म ज्ञानी बन गये।

सिंगाजी का ब्रह्म-निरूपण :—

संतों की भक्ति-भावना और विचारधारा को लेकर उनमें वेदांत, दर्शन, आध्यात्म और रहस्यवाद आदि के तत्वों को खोजा गया है। निर्गुण पंथ में संतों ने अपने इष्ट को जिस रूप में देखा है वह निराकार ही है। कुछ संतों के विचार सूफी मत से प्रभावित भी दीख पड़ते हैं। सूफीमत में प्रेम का महत्व है कबीर ने अपने रहस्यवाद में अद्वैत और सूफी मत की गंगाजमुनी' साथ ही बहाई है।[1] संत सिंगा के ब्रह्मनिरूपण का क्षेत्र इतना व्यापक नहीं जितना कबीर का है किन्तु उनका ब्रह्मनिरूपण अवश्य ही अद्वैत के सिद्धान्त पर जमा हुआ है :—

निरगुण ब्रह्म है न्यारा, कोई समझे समझण हारा।
खोजत-खोजत शिवजी थाके, वह ऐसा अपरम्पारा॥
शेष सहस मुख रटे निरंतर, रैन दिवस एक सारा।
ऋषि मुनि और सिद्ध चौरासी, तैंतीस कोटि पचिहारा॥

उनके ब्रह्म को पहचानना सरल नहीं है। गूँगे के गुड़ के समान उनकी आत्मा परमात्मानुभव करती है पर प्रकट में कुछ भी नहीं कह सकती। वह आश्चर्य और जिज्ञासा से परमात्मा की ओर देखती है। फिर वह परमात्मा की ज्योति में लीन होकर उनके गुणों का वर्णन करती है। कबीर की निम्न पंक्तियों में कुछ ऐसा ही भाव है :—

जाहि कारण शिव अजहुँ वियोगी, अंग विभूति लाइये जोगी।
शेष सहस मुख पार न पावे, सो अब खसम सहित समुझावे॥[2]

संसार के कण-कण में एक अलौकिक अनिवर्चनीय एवं अव्यक्त सत्ता विद्यमान है। इसी शक्ति का विवेचन सिंगा ने किया है। कबीर

१—कबीर का रहस्यवाद—डा० रामकुमार वर्मा : पृष्ठ १८।

२—रमंनी : पष्ठ ४७।

की तरह ब्रह्म का अव्यक्त रूप-निरूपण ही सिंगा ने अपनाया है और यह ब्रह्म का अव्यक्त रूप उपनिषदों के वर्णन के ढंग का है। सिंगा ने कहीं भी ब्रह्म के स्थूल इंद्रिय-ग्राह्य स्वरूप की अवतारणा नहीं की है। इस अर्थ में सिंगा निर्गुणवादी हैं :—

खोजी साधु ब्रह्म है कैसा, जैसा अग्नि काष्ट प्रकासा।
अखंड है कछु एकला नाहीं, जैसा माखन दूध के मांही।
वार नहीं-नहीं कछु, पारा, जैसा घाम सूरज मन भारा।
सिंगाजी ऐसा कोहू आपरूप है, सब कोई करें वाकी आस।
नाम ठाम कछु नहीं वाके कैसे सुमरे दास॥

कबीर ने भी कहा है :—

चन्द्र सूरज ज्योति स्वरूप, ज्योति अंतर ब्रह्म अनूप।[1]

संत यथार्थतः सत्य का वक्ता है। उसके सामने पहले लोकहित और जन-कल्याण का अभीष्ट पथ रहता है फिर और कुछ। उसे काव्यकला अथवा शास्त्रीय शैली की अपेक्षा नहीं रहती। वह तो अपने आप में एक जलती हुई ज्योति के दर्शन करता है और उसी ज्योति के प्रकाश को सब तक पहुँचाना चाहता है। कदाचित् इसीलिए सिंगा की अभिव्यक्ति में कोई शास्त्रीय शैली नहीं है। उनकी अभिव्यक्ति उपदेशात्मक, भावनात्मक और रहस्यात्मक शैली में हुई है।

कबीर ने जीवन को सदैव एक ही तथा अद्वैत रूप माना है। उनका विश्वास है कि द्वैतवाद में विश्वास करना स्थूल बुद्धि है। हम माया के कारण ही जीवन और ब्रह्म की अद्वैतता नहीं पहचान सकते।

माया ममता मृगिणी निश्चय बागड़ लावै।

सृष्टि सम्बन्धी जिज्ञासा आध्यात्मिक चिंतन का मूल है। जगत सत्ता के सम्बन्ध में दार्शनिकों के विविध मत प्रचलित हैं। तुलसी के

१—कबीर ग्रंथावली—पृष्ठ २८४।

शब्दों में "कोऊ कहे सत्य झूठ कहे कोउ युगुल प्रबल कर माने" तथा कबीर सृष्टि को मिथ्या कहने वालों की श्रेणी में आते हैं। उन्होंने संसार को सर्वत्र नश्वर, मिथ्या एवं स्वप्नवत् ही कहा है।[१] संत सिंगा स्पष्ट शब्दों में इस संसार को असार कहते हैं। उन्होंने उसके लिए जो रूपक बाँधा है वह रोचक है :—

ये संसार असार है वहे जो मत भाई,
जैसा मोती ओस का पल में घुल जाई।

अब देखना यह है कि संत सिंगा सत्ता के सम्बन्ध में किसका अनुसरण करते हैं? शंकर ने स्वप्न-जगत को जागृत-जगत से भिन्न माना है। वे इंद्रियगोचर पदार्थ को आत्मा की तुलना में स्वप्नवत् मानते हैं। आत्मा पर अध्यारोपित पदार्थ मायामय है और मायामय पदार्थ मिथ्या है।[२]

शंकराचार्य ने ब्रह्म को मायामय सृष्टि की आधारभूमि माना है। संत सिंगा सब कुछ ब्रह्ममय ही मानते हैं। इसी ब्रह्म-तत्व को वे नाम रूप जगत का आधार मानते हैं। वे 'सर्वं खलविदं ब्रह्म' के संपूर्ण अनुयायी हैं।[३] उनका मत है कि सृष्टि के पूर्व भी निर्गुण तत्व विद्यमान था। उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उसको नाम रूप के बंधनों में नहीं बाँधा जा सकता।[४]

१—समझ विचार जीवन जब देखा, यह संसार सपनि कर लेखा।
ज्यों जल बूंद तैसा संसार, उपजत बिनसत लगै न बार ॥ (क०ग्रं०, २३३-१२१)

२—कबीर की विचारधारा—डा० गोविंद त्रिगुणायत।

३—एक पुरुष की रचना सारी, किया नान्ह बिस्तार,
ज्ञान दृष्टि देखिया दूजा नहीं सिरजण हार।
प्राण भीतर तन्न है सारा, प्राण अम्मर तन्न सब खारा।

४ - उस देस कछु पवन न पाणी भूख प्यास लोभ नहीं आस।
रात दिवस धूप न छाया आप नहीं जाणे मोह न माया ॥

जगत के क्रम-विकास और उसके विलय का वर्णन अद्वैतवादियों जैसा ही किया जान पड़ता है। वेदांत का अध्यासवाद का सिद्धान्त उनके पदों में परिलक्षित होता है। अध्यासवाद का संकेत ब्रह्मसूत्र में मिलता है। "ब्रह्म संपूर्ण" दृश्य जगत के परिवर्तनों का अधिष्ठान है, जिसके ऊपर अविद्या के कारण उनका अध्यास होता है। अपने शुद्ध रूप में वह दृश्य जगत से अतिशय और निर्विकार है। सीप में रजत का और रज्जु में सर्प का भय होना अध्यास ही है। साथ ही प्रतिबिंबवाद का आधार भी सिंगा ने लिखा है। यह जो कुछ है ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है।

एकेश्वरवाद और अखंड ब्रह्म की भावना इन पंक्तियों में स्पष्ट होती है :

'एक पुरुष की रचना सारी किया नान्ह विस्तार।
ज्ञान दृष्टि देखिया दूजा नहीं सिरजणहार।
प्राण भीतर तन्न है सारा।
प्राण अमर अन्न सब छारा।'

ब्रह्म को कठिन अनुभूति से ही पहचाना जा सकता है :

'खोजो सादु ब्रह्म है कैसा,
जैसे अग्नि काष्ट प्रकाशा।'

और अखंड कैसा है ?

'अखंड है कछु एकला नहीं।
जैसा माखन दूध के माही॥

सिंगाजी का माया वर्णन

कबीर ने मायातत्व का वर्णन करते हुए उसे उन्होंने किसी विश्व-मोहिनी सुन्दरी के रूप में चित्रित किया है और उसका स्वभाव इन्होंने सब को प्रलोभन देना, ठगना व फँसाना दिखलाया है।[१] इतना

१. माया की झल जग जल्या कनक, कामिनी लागि।
कबीर माया पापिनी फंद लै बैठि हाटि।

ही नहीं यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो माया का प्रभाव सारी सृष्टि में ही दृष्टिगोचर होगा। पानी में मछली को, माया ने आबद्ध कर लिया है, दीपक की ओर पतंगा माया के कारण ही आकृष्ट होता है, हाथी को माया ने ही काम-वासना दी है। छः यती, नव-नाथ और चौरासी सिद्ध तक माया के प्रपंचों से नहीं बच पाये।

संत नामदेव का मत है कि माया जाल में न फँस कर ही इस संसार से छुटकारा मिल सकता है :--

इह संसार ते तबहिं छुटउ जऊ माइआ नह लपटाऊ।
माइआ नामु मरम जोनि का तिह तजि दरसिनि पावऊ॥[1]

"माया के फंद में नर आण भुलाणा।" में ही सिंगाजी के जीवन को परिवर्तित किया है। "माया" शब्द को लेकर प्रायः सभी संतों ने उसका वर्णन विश्लेषण किया है। सिंगाजी ने माया को सकल संसार का फंदा माना है और इसी माया के वशीभूत नर अंधा होकर कनक, कामिनी की सेवा करता है। इसने सकल देव-ब्रह्म को नचाया है और का क्या कहना :—

और सकल सब माया के फंदा।
कनक, कामनी सेवे नर अंधा॥
माया ठगोरी ने सब जुग खाया।
देव, ब्रह्मा सब ही नचाया॥
ले डुबी कुल समेता......
औरना की का कहू वाता॥[2]

सब जग तो फंदे पड़्या गया कबीरा काटि।
माया मुआ, न जग मुआ, मरिमरि गया शरीर।
रमैया की दुलहिन लूटा बाजार।
माया ठगनि हम जानी। (कबीर ग्रन्थावली—पृष्ठ ३२, ३७, ३५)

१. संत नामदेव—डा० विनयमोहन शर्मा।

२. परचरी—पष्ठ ५ ११, १२।

आत्मा और परमात्मा के मिलन में माया का आवरण ही बाधक है। कबीर की तरह सिंगाजी ने माया को उसी दृष्टि से देखा है, जिससे साधु-महात्मा एक वेश्या को देखते हैं। अपने "दृढ़ उपदेस" में उन्होंने संसार की अज्ञानपूर्ण स्थिति का मूल कारण माया को बतलाया है। उन्होंने माया में फँसे हुए संसार के जीव को उस भूली हुई हिरणी की उपमा दी है, जो बकरी को अपनी माँ समझ बैठी है।[1] पशुओं के थनों में लगी हुई गोचड़ी (एक प्रकार का कीड़ा) भ्रम में भूली हुई, थन के दूध को न पीकर खून को चूस रही है।[2] ऐसी ही स्थिति जीव की है, जो वास्तविकता को न समझ कर माया के कारण भ्रम में पड़ा हुआ है।

कबीर की तरह सिंगाजी ने माया को "कुल बोरन" कामिनी का रूप दिया है जो संसार को आकर्षित कर काम-वासना के मार्ग पर ले जाती है। एक दूसरे भजन में सिंगाजी ने कंचन-कामिनी को माया और मिथ्या बतलाया है।

"ये संसार असार है बचे जो मत भाई।
जयेसा मोती ओस का पल म घुल जाई॥
झूठी कंचन कामनी झूठी ये माया।
आज की रैन कसी गई जयेसा अंधोयारा॥"

एक स्थल पर कबीर की तरह माया को ठगनी कहा है :—
"हीरा, मोती, लाल, जवाहर ये ही माया का फंदा रे।
ये ठगनी न कई घर ठगीया ये जीवो क्या सुबे क्या स्याम॥
हाँ जी मोहे दवलत से नहीं काम॥ टेक॥"

शंकर और सिंगाजी के मायावाद में सबसे बड़ा अन्तर यही है कि शंकर की माया केवल भ्रममूलक है। उससे रस्सी में साँप का या सीप में रजत का या मृगजल में जल का भ्रम हो सकता है। यह नाम

१. "दृढ़ उपदेस"—पृष्ठ २८।
२. "वही"—२८।

रूपात्मक संसार असत्य होकर भी सत्य के समान भासित होता है किन्तु कबीर की तरह सिंगाजी ने इस भ्रम की भावना के अतिरिक्त माया को एक चंचल और छद्मवेषी कामिनी का रूप दिया है।

सिंगाजी ने माया को एक ऐसी बाधा बतलाई है जो मन रूपी मृग को अपने लाख प्रयत्न करने पर भी कठिनाइयों में डाल देती है, क्योंकि काल का फंदा हमेशा जीव पर छाया रहता है।[1] माया के सम्बन्ध में सिंगाजी का एक मत और है कि माया के प्रभाव के कारण जीव मेरा-मेरा करता हुआ ब्रह्म-प्राप्ति से दूर रहता है।[2]

सिंगाजी और सद्गुरु

संत कवियों ने अपने आपको गुरु के भरोसे छोड़ रखा था। गुरु बिना ज्ञान नहीं और गुरु से बड़ा न कोय। नामदेव को गुरु की खोज मे बहुत भटकना पड़ा। रामानन्द के पैरों की ठोकर खाकर ही कबीर के मोह का अंधकार फट गया। कबीर ने गुरु को ब्रह्म से भी महान माना है। नामदेव ने भी "सद्गुरु मेटला देवा" और "ज्ञान अंजन मोको गुरु दीना।" आदि में गुरु के महत्व को गाया है।

संत सिंगाजी ने कदाचित इसी परम्परानुगत गुरु-महिमा गान को नामदेव और कबीर के सहारे व्यक्त किया है :—

"हूँ है मुरख मति को हीणा।
आजरा सबद कैसे पहेचाणा॥
तुम हो स्वामी मुक्त के दाता।
सतगुरु अनाथन के नाथा॥
नामदेव कबीर आये गुरु के सरणा।
और ना की काहा कहू वरणा॥

---

१. सींगा मन मृग माया बाधूर आनेक लकड़ी लाख।
सीर के उपर काल आहड़ो नेहश्चे फंद में आव॥
२. माया हुये कहो का काहासे होई माया होवे तरे न कोई।
मेरी-मेरी करता जंन्म गमाया करता पुरस हीरदे नहीं आया॥

तीन लोक में सत्गुरु दाता।
जाकी माया सब जुग खाता॥
सत्गुरु हैं देवन के देवा।
अजरा अमर जाकी सेवा॥"[1]

उपरोक्त गुरु-महिमा-गान में हमें नामदेव कबीर आदि की परंपरा के साथ साथ एक विशेषता दिखलाई पड़ती है, वह है अभिव्यक्ति की सरलता और आत्मविभोरता। अपने एक भजन में "गुरु के चरण गंगा" कहकर जन समुदाय की गंगा को पवित्र मानने की भावना का सहारा लेकर उतनी पवित्रता गुरु के चरणों में देखी है।[2] मारवाड़ वाले दरिया साहब ने आजीवन अपने को आश्रयहीन पाया और अनाथ समझा, परन्तु जिस दिन गुरु का हाथ मस्तक पर पड़ा उसी दिन से वे सनाथ हो गये।[3] "सतगुरु अनाथन के नाथा" में सिंगाजी यही भाव बतला रहे हैं।

इसी कारण गुरु की महत्ता ईश्वर के महत्व से भी बढ़ कर है। घेरण्ड संहिता में गुरु के सम्बन्ध में कुछ बड़े महत्वपूर्ण श्लोक दिये हैं।[4]

१—परचुरी—पृष्ठ ४, ५।

२—गुरु के चरण गंगा,
कोई नहाई लेओ रे लूला अपंगा।
जोगी हुई न जटा बढ़ाव वन वन फिरउ नंगा,
माल खाई न देह फुलाव बणी रह्या लाल सुरंगा।
इत संन्यासी न उत बैरागी तीरथ करी रह्या वंगा,
कहै जन सिंगा सुणो भाई साधु अहो तुम फिरी रह्या अपंगा।

३—दरिया सतगुरु भेंटिया जा दिन जन्म सनाथ,
स्रवना सबद सुनाइ के मस्तक दीनो हाथ।

४—घेरण्ड संहिता, तृतीयोपदेश, श्लोक, १०, १३, १४।

गुरु की महानता और साधु संगति की महिमा को संत सिंगाजी अच्छी तरह मानते थे :—

> गुरु परताप, सादु की संगत, धन सिंगा जस गाई।
> हद छोड़ बेहद को धावे तुख जम काल नी खाई।

डा० राम कुमार वर्मा ने गुरु की महान शक्ति का वर्णन करते हुए लिखा है[1] :—

"ऐसे गुरु की ईश्वरानुभूति महान् शक्ति है। वह अपने शिष्य को उन "शब्दों" का उपदेश दे, जिनसे वह परमात्मा के दैवी वातावरण में साँस ले सके। ....गुरु से प्रोत्साहित होकर, गुरु से शक्तियाँ लेकर, आत्मा अपने को परमात्मा में मिला देती है, जहाँ वह अनन्त संयोग में लीन हो जाती है।"

संत सिंगाजी के गुरु-महिमा-गान में गुरु की उपरोक्त विशेषताएँ मिलती हैं।

सिंगाजी की योग-साधना

सिंगाजी के पदों में हठयोग के भी कुछ सिद्धान्त मिलते हैं। योग की व्याख्या करते हुये डा० रामकुमार वर्मा ने बतलाया है— "आत्मा जिस शारीरिक या मानसिक साधन से परमात्मा में जुड़ जावे, वही योग है। माया के प्रभाव से रहित होकर जब आत्मा सत्य का अनुभव कर समाधिस्थ हो परमात्मा के रूप में निमग्न हो जाती है उसी समय योग सफल माना जाता है।"[2] इसी के साथ साथ "हठयोग" का सारतत्व बतलाते हुए लिखा है– "हठयोग का सारभूत तत्व तो बलपूर्वक ईश्वर से मिलना है। उसमें शारीरिक और मानसिक परिश्रम की आवश्यकता विशेष रूप से पड़ती है। शरीर को अधिकार में लाने के लिए कुछ आसनों का अभ्यास करना पड़ता

१—कबीर का रहस्यवाद—डा० रामकुमार वर्मा—
पृष्ठ—१।

२—कबीर का रहस्यवाद, डा० रामकुमार वर्मा, पृष्ठ—५९।

है और मन को रोकने के लिये ध्यानादि की आवश्यकता पड़ती है।[1] इस तरह योग साधन के आठ अंग हैं[2] :—

१. यम
२. नियम
३. आसन
४. प्राणायाम
५. प्रत्याहार
६. धारणा
७. ध्यान और
८. समाधि।

प्राणायाम

प्राणायाम से तात्पर्य यही है कि वायु-स्नायु पर इस प्रकार अधिकार प्राप्त कर लिया जाये कि श्वासोच्छ्वास की गति नियमित और नादयुक्त हो जाय। आसन के सिद्ध हो जाने पर ही श्वास और प्रश्वास की गति नियमित करने वाले प्राणायाम की शक्ति उद्भासित होती है[3] प्राणायाम से प्रकाश का आवरण नष्ट हो जाता है और मन में एकाग्रता की योग्यता आ जाती है।[4]

सिंगाजी का मत है कि परमात्मा से मिलने के लिए शरीर की शक्तियों को सुसंगठित करना आवश्यक है। समाधि के लिए भी

१—"वही" , पृष्ठ—६०।

२—यम नियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारण ध्यान समाधयोष्टावंगानि।
(पातजलि योग दर्शन, २, साधनपाद, सूत्र—२९)

३—तस्मिन्सति श्वास प्रश्वास योगन्ति विच्छेद:,
प्राणायाम: (पतंजलि योग सूत्र २—साधनापाद, सूत्र ४९)।

४—तत: क्षीमते प्रकाशावरणम् धारणा सुच योग्यता मनस:—
(पतंजलि योग सूत्र २—साधनपाद, सूत्र ५३)।

प्राणायाम आवश्यक है। प्राणायाम से प्राण-वायु के द्वारा शरीर में स्थित नाड़ियों और चक्रों में शक्ति का संचार होता है। शिवसंहिता के अनुसार हमारे शरीर में ३,५०,००० नाड़ियाँ हैं किन्तु "गोरख-शतक" में ३ लाख नाड़ियाँ बतलाई हैं। योग-साधना की चर्चा में एक प्रश्न है :-

"जो योगी छः चक्र, सोलह आधार और तीन लाख नाड़ी तथा पाँच व्योमों को, जो उसके शरीर में ही हैं, नहीं जानता वह कैसे योग में पूर्णता प्राप्त कर सकता है?"[1] इन तीन लाख नाड़ियों में १० नाड़ियाँ महत्त्वपूर्ण हैं :—

१. इड़ा (शरीर के बांई ओर)
२. पिंगला (शरीर के दाहिनी ओर)
३. सुषुम्ना (शरीर के मध्य में)
४. गांधारी (बांई आँख में)
५. हस्तजिह्वा (दाहिनी आँख में)
६. पुष्प (दाहिने कान में)
७. यशस्विनी (बांये कान में)
८. अलंभुषा (मुख में)
९. कुहुष (लिंग स्थान में)
१०. शंखिनी (मूल स्थान में)

इसी तरह ६ चक्र हैं :—

१. मूलाधार चक्र-गुह्य स्थान के समीप।
२ स्वाधिष्ठान चक्र-लिंग मूल में स्थित।
३. मणिपूरक चक्र-नाभिस्थित।
४. अनाहत चक्र-हृदयस्थित।

१—"षटचक्रं षोड़साधरं त्रिलक्षं व्योमपंचकम्
स्वदेहे ये न जानन्ति कथं सिद्धयन्ति योगिनः ?"

—गोरखशतक।

५. विशुद्ध चक्र-कंठस्थित।

६. आज्ञा चक्र-त्रिकुटी या भौंहों के मध्य में स्थित।

इन तीन नाड़ियों में सुषुम्ना को महत्वपूर्ण बतलाया गया है। क्योंकि सुषुम्ना नाड़ी के निम्न मुख में कुंडलिनी निवास करती है।[१] प्राणायाम के द्वारा कुंडलिनी जाग्रत होती है। कुंडलिनी के सम्बन्ध में 'गोरख शतक' में चर्चा की गई है–

"कुण्ड अर्थात् रीढ़ के निम्न भाग स्थित स्वयंभू लिंग के ऊपर कुण्डलिनी शक्ति आठ तह का कुण्डल बनाकर अपने मुख से ब्रह्म-द्वार को नित्य ढांप कर पड़ी रहती है। इड़ा (बांई नाड़ी) और पिंगला (दाहिनी नाड़ी) का जब सुषुम्ना (रीढ़ के मध्य स्थित नाड़ी) से बहने वाली प्राणवायु के साथ प्राणायाम आदि द्वारा मेल होता है तब कुण्डलिनी जाग्रत होती है और उसकी उर्ध्व गति होती है। वह षट-चक्रों को बेधती हुई सहस्राधार अथवा ब्रह्म-रंध्र में प्रवेश करती है; जहाँ अमृत झरता है और जीवात्मा उसका पान करती है। इसी अवस्था में "अनहद नाद" सुनाई पड़ता है, "प्रकाश" दिखाई देता है। आत्म-ज्योति परमात्म-ज्योति में एकाकार हो जाती है। यहाँ पहुँचने पर समाधि की अवस्था सिद्ध होती है। इसी को कुण्डलिनी योग या लय-योग कहते हैं।[२]

सिंगाजी की रचनाओं में प्राणायाम, नाड़ियाँ, षट-चक्र तथा लय-योग का स्पष्ट वर्णन मिलता है। सिंगाजी की 'आत्म-ध्यान' नामक रचना में षटचक्र और समाधि की अवस्था तक पहुँचने का विशद वर्णन मिलता है। उन्होंने षट-चक्रों की स्थिति, आकार और रंगों का वर्णन भी किया है।

१—तत्रविद्युल्लताकारा कुंडली पर देवता
साढ़ंत्रिकरा कुटिला सुषुम्ना मार्ग संस्थिता—
(शिव संहिता, द्वितीय पटल, श्लोक २३)।

२—देखिये— हिन्दी को मराठी संतों की देन—डा० विनयमोहन शर्मा, पृष्ठ १२०

सिंगाजी के निम्न पद में हठयोग संबंधी प्राणायाम और समाधि की अवस्था का वर्णन उनके योग संबंधी ज्ञान का द्योतक है—

अहो मन म्हारा काई भूल्यो भरमणा माहीं,
जी कारण नर जाय तीरथ ख उ तीरथ थारा घट माहीं।
उ तीरथ ख अपणो करी लेखो कि जेम भवरो[1] रह्यो बिलमाई॥
आगम घाट तीरवेणी तीरथ वकासी ध्यान लगावो रे।
गंगा जमुना सरसती रे ऊ तीरवेणी म न्हावो रे॥
अजपा ऊपर एक मुकाम जहां एक जोत झलकती।
अनहद सबद बाजे चौघड़िया थारी गुफा के माहीं॥
गुरु परताप साढु की संगत घन सिंगा जस गाई।
हद छोड़ बेहद कु ध्यावे तुख जम काल नी खाई॥

"हठयोग प्रदीपिका" के उपमान और संकेतों के आधार पर उपरोक्त पद की रचना हुई जान पड़ती है। यथा—

गंगा	—	इड़ा नाड़ी (३।११०)
जमुना	—	पिंगलानाड़ी (३।११०)
सरसती	—	सुषुम्ना नाड़ी (३।२४)
तिरवेणी	—	भ्रूमध्य में इड़ादि तीनों नाड़ियं का संगम स्थल (३।२४

साथ ही उपरोक्त पद में "गोरख-शतक" में वर्णित "कुण्डलिनी' जाग्रत करने की विवेचना भी है। ब्रह्म-रंध्र (जहाँ एक जोत झलकत है) में पहुँच कर जीवात्मा "अनहद-नाद" सुनता है। वहाँ यह 'नाद सतत होता रहता है। यहीं समाधि की अवस्था सिद्ध होती है।

सिंगाजी ने अनेक संकेतों द्वारा समाधि की अवस्था को सम झाया है :—

ओहं सोहं दुई मूल म्हारो सांई सामन झूल॥ टेक॥
गंगा जमुना सरसती बहती तीरवेणी को मेल।

---

१. भय।

जब लग भूलो नजर नहीं आवे ओ लख चवरासी भूल ॥
राम नाम की दोर लगी हैं म्हारो सतगुरु साभन फूल ।
कहे जरण सिंगा सुणो भाई साहु सतगुरु कमल को फूल ॥

ब्रह्म-रंध्र में इड़ा, पिंगला और सुषुप्ना अथवा गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम स्थल "त्रिवेणी" या "त्रिकुटी" है। इस स्थिति पर पहुँच कर जीवात्मा को एक "निराला खेल" दिखाई पड़ता है। संसार (माया) के खेल और "अनहद" के खेल में बड़ा अन्तर है। वहाँ का खेल अलौकिक है अतः निराला और अनूठा है और यहाँ का खेल झूठा है :—

चढ़ी जा सोहंग की धारा रे,
मन तू क्यों फिरतो मारा-मारा ॥ टेक ॥
तज दे कपट अटारी महल पर जा बैठो रे गंवारा ।
वहाँ को खेल निराला देखो यहाँ का झूठा पसारा ॥
चढ़ी गमन मगन हुई देखो वहती तीरवेणी धारा ।
उस धारा में न्हालो-धोलो फिरणा नहीं लागे किनारा ॥
बीच तीरवेणी सुमरण कर ले जपले सोहम प्यारा ।
वो है सो तू है तू है सो वो है रख निश्चय निरधारा ॥
ये है तंत संत नित प्यारा रख निश्चय ये धारा ।
कहे जरण सिंगा सुणो भाई साहु हरि भजन का प्यारा ॥

वहाँ पहुँचकर जीवात्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं रह जाता। "वो है सो तू है तू है, सो वो है" में यह भावना कितनी स्पष्ट है।

बंकनाल :

हठयोग में जो मेरु दंड का स्थान है वही ध्यान-योग में बंकनाल का है। बंक का उद्‌गम मूलाधार में है। यह वहाँ से आरम्भ हो नाभि के वाम भाग से निकलकर आज्ञाचक्र में मिलकर पुनः ऊपर की ओर चलती है। यहाँ इसका आकार एक अर्द्ध वृत्ताकार कमल नाल-सा बन जाता है। यह फिर शून्य प्रांत में प्रवेश कर जाती है।

एक पद में सिंगाजी ने 'बंकनाल' की चर्चा की है—

रे मन चढ़ी जा सोहं सीधी धारा रे मन तू ।।टेक।।
दिल दरियाव उमंग जल गहरा लहरा उठत अपारा ।
सोई नीर सकल भवसा म दीख रह्यो न्यारा ।।
बंकनाल की तू सुध कर भाई त्रिकुटी संगम मेला ।
सुखमण नार दोउ सांस बराबर वहीं थारो सिरजणहारा ।।
मन मछुओ माया की जाल म उलभ रह्यो संसारा ।
ढीमन जाल झटक कर डाले हद छोड़ जेम पेरा रे ।।
अलख म खलक खलक म पारा छिन म मिल करतारा ।
कहे जण सिंगा सुणो भाई साधु पल म कर निखवेड़ा रे ।।

भारतवर्ष में प्राचीन काल से योगाभ्यास और योगचर्चा होती आई है । ऋग्वेद, अथर्ववेद आदि में इसको अधिक महत्व दिया गया है । योग के कई साधन बतलाये गये हैं । यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि आठ अंग बतलाये गये हैं ।[1] आगे चल कर योग शब्द का व्यापक अर्थ में यह अर्थ होने लगा कि आत्मा का परमात्मा से तादात्म्य स्थिर करने वाली किसी भी साधना को योग कहते हैं । जीवात्मा का परमात्मा के साथ एकता ही जिसमें संकल्प की समस्त क्रियाएँ विनष्ट हो जाती हैं, "समाधि" कहलाती है । हठयोग की अन्तिम अवस्था का नाम समाधि है । समाधि ध्यान का पर्याय है । जीवात्मा और परमात्मा एक्य ज्ञान के उदय को ही समाधि कहते हैं ।[2] समाधि अवस्था तक पहुँचने के लिए संकल्प-शून्यता और मन की निश्चलता आवश्यक होती है । संत सिंगा ने हठयोग के जटिलतम स्वरूप को अपनाया है । इस अवस्था से संबंधित १० दरवाजे, ५२ कोठरी, १४ चंदा, ६४ दिया, १२ कोश, ७ सुरति, १६ संख और ७२ नाड़ियों की चर्चा की है । यथा—

---

१. योग सूत्र—सूक्त २९ ।
२. जाबाल दर्शनोपनिषद —१०/१

लहरी लहर कर चला अब नहीं आणे का आणे का,
दस दरवाजा प्रगट भई दुजे तीन खकुलुप लगाई,
उ तीन ई म उपर को खोज अरे गुरू वही सबद है सार,
अनगढ़ मुरली बजी गयब की उठे छतीसों राग,
बंकनाल से अमीरस पीणा तिरवेणी में नाहात्रण करना।

❀ ❀ ❀

मन मारी तन वस करो क्रिया करम वढ़ावो,
करम से मन शुद्ध होत है जब श्रो संत कहाओ।
औंधा कुलुप जड़िया बिन सामरथ कैसा खुले,
सोल सुहागण सुन्दरी नव बैठी कुआरी रे।
उनसी हरीजन तु दूर रहे तिन ख सोच करारे।

आगे चल कर लय योग की ओर सिंगाजी मुड़े। शब्द-ब्रह्म की धारणा अत्यन्त प्राचीन है। वेदों में अनेक स्थलों पर शब्द-ब्रह्म का महत्व प्रतिपादित किया गया है।[1] संत सिंगाजी का मत है कि जहाँ अनहद शब्द सुनाई पड़ता है वहीं ब्रह्म या भगवान निवास करते हैं—

अजपा ऊपर एक मुकाम जहाँ एक जोत जलाई,
अनहद शब्द बजे चौघड़िया, भारी भंवर गुफा के माहीं।
गुरू परताप साधु की संगत घन सिंगा जस गाई,
हद छोड़ बेहद को ध्यावे तुख जम कालणी खाई॥

सिंगाजी की भक्ति-भावना :

सिंगाजी के जीवन और कृतित्व का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उन्होंने अनेक विचारों एवं साधना-पद्धतियों से उपयोगी तत्व लेकर उनका समन्वय किया। इस समन्वय की भावना में विशेषता यह है कि उसमें सिंगाजी ने अपनी मौलिकता को अक्षुण्ण बनाये रखा है। उनकी वाणियों में निर्गुण-ब्रह्म निरूपण, ज्ञान की प्रधानता, भक्ति की अनन्यता, योग की प्रशंसा और बाह्याडंबर की निंदा के साथ-साथ

१. ऋग्वेद—१/१६४/१०

संसार की नश्वरता के प्रति उद्‍बोधक संदेश मिलता है। कबीर आदि
की भाँति कहीं-कहीं उनकी रचनाओं में परस्पर विरोधी प्रतीत होने
वाली उक्तियाँ अवश्य दिखलाई पड़ती हैं किन्तु इससे उनके सिद्धान्त
और साधना-पद्धति का विश्लेषण करने में कोई कठिनाई नहीं दीख
पड़ती। उनकी साधना-पद्धति सर्वथा असंगत सिद्धान्तों का समन्वय
नहीं है, उसमें कुछ सामंजस्य भी है और कुछ सार भी।

सिंगाजी की साधना पद्धति भारतीय साधना-परम्परा की भूमिका
पर आधारित है। इस तथ्य को सामने रखकर ही उनके विषय में
सम्यक विचार किया जा सकता है। सिंगाजी की वाणी की विरोधो-
क्तियाँ, उक्ति-वैचित्र्य और गूढ़ पदों की गहनता में उलझकर हम
उनका सच्चा मूल्यांकन नहीं कर सकते। क्योंकि हमें यह कदापि नहीं
भूलना चाहिए कि सिंगाजी दर्शन-शास्त्र के प्रकांड पंडित नहीं थे, वे
पहले संत थे, फिर साधक या और कुछ।

वस्तुत: तर्क की कसौटी पर प्रत्येक कृति या कथन में कोई न कोई
कमी या त्रुटि निकाली जा सकती है। किन्तु इससे किसी विचारक के
ज्ञान और कृतित्व का महत्व कम नहीं आँका जा सकता।

संत कवियों की वाणियाँ 'मुक्तक' का एक सुन्दर उदाहरण है और
इसीलिए वे अपने आप में पूर्ण हैं। इस कारण उनके विभिन्न पदों में
विभिन्न विचार धाराओं के दर्शन होते हैं। किसी एक पद में उन्होंने
'ब्रह्म' की विवेचना की है तो दूसरे में आडंबर और अंधविश्वासों की
निन्दा। किसी पद में 'योग' की क्रियाओं का विवेचन करते हुए
'अनहद नाद' का घोष किया है तो कहीं जीव की नश्वरता और
संसार की असारता में निमग्न माया-प्रच्छन्न जीव को सचेत किया है।
इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि उनके सम्पूर्ण कृतित्व का
सम्यक् अध्ययन करते हुए उनकी दार्शनिक-पद्धति और साधना का
एक निश्चित रूप निर्धारित करना चाहिए।

'संत साहित्य की सामाजिक पृष्ठभूमि' नामक अध्याय में सगुण
और निर्गुण उपासना की चर्चा करते हुए बतलाया है—

'इन दोनों साधनाओं ने दो पूर्वधर्ती धर्म मतों को केन्द्र बनाकर ही अपने आपको प्रकट किया। सगुण उपासना ने पौराणिक अवतारों को केन्द्र बनाया और निर्गुण उपासना ने योगियों अर्थात् नाथ पंथी साधकों के निर्गुण ब्रह्म को। पहली साधना ने हिन्दू जाति की बाह्याचार की शुष्कता को आंतरिक प्रेम से सींचकर रसमय बनाया और दूसरी साधना ने बाह्याचार की शुष्कता को ही दूर करने का प्रयास किया। एक ने समझौते का रास्ता लिया, दूसरी ने विद्रोह का, एक ने शास्त्र का सहारा लिया, दूसरी ने अनुभव का, एक ने श्रद्धा को पथ-प्रदर्शक माना, दूसरी ने ज्ञान को, एक ने सगुण भगवान को अपनाया, दूसरी ने निर्गुण भगवान को। पर प्रेम दोनों का ही मार्ग था, सूखा ज्ञान दोनों को अप्रिय था.......... ।'[1]

सिंगाजी ने साधना के इसी दूसरे मार्ग को अपनाया है। उनकी ऐसी भक्ति का स्वरूप 'परचुरी' में प्राप्त होता है, जिसमें प्रेम और भक्ति की महत्ता प्रतिपादित हुई है—

वहोर वात सुणो सब कोई।
प्रेम भक्ति बिन मुक्त न होई ॥[2]

उनका मत है कि भक्ति भाव के बिना जीवन व्यर्थ है। उन्होंने कबीर की भाँति 'राम' की महत्ता भी प्रतिपादित की है। उनका 'राम' भी कबीर की भाँति सब से निराला है—

म्हारो राम रंगीलो प्यारो।
नयना से होय मत न्यारो ॥

साथ ही उन्होंने उन राम-भक्तों की आलोचना भी की है जिनके लिए साधारण जनता "मुँह में राम बगल में छूरी" कहावत का उपयोग करती है—

१—मध्यकालीन धर्म साधना—हजारी प्रसाद द्विवेदी—पृष्ठ ९२।
२—'परचुरी'—पृष्ठ ५१।

राम कहे हुरदे बसे क्रोध अरु काल।
तिन पर पड़े जम की काल ॥
मुख राम हुरदे नहीं दया।
तिनका जनम सुबर का भया ॥[२]

नारद भक्ति-सूत्र में भक्ति को ज्ञान, कर्म और योग तीनों से श्रेष्ठ कहा है। सिंगाजी के विचारों में भी मुक्ति का साधन प्रेम-पूर्ण भक्ति ही है। इसलिए 'राम' को रिझाने की बात कही है—

इस विध राम रिझाओ रे साधो।
तासे भवरी जलम नहीं आवो रे साधु ॥ टेक ॥

योग-मार्ग भी इसी भक्ति-मार्ग पर आश्रित है। यदि भक्ति, प्रेम, दया और त्याग नहीं है तो यह योग व्यर्थ ही है—

दया धरम क्यों छोड़ो रे धर्मी, दया धरम क्यों छोड़ो।
हऊं कउं वचन एक थोड़ो रे ॥ टेक ॥
हरी जन की आतमा कलपाव।
तुख पड़ से बंदी तोड़ो रे ॥
संत सताव न तीनई वढ़ाय। तुख कुंभी पाप पड़ो रे ॥

इसमें कर्म से भक्ति मार्ग की श्रेष्ठता भी प्रतिपादित हुई है।

सिंगाजी की वाणियों पर उनके पूर्ववर्ती संतों का प्रभाव

तुलनात्मक अध्ययन

हिन्दी-साहित्य में संत कवियों का क्या स्थान है ? कवि गण देश व समाज के संचालक होते हैं। बारहवीं शताब्दी में जब दूसरे देश-वासियों का हमारे देश पर आक्रमण हुआ उस समय चन्द आदि वीर कवियों ने वीर गाथाएँ गा कर हमारे वीरों को उत्साहित किया। वे शक्ति के उपासक होते हुए भी शृंगार से अछूते न रह पाये और उसी विलासिता ने हमारा पतन किया। पराधीनता के बाद तो देश में एक

---

१ — वृद्ध उपदेश—पृष्ठ ३७।

बार श्रृंगार की बाढ़ सी आ गई और देव तथा बिहारी चमकते रहे। देश निराशा के अन्धकार में लीन हो गया। इस समय सूरदास ने श्रृंगार के साथ भक्ति का मेल करके बालकृष्ण की मधुर मूर्ति हमारे सामने रक्खी, जिससे जनता का मनोरंजन हुआ। पराधीनता में भी स्वाधीनता के प्रयत्न बराबर होते रहे। अकबर के राज्य में एक तरफ राणा प्रताप ने राजनीतिक स्वराज्य और दूसरी ओर गोस्वामी तुलसीदास ने रामराज्य और मानस साम्राज्य का झंडा फहराया। उन्होंने कलुषित श्रृंगार से भक्ति को अलग करके शक्ति के साथ उसका परिणय कराया और श्रीराम की शक्तिशालिनी लोकरंजनी और पतित पावनी मूर्ति जनता के सामने रक्खी।

हिन्दू धर्म को परिष्कृत और संगठित करने का आन्दोलन पहले ही चला आ रहा था। साथ ही ज्ञान तथा भक्ति को लेकर उसकी निर्गुण और सगुण शाखाएँ चल पड़ी थीं। सगुण संतों के सामने हिन्दू धर्म के भिन्न-भिन्न जातियों और पंथों को संगठित कर विधर्मियों और विदेशियों से आत्म रक्षा करने का प्रश्न था। इसी कारण वल्लभाचार्य ने मर्यादावाद और क्रियाकलाप पर जोर दिया। तुलसीदास जी ने इस कट्टरता को कम किया और सगुण, निर्गुण तथा शैव वैष्णवों आदि के लिए "श्रुति सम्मत हरि भक्ति पथ" को प्रशस्त किया। उदारता होते हुए भी मर्यादावाद की वहाँ भी प्रधानता रही, क्योंकि अभी भी आत्म-रक्षा का प्रश्न मुख्य था।

किन्तु कबीर आदि निर्गुण संतों के सामने हिन्दू समाज की तिरस्कृत जातियों के मिलाने के साथ साथ मुसलमानों के साथ भी समझौता कर लेने का प्रश्न था जो कि अब देश के निवासी हो चले थे। अतः उन्होंने ऐसे सिद्धान्तों ही पर जोर दिया जो सर्व सम्मत हो सकें। निर्गुण एकेश्वरवाद, क्रियाकलाप की शिथिलता तथा हृदय-वाद की अपेक्षा बुद्धिवाद ही पर जोर देने से यह सर्व सुलभ मत प्रचलित होना संभव था, अतः वही किया गया।

१६वीं शताब्दी भारत के इतिहास में "संतों की शताब्दी" कही जा सकती है। इस शताब्दी में सारे भारतवर्ष में संत कवियों का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने अपनी निर्भय वाणी में छिन्न-भिन्न हिन्दू जाति तथा भिन्न-भिन्न धर्म मजहबों के कारण निराशाग्रस्त हिंदू जनता को आशा और एकता का एक संदेश दिया। उत्तर में कबीर, नानक, दादू, पलटू, भीखा तथा धरनीदास आदि, दक्षिण में नामदेव, ज्ञानेश्वर, एकनाथ तथा तुकाराम, पूर्व में श्री चैतन्य, नित्यानन्द और गोविंददास तथा पश्चिम में नरसी मेहता, मीराबाई और सहजोबाई आदि संतों की वाणियों ने भक्ति और ज्ञान की अपूर्व सरिताएँ प्रवाहित कीं। संत शताब्दी के ये संत, यदि गिनती की जावे तो सौ से कम न होंगे। संत नाभाजी ने अधिकांश को अपनी "भक्ति माल" में गूँथ कर चिरस्थायी कर दिया है। संत सिंगाजी भी इसी संत शताब्दी के अमर रत्न थे, जिन्होंने मध्य प्रदेश को भूषित किया। हमारे प्रान्त के भूषण होने के कारण वे हमारे अधिक निकट तथा श्रद्धा-भाजन हैं।

संत शताब्दी में निर्गुण और सगुण मत-ज्ञान और भक्ति की धाराएँ स्वतन्त्र रूप से प्रवाहित हो रही थीं जिनका युक्ति-संगत सामंजस्य गोस्वामी तुलसीदास तथा प्रेममय समन्वय "मरुस्थल की मंदाकिनी" मीराबाई ने अपने काव्य में किया। संत सिंगाजी कबीर और दादू के समान निर्गुण मतवादी ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं। इस पंथ के संतों ने रूढ़िवाद, बहुदेववाद और जन्म श्रेष्ठत्ववाद आदि का खंडन कर एक अगोचर अलख परब्रह्म की उपासना के आधार पर समाज में एकता, समता और भ्रातृ-भाव स्थापन करने का प्रयत्न किया। इनकी वाणी में जाति भेद, लिंग भेद और धर्म भेद सभी भौतिक भेद भावों का खंडन मिलता है। यही कारण है कि इस पंथ में सिंगाजी ग्वाले, रैदास चमार, सदन कसाई तथा नामदेव दर्जी होते हुए भी एक ही भक्त माल में गूँथे जाते हैं। मीराबाई, दयाबाई और सहजोबाई स्त्री जाति में जन्म लेने पर

भी एक ही आसन पर बिठाई जाती हैं और कबीर जुलाहा, बुल्लेशाह और दरिया साहब एक ही संत पंक्ति में गिनाये जाते हैं। इनका तो मुख्य सिद्धान्त है--

करनी पार उतारि हैं, धरनी कियो विचार।
साकत ब्राह्मन नहिं भला, भगता भला चमार॥

—धरनीदास

और--

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का पड़ा रहन दो म्यान॥

—रैदास

केवल जातियों की एकता ही नहीं बल्कि धर्मों की एकता भी इन्हें अभीष्ट थी---

हिंदू से राम अल्लाह तुरुक से बहुत विधि करत बखाना।
दुहुँ को संगम एक जहाँ, तहँवा मेरो मन माना॥

—चरनदास

संत साहित्य का अध्ययन करने पर उनकी वाणियों के सम्बंध में एक विशेषता देखने में आती है, और वह यह कि संतों की विचार-धारा में बहुत अंतर नहीं जान पड़ता। इन सबकी विचारधारा एक ही भूमि पर प्रवाहित हुई जान पड़ती है। संत-परंपरा की ओर दृष्टि-पात करने पर ज्ञात होता है कि कोई भी संत, अपने पूर्ववर्ती संत की विचार-पद्धति से प्रभावित जान पड़ता है। नामदेव, चूँकि कबीर के पूर्व हुए हैं, इसीलिये वे कबीर की निश्चय ही प्रेरक शक्ति रहे हैं। नामदेव और कबीर के पदों का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए आचार्य विनयमोहन शर्मा ने कदाचित् इसी तथ्य को सिद्ध किया है।[१]

संत-मत की आधार भूमि निर्गुण-मत है और निर्गुण मत के

---

१. हिन्दी को मराठी संतों की देन—आचार्य विनयमोहन शर्मा—पृ० १२६, १२७।

प्रवर्तकों में नामदेव और कबीर अग्रणी माने गये हैं। वस्तुतः नामदेव को निर्गुण मत का प्रवर्तक मानना चाहिये। किन्तु इस मत से अनेक विद्वान सहमत नहीं हैं। डा० बड़थ्वाल ने निर्गुण-पंथ को प्रारंभ करने का श्रेय कबीर को दिया है।[1] इसी तरह आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी इस मत से सहमत होते हुए लिखा है कि जहाँ तक पता चलता है निर्गुण-मार्ग के निर्दिष्ट प्रवर्तक कबीरदास ही थे।[2] डा० विनयमोहन शर्मा ने नामदेव को निर्गुण-मत का प्रवर्तक माना है और अपना तर्क देते हुए लिखा है कि नामदेव, कबीर से पहले हुए हैं, और उन्होंने निर्गुण भक्ति का उत्तर में वर्षों प्रचार किया। फिर भी उन्हें उस पंथ का प्रवर्तक मानने में विद्वानों को क्यों झिझक होती है।[3] निर्गुण-मत के प्रवर्तक नामदेव हैं अथवा कबीर, इस समस्या का समाधान हमारा लक्ष्य नहीं है, किन्तु इस परंपरा से हमें एक बात अवश्य स्पष्ट होती है कि संत-साहित्य में विचारों की समानता है और संत परस्पर एक दूसरे की विचार-पद्धतियों से प्रभावित हैं। इसीलिये इनकी वाणियों में बहुत से शब्द क्या वाक्य के वाक्य, ज्यों के त्यों दिखलाई पड़ते हैं।

इसी तरह नाथ पंथ और सिद्ध साहित्य भी निर्गुणियों के संत मत के विकास के प्रेरक हैं। कुछ विद्वानों ने कबीर के काव्य को काव्य को इस्लाम से भी प्रभावित बतलाया है। किन्तु अब यह विवाद का विषय नहीं रहा, क्योंकि डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने यह निष्कर्ष निकाला है कि निर्गुनिया संत मत की भाव-धारा संपूर्णतः भारतीय है और उसका सीधा सम्बन्ध नाथ पंथी योगियों की बानियों से है, क्योंकि उसी प्रकार के पद, उसी प्रकार के गीत और उसी प्रकार के दोहे और चौपाइयाँ कबीर आदि के काव्यों में मिलती है, जो उन्होंने रची थी।[4]

---

१. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय—बड़थ्वाल—पृ० ३१।
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचंद्र शुक्ल—पृ० ७०।
३. हिन्दी को मराठी संतों की देन—आचार्य विनयमोहन शर्मा—पृ० १२६।
४. हजारीप्रसाद द्विवेदी—भूमिका—पृ० ३१।

विश्लेषणात्मक दृष्टि से देखा जाये तो ज्ञात होगा कि संत मत के प्रवर्तक कबीर तथा उनके पीछे होने वाले संतों के अधिकांश मंतव्य, यथा—"शून्य गगन में सुरति का आरोप और वहाँ परमानन्द का आस्वादन, योग की क्रियाएँ और उनका अभ्यास, भक्ति में रहस्यवाद, गुरु का गौरव, जात-पाँत, तीर्थव्रत, आडंबरपूर्ण विधि निषेध आदि, पाखंडों का निर्दय खंडन आदि—उन्हें गोरखनाथ के दल से पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिले थे।[१] इन संतों ने इन्हें वज्रयानी और सहज-यानी "सिद्धों" से लेकर और उनपर आस्तिकता का रंग चढ़ाकर तथा उनकी अश्लीलता का और ऐन्द्रियता का परिहार करके उन्हें गौरवान्वित किया।[२]

सिंगाजी, नामदेव और कबीर के परवर्ती संत हैं। उनके संपूर्ण जीवन-दर्शन और विचार-पद्धति पर, इन दो महान संतों का विशेष प्रभाव पड़ा है। सिंगाजी ने नामदेव और कबीर को अपना गुरु और पथ प्रवर्तक ही मान लिया है।[३]

इसी प्रकार से सिंगाजी की वाणियों में नाथ-पंथ का प्रभाव भी स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। इसका कारण तो उपरोक्त विवेचन से ही स्पष्ट हो जाता है कि संतों की विचार पद्धति की प्रेरक शक्तियाँ नाथ-पंथ और सिद्ध साहित्य में निहित हैं। कबीर और अन्य संतों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर इस बात की और भी पुष्टि होगी। सिंगाजी के पदों, भजनों आदि का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उनका जीवन दर्शन उनके पूर्ववर्ती निर्गुण पंथी संतों के दर्शन पर

---

१. संत कवि दरिया—डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री—पृ० ६०।
२. विशेष जानकारी के लिए देखिए—
हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल, तथा म०म० हरप्रसाद शास्त्री शास्त्री का "बौद्ध गान और दोहा"
३. देखिए इस प्रबन्ध का अध्याय—'संत सिंगाजी का समय'।

आधारित है। उसमें जीवन की नश्वरता, आत्मा की अमरता, गुरु भक्ति आदि तत्वों की प्रधानता दिखलाई पड़ती है।

नामदेव और सिंगाजी :

नामदेव के पूर्व नाथ-संप्रदाय के प्रेरक सिद्धों ने बहुदेवोपासना, व्रत, तीर्थ आदि बाह्याडंबरों की व्यर्थता प्रचारित की है।[१] महाराष्ट्र संतों का संपर्क नाथों से रहने के कारण उन्होंने भी बाह्याडंबरों के प्रति उदासीनता व्यक्त की है।[२]
यथा—

एकादशी व्रतु रहै काहै करू तीरथ जाई।
भनति नामदेव सुक्रित सुनति भए।

सिंगाजी ने व्रत और तीर्थ की बहुत निंदा की है—

तीरथ वरत मिथ्या करी जाण,
एक साईं सी करो पहचाण।

सिंगाजी ने सब तीर्थों को अपने 'घट' में बतलाया है।[३]

जी कारण नर जाय तीरथ ख उ तीरथ थारा घट माहीं।

गुरु-महिमा :

संत कवियों ने अपने आपको गुरु के भरोसे छोड़ रखा था। गुरु बिना ज्ञान नहीं और गुरु से बड़ा न कोय। नामदेव को गुरु की खोज में बहुत भटकना पड़ा। रामानंद के पैरों की ठोकर खाकर ही कबीर के मोह का अंधकार फट गया। कबीर ने गुरु को ब्रह्म से भी महान माना है। नामदेव ने भी 'सद्गुरु भेटला देवा' और 'ज्ञान अंजन

---

१. किस्त: तित्थ तपोवण जाई, मोक्ख किलाभई पाणीं ण्हाई। (संतसुधासार पृ० ६)
देवन पूजहू तिरथ ण जावा, देव पूर्जाहि ण मोक्ख पावा। (वही—पृष्ठ १०)

२. हिन्दी को मराठी संतों की देन—आचार्य विनयमोहन शर्मा पृ०११२।

३. देखिए—परिशिष्ट—'गुरु-उपदेस'।

मोको गुरु दीना' आदि में गुरु के महत्व को गाया है। नामदेव गुरु की कृपा की अपेक्षा करते हैं, क्योंकि—

जऊ गुरदेउ न मिल मुरारी
जऊ गुरदेव न उतरै पारि
जऊ गुरदेव त संसा छूटै
जऊ गुरदेऊ त जमसे छूटै

सिंगाजी ने तो गुरु की बहुत प्रशंसा की है।

यथा—

गुरु परताप, सादु की संगत, धन सिंगा जस गाई।
हद छोड़ बेहद कुं ध्यावे, तुख जम काल नी खाई।

और गुरु के चरणों की पवित्रता देखिए—

गुरु के चरण गंगा, कोई नहाई लेओ रे लूला अपंगा।

+ + +

तीन लोक में सतगुरु दाता, जाकी माया सब जुग खाता।
नामदेव कबीर आये गुरु की सरना, और ना की काहा करूँ वरना।।

उपरोक्त गुरु-महिमा-गान में हमें नामदेव कबीर आदि की परंपरा के साथ-साथ एक विशेषता दिखलाई पड़ती है, वह है अभिव्यक्ति की सरलता और आत्मविभोरता। अपने एक भजन में 'गुरु के चरण गंगा' कह कर जन समुदाय की गंगा को पवित्र मानने की भावना का सहारा लेकर उतनी पवित्रता गुरु के चरणों में देखी है। मारवाड़ वाले दरिया साहब ने आजीवन अपने को आश्रयहीन पाया और अनाथ समझा, परन्तु जिस दिन गुरु का हाथ मस्तक पर पड़ा उसी दिन से वे सनाथ हो गये।[१] 'सत गुरु अनाथ के नाथा' में सिंगाजी यही भाव बतला रहे हैं।

संत-साहित्य में नाम की महिमा गाई गई है। नाम स्मरण से

१. दरिया सतगुरु भेंटिया जा दिन जन्म सनाथ,
स्रवना सबद सुनाइ के मस्तक दीन्हों हाथ।

भ्रमों का नाश होता है, इसलिए नामोच्चार ही उत्तम धर्म है। नामदेव कहते हैं—

हरि हरि करत मिटे सभि भरमा।
हरि के नाम ले उत्तम धरमा॥[1]

सिंगाजी ने तो 'हरि नाम' की खेती करने का संदेश दिया है, इस खेती में बहुत लाभ होता है—

खेती खेड़ो हरि नाम की, जामें होवे लाभ।

और—

हीरो हरदय, हरि को नाम,
होजी मोहे दवलत से नहीं काम।

पोथी पढन्ते पांडे के प्रति जिस प्रकार नामदेव की खीज है वैसी ही खीज सिंगाजी में दिखलाई पड़ती है—

तू राम न जपहि अभागे
वेद पुरान पढ़त तउ पांडे, खर चंदन जैसे भारा।
राम नाम तत समझत नाहीं, अन्त पड़े मुख छारा।
—नामदेव.

वेद पढ़े कहो काहाते होई, वेद पढ़े तरे न कोई।
तले कागज उपर स्याही, आंधारे पंडत देखे न माही।

कबीर और सिंगाजी

सिंगाजी और कबीर की वाणियों में भी बहुत समानता दिखलाई पड़ती है। इन दोनों संतों ने ईश्वर की जो निर्गुण कल्पना की है, उससे यही निष्कर्ष निकलता है—मूर्ति-पूजा का खंडन। इसी हेतु सिंगाजी गा उठते है :—

टीका-टोला लावो मत कोई, ये सब सादो पाखंड होई।
फतर पूजे तो फतर पाव, नीरजीव के संग जलम गंवाव।

कबीर ने एक स्थल पर कहा है :—

१. पंजाबातील नामदेव (जोशी—१९४० संस्करण)—पृ० १०८।

जेती देखों आतमा, तेता सालिगराम।
साधू प्रतेपि देव हैं, नहिं पाथर सूं काम ॥[१]

इनके साथ सिंगाजी ने भी अपने "दृढ़ उपदेस" में कहा है :—

सालगराम पूजो मत कोई, अंतकाल फतर ते होई।

इस तरह मूर्ति-पूजा के खंडन में भी सिंगाजी कबीर से पूर्णतः सहमत हैं।

निर्गुण ब्रह्म का विवेचन करने में सिंगाजी, नामदेव और कबीर से भी आगे बढ़े हुए दिखलाई पड़ते हैं। कबीर आदि ने तो "राम" आदि नामों से ब्रह्म को सम्बोधित किया है किन्तु सिंगाजी के मत से :—

राम कहे होय कछू नाहीं, देखो संतो हीरदा माहीं।

सिंगाजी ने ब्रह्म को नाम-ठाम से परे बतलाया है। वह तो बारह राशियों से परे है :—

नाम लिये कहो काहाते होई, नाम लिये तरे ना कोई।
नाम-नाम कहे सब कोई वो बारा रास ती न्यारा होई।
पूकार-पूकार पुवा अज्ञान, अन्तकाल न पोंहचे ठीकाण।
नाम होये तो बाले सदी, अंध दुणिया भरम गई।

आत्मा, शरीर और पुनर्जन्म के विषय में सिंगाजी और कबीर एक मत दिखलाई पड़ते हैं। दोनों ने इस जगत से परे कहीं अन्यत्र किसी स्वर्ग की कल्पना नहीं की है। इनका तो मत है कि इस संसार के सुख-दुख से अप्रभावित होकर, इंद्रियों के प्रलोभनों से मुक्त होना ही मरना है :—

मरता-मरता जग मुवा, औसर मुवा न कोई।
कबीर ऐसा मरि मुवा, ज्यूं बहुरी न मरना होई ॥[२]

१. कबीर ग्रंथावली ४४।
२. कबीर ग्रंथावली ६४।

सिंगाजी ने अपने एक पद में कहा है :—

ऐसा मरना मरो संत भाई, भंवर जलम नहीं धरणा रे।

इस "भंवर" या "बहुरी" जलम से सिंगाजी का प्रयोजन यही है कि ऐसा काम करो जिससे बार-बार न मरना पड़े। "जीवन्मृत" होकर ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

सृष्टि-रचना :

कबीर के सृष्टि रचना के सिद्धांत का सारांश श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी की "कबीर" नामक पुस्तक में मिलता है। सत्पुरुष ने छः पुत्रों की सृष्टि की और एक सातवाँ भी था जो अंडे के आकार का था। इसी अंडे से पीछे चलकर निरंजन का जन्म हुआ। तब सत्पुरुष ने निरंजन को जगत की सृष्टि करने का आदेश दिया।[1] किंतु सिंगाजी ने सृष्टि-रचना की इतनी विस्तृत कल्पना नहीं की है। उन्होंने संक्षेप में सब कुछ कह डाला है :—

सिंगा येक पुरुष की रचना सारी, किया नान्ह वीस्तार।
ज्ञान-दृष्टि देखीया, दूजा नहीं सीरजणहार॥

जीव की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सिंगाजी ने बड़ी सरल किंतु गंभीर विवेचना की है :—

पंच तत्त्व त्रिगुण लगाया, मन तृष्णा तो जीव कव्हाया।
देह धरी सब जीव कव्हावे, आगु खएव पीछू नी आवे॥

पंच तत्वों से देह धारण करने पर यह पुतला "जीव" कहलाता है, जिसमें त्रिगुण (रज, तम, सत) हैं और वह इस माया के संसार में आगे बढ़ता है, पीछे नहीं हटता। यही उसकी कमजोरी है।

कबीर की तरह सिंगाजी ने भी रूढ़िवाद, अंध-विश्वास और कर्मकांड के विरुद्ध आवाज उठाई है। उनका विचार था कि निरर्थक

---

१. विशेष विस्तार के लिए देखिए – "कबीर" – हजारीप्रसाद द्विवेदी– पृ० ५४—५६

रूढ़ियाँ और पाखण्डपूर्ण कर्मकांड धूर्त और नीच पंडितों की स्वार्थ-परता का परिणाम है। उन्होंने इनकी कटु आलोचना और भर्त्सना की है। सिंगाजी ने अपने "दृढ़-उपदेश" में ब्राह्मणों को खूब खरी-खोटी सुनाई है। उनका मत है कि मनुष्य कर्म से ऊँच या नीच होता है, जन्म से नहीं। केवल गले में जनेऊ डाल लेने से कोई ऊँचा नहीं बन सकता :—

> सकल ब्राह्मण देख्या जोई, धागा नाखे उत्तम न होई।
> चाल है नीच नीच नहीं जात, सुता जर तुम सुणो हो बात ॥
> सींधा ऊँच जात वीप्र कव्हावे, नीच जात घर माँगण जावे।
> तरण तारण कुं गऊ वतावे, सो केउँ विष्टा[1] खावे ॥

उन्होंने उपरोक्त पंक्तियों में मानवतावाद का संदेश देकर विश्व-बंधुत्व की कल्पना की है। "चाल है नीच, नीच नहीं जात" में कर्म को कितना ऊँचा प्रतिष्ठित किया है। यह आज के युग में समसामयिक प्रतीत होता है। उन्होंने तो यहाँ तक कह डाला :—

> नर-नारी का येकई बाप, काहे को हिरदे लाओ पाप।

यदि यज्ञ करने से ब्रह्म नहीं मिलता तो यज्ञ भी ढोंग ही है :—

> जग कीया कहो काहा ते होई, जग कीया तरे न कोई।
> जग कीया जगन्नाथ न जाना, साई का मन कमुं न माना।

सिंगाजी और पूर्ववर्ती संतों का मायावाद :

कबीर ने मायातत्व का वर्णन करते हुए उन्होंने उसे किसी विश्व-मोहिनी सुंदरी के रूप में चित्रित किया है और उसका स्वभाव इन्होंने सबको प्रलोभन देना, ठगना व फँसाना दिखलाया है।[2] इतना ही

---

१. विष्टा— निमाड़ी में विष्टा, झूठन का पर्याय है। लोगों से माँगा हुआ कुछ अनाज इत्यादि झूठन ही है।

२. माया की झल जगजल्या कनक कामिनी लागि।
कबीर माया पापिनी फंद ले बैठि हुटि।
सब जग तो फंदे पड्या गया कबीरा काटि ॥

नहीं, यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो माया का प्रभाव सारी सृष्टि में ही दृष्टिगोचर होगा। पानी में मछली को, माया ने आबद्ध कर लिया है, दीपक की ओर पतंग माया के कारण ही आकृष्ट होता है, हाथी को माया ने ही काम-वासना दी है। छः यती, नव नाथ और ८४ सिद्ध तक माया के प्रपंचों से नहीं बच पाये।

संत नामदेव का मत है कि माया-जाल में न फँस कर ही इस संसार से छुटकारा मिल सकता है :—

इह संसार ते तबहि छुटउ जऊ माइआ नह लपटाऊ।
माइआ नामु मरम जोनि का तिह तजि दरसिनि पावऊ॥

"माया के फंद में नर आण भुलाणा" से ही सिंगाजी के जीवन को परिवर्तित कर दिया। "माया" शब्द को लेकर प्रायः सभी संतों ने उसका वर्णन-विश्लेषण किया है। सिंगाजी ने माया को सकल संसार का फंदा माना है और इसी माया के वशीभूत नर अंधा होकर कनक, कामिनी की सेवा करता है। इसने सकल देव-ब्रह्म को नचाया है और का क्या कहना :—

और सकल सब माया के फंदा, कनक-कामनी सेवे नर अंधा।
माया ठगोरी ने सब जुग खाया, देव-ब्रह्मा सब ही नचाया।
ले डुबी कुल समेता, औरना की का कहू बाता।[1]

माया की चर्चा सिंगाजी ने अनेक स्थलों पर की है। इस नश्वर संसार की असारता को न समझने का कारण यह मोह माया ही है। सिंगाजी को बड़ा खेद है कि बनाने वाले ने सब कुछ दिया है किन्तु समझ नहीं दी। माया का परदा आँखों पर पड़ा हुआ है—

माया मुआ, न जग मुआ, मरि-मरि गया शरीर।
रमैया की दुलहिन लूटा बाजार। माया ठगनि हम जानि।
(कबीर ग्रंथावली—३२, ३७, ३९)

१. परचुरी—पृ० ५, ११, १२।

जनम दीया पर नथेए न दीया, सकल फुतला आंधला कीया।
मेरि मेरि करता जनम गंमाया, खाए न पाया, आमर न भया।

मनुष्य मृग की भाँति भरमाया हुआ फिर रहा है—

भूला मृग आपए खोजे, दवड़त फीरे जडांत सूंघे।
भूली मछली पाणी मुं घर करे, नीर नी पीवे प्यासी मरे।

और—

मोह की कही ये भगिनी और भाई।
ये परदेशी जीव की कैसी सगाई॥

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि संत सिंगाजी ने कबीर और नामदेव जैसे महान संतों को अपना मार्ग-निर्देशक ही मान लिया था। इससे यह भी स्पष्ट है कि संत सिंगाजी पर अपने पूर्ववर्ती संतों का अनुकूल प्रभाव पड़ा होगा और तदनुसार ही उन्होंने अपनी साधना निर्दिष्ट की होगी।

सिंगाजी महाराज में नामदेव-कबीर के संत मत की पूर्ण छाप है। संत काव्य में रहस्यवाद है, साथ ही वस्तुवाद भी। और इन सब के साथ उसमें एक असाधारण काव्य-रस मिलता है।[१] संत सिंगाजी की वाणियों में भी ऐसे ही तत्व विद्यमान हैं जिन्हें हम कबीर या नामदेव की वाणी समझ कर भ्रम में भी पड़ सकते हैं परन्तु संतों की अनुभूति समान होने से भ्रम के लिए स्थान नहीं रह जाता। सिंगाजी पहुँचे हुए संत थे। उनकी अनुभूति भी गहन थी। अत: यद्यपि वे अपने पूर्ववर्ती संतों के अनुयायी हैं तो भी उनकी अभिव्यक्ति उन्हीं की ही अनुभूति है। उसमें हम भारतीय संतों की अखंड परम्परा ही पाते हैं।

इस ऐक्य भावना और परम्परानुगत समानता का कारण उनके युग की एक समान प्रवृत्तियाँ हैं। कबीर के युग की चर्चा करते हुए अनेक विद्वानों ने उसे विषम परिस्थतियों का युग माना है। कबीर के युग की राजनैतिक परिस्थितियाँ अस्थिर, विश्वासघाती, धार्मिक

१—संत दर्शन—डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित : पृष्ठ ४।

संकीर्णता और अमानुषिक अत्याचारों से भरी पड़ी थीं।[1] साथ ही कबीर साहब के सामने वास्तव में एक बहुत बड़ी समस्या थी जिसका निरूपण करना उनके लिए नितांत आवश्यक था। धर्म के क्षेत्र में न केवल हिंदू व मुसलमान दोनों वर्गों में बँट कर आपस में लड़-भिड़ रहे थे, बल्कि यती, जोगी, संन्यासी, शाक्त, जैन एवं शेख व काजी भी सर्वत्र अपनी-अपनी हाँक रहे थे। सभी अपने अपने को सत्य मार्ग का पथिक मानकर एक दूसरे के प्रति घृणा और द्वेष का विष घोल रहे थे। समाज में वर्ण-व्यवस्था से ऊँच-नीच का भेद स्थापित हो गया था। इन सब कारणों से उनके युग की परिस्थितियों को श्री परशुराम चतुर्वेदी जी ने "कलुषित वातावरण" कहा है।[2] अतः संत कबीर ने जनता के स्वार्थ और धन-लिप्सा की निन्दा की तथा उदार-वृत्ति और संतोष पर जोर दिया।

इसके बाद संत सिंगा के युग की ओर दृष्टिपात करते हैं तो हमें परिस्थितियाँ कुछ ऐसी ही दिखलाई पड़ती हैं। मध्यप्रदेश के निमाड़ जिले का इतिहास इसका साक्षी है। श्री प्रयागदत्त शुक्ल ने एक शोध-पूर्ण इतिहास लिखा है। उसमें निमाड़ के फरुखी वंश की चर्चा की है।[3] उन्होंने वि० सं० १३०० से १७०० तक निमाड़ की भूमि पर मुगल शासन की चर्चा की है। फरुखी वंश ने यहाँ २३० वर्षों तक राज्य किया। इससे मालूम होता है कि निमाड़ की भूमि पर मुगलों के हमले और लड़ाइयाँ सतत होती रहीं और इसके फलस्वरूप जन-समाज असंतोष और एक गहरे नैराश्य में डूबा हुआ था।

धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियाँ भी संतोषजनक नहीं थीं। भिन्न-भिन्न धार्मिक विश्वास फैले हुए थे और ग्रामीण जनता अंध-विश्वासों का बोझ लादे निस्पंद हो गई थी।

---

१ — संत दर्शन—डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित —पृष्ठ ४।

२ — उत्तरी भारत की संत परम्परा—श्री परशुराम चतुर्वेदी—पृष्ठ १८५।

३ — मध्य प्रदेश का इतिहास और नागपुर के भोंसले—श्री प्रयागदत्त शुक्ल, पृष्ठ ७१।

सन् १६०१ में प्रकाशित निमाड़ गजेटियर में निमाड़ की धार्मिक स्थिति का वर्णन निम्न प्रकार मिलता है। कैप्टेन फोर्सीथ ने निमाड़ की धार्मिक व्यवस्था पर लिखा है[1]—

"In Nimar modern Hinduism displays, perhaps more strikingly than in most places, the decay of the older and more orthodox forms and objects of worship before sectarian innvoation and rhe popular tendency towards the canonisation of religious Teachers".[2]

उक्त वर्णन से हम सन् १६०१ के पूर्व की (२००-३०० वर्ष पहले की) स्थिति का अनुमान लगा सकते हैं, जब कि निमाड़ में घोर अंधविश्वास और निराशा छाई हुई थी। इन परिस्थितियों का प्रभाव संत सिंगाजी पर पड़ना स्वाभाविक ही था। अतः जब उन्होंने गुरु मनरंगगीर का एक भजन सुना तो वे घर छोड़ कर विरक्त हो गए।[3]

इस तरह संतों की वाणियों में भाव-साम्य सर्वत्र दिखलाई पड़ता है। सिंगाजी के प्रमुख पूर्ववर्ती संतों की विचारधाराओं में जो भाव परिलक्षित होते हैं, सिंगाजी के परिवर्ती संतों में यही विचारधारा कम या अधिक अंशों में दिखलाई पड़ती है। हम नीचे अन्य संतों की वाणियों की झाँकी प्रस्तुत करते हैं और सिंगाजी की वाणियों के साथ उनकी तुलना करते हुए भाव-साम्य सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। सभी संतों ने प्रायः एक ही से भाव प्रायः एक ही से शब्दों में व्यक्त किये हैं—

फल नजदीक नजर नहीं आवे। सतगुरु बिन कौन बतावे॥
बिना पींड़ को बिरछा कहिये। डाल नवी नवी आवे॥

—सिंगाजी

1. Settlement Report : Parr 424; Captain Forsyth.
2. Central provinces District Gazetteers. P. 57.
३. समझि लेवो रे मना भाई, अंत न होय कोई आपणा।

सार शवद कहि बाचिहो मानों इतवारा।
सन्त पुरुप अच्छे विरिछ, निरंजन डारा॥

—कबीर

बिना पंख को हंसा कहिये
अकाश उड़ि-उड़ि जावै।
बिना पाल को सरवर कहिये
लहर उलटि कर आवे।

—सिंगा

बिन आदर जहं बिजुरी चमके
बिन सूरज उजियारा।
बिना सीप जहं मोती उपजें
बिन सुर शवद उचारा।

—कबीर

रहस्यवाद उपनिपद काल से ही इस निर्गुण मत की विशेषता रही है। निर्गुण निराकार का रहस्य केवल रूपक तथा रहस्यमयी वाणी ही में समझाया जा सकता है।
यथा—

अपाणि पापो जवनोगृहीता
पश्यत्यचक्षुः सश्रृणोत्यकर्णः

तथाः— "द्वा सुपर्णा समुजा सरवाया
समानं वृक्ष परिषस्व जाते॥ "आदि

इसी प्रकार सिंगाजी कहते हैं—

पाणी म मीन पीयासी माहे सुन-सुन आवै हांसी।
जल बिच कमल, कमल बिच कलियां, जहाँ बसे अविनासी॥

यही पद कबीरदास जी के ग्रन्थों में भी मिलता है। इससे ज्ञान पड़ता है कि संतों में एक दूसरे के भावों का आदान-प्रदान चलता रहा है।

अब निर्गुण का वर्णन सुनिए—

निर्गुण धाम सिंगाजी जहाँ अखण्ड पूजा लागी।
जहाँ अखंड ज्योति भरपूर। जहं झिलमिल बरसे नूर।
जहाँ भरा ज्ञान माहमूर। कोई विरला पहुँचे सूर।
वो सोहं शब्द इक तार। जहं आदि अन्त ओंकार।
जहं पूरि रह्या इक तार। सब घट में श्री ओंकार।
ये तन काया खोजो। खोजे बिन कैसे सूझे।
सूक्ष्म कमल के माहीं। जहं अनहद नाद सुनाई।
सिंगा रमी रहे तेहि माहीं। जहाँ कटे करम की काई।

—सिंगाजी.

मन मधुकर खेलत बसन्त। बाजत अनहद अति अनन्त।
विकसत कमल भयो गुंजार। ज्योति जगामग करि पसार॥

—गुलाल साहिब.

आदि शब्द ओंकार उठत है, अटुट रहत सब दीना।
लागी लगन निरंतर प्रभु सों, भीखा 'जल मन मीना'।
बाजत अनहद नाद गदागद, धुधुकि धुधुकि सुरभीना।
अंगुरी फिरत तार सातहु पर, लय निकसत भिनभीना।

—भीखा.

अनहद शब्द अपार दूर सुंदूर है। चेतन निर्मल शुद्ध देह भरपूर है॥

—चरणदास.

झिलमिल झिलमिल त्रिकुटी ध्याना, जगमग जगमग गगन ताना।
गह गह गह गह अनहद निशान, प्राण पुरुष तहं रहत जान॥

—बुल्ला.

एक निर्गुण निराकार ब्रह्म ही इनका उपास्य है—

"निर्गुण ब्रह्म है न्यारा। कोई समझो समझण हारा"
खोजत ब्रह्मा जनम सिराना, मुनि जन पार न पाया।
खोजत खोजत शिव जी थाके, ऐसा अपरम्पारा॥

शेष सहज सुख रहै निरन्तर, रैन दिवस इक तारा।
ऋषि मुनि और सिद्ध चौरासी, तैंतीस कोटि पचिहारा।।

—सिंगा.

निरगुण राम निरगुण राम जपहु रे भाई।
अविगत की गति लखी न जाई।।
चारि वेद जाके सुमृति पुराना, नौ व्याकरण मरम ना जाना।
शेष नाग जाके गरुण समाना, चरण कंवल कमला नहिं जाना।।
कह 'कबीर' जाके भेदै नाहीं, निज जन बैठे हरि की छांहीं।।

इसी एक ब्रह्म की एकता में विश्व की एकता का समावेश है—

नर नारी में देखि ले सब घट में एक सारा।
कहै "सिंगा" पहचान ले एक ब्रह्म है सारा।।

—सिंगा.

लोका जानि न भूलौ भाई।
खालिक खलक, खलक में खालिक सब जग रहा समाई।।

हम तो एक एक करि जाना
दो इक हैं तिन ही कहं दोजख जिन नाहिन पहिचाना।।
एकै पवन एक ही पानी, एक जोति संसारा।
एकहि खाक गढ़े सब मांडे, एकहि सिरजन हारा।।

—कबीर.

इसी एकता पर सारे धर्मों और मजहबों की एकता का आधार मान कर उसका प्रचार इन संतों ने किया है—

एक बूँद की रचना सारी जाका सकल पसारा।
सिंगाजी नभर नजरा देखी सोई गुरु हमारा।

—सिंगा.

एक बूँद एकै मल मूत्तर एक चाम एक गूदा।
एक ज्योति में सब उतपाना को ब्राह्मन को शूदा।

—कबीर.

अमर पद में विश्वास करने वाले सन्त गण जरा मरण की कोई परवा नहीं करते वल्कि उस मरण का स्वागत करते हैं—

ऐसा मरना मरो सन्त भाई बहुरि जनम नहिं धरणा रे।

— सिंगा.

जा मरने से जग मरे मेरे मन आनन्द।
कब मरिहौं कब पाइहौं पूरण परमानन्द॥
मरता मरता जग मुआ औतर मुआ न कोय।
कबीर ऐसे मरि मुआ वहुरि न मरना होय॥

संसार से आवागमन मिटाना ही इनका लक्षण होता है, क्योंकि यही सारे दुःखों का कारण है। निर्गुण पद प्राप्त करना ही जीवन का परम लक्ष्य माना है—

आवागमन मत कीजे रे मन म्हारा, फिरी जनम मत लीजे रे॥
तत्व-पलंग पर सेज बिछावणा, शून्य में डेरा दीजे रे॥

—सिंगा.

जहाँ कमै सूर न चन्दा, तहाँ देखा एक अनन्दा।
उस अनन्द सूँचित लाऊँगा, तो मैं वहुरिन भव जल आऊँगा।

—कबीर.

आत्मा परमात्मा की एकता तथा दोनों की अमरता में इनका पूरा विश्वास था—

कबीर डंके की चोट से कहते हैं—

हम न मरें मरि है संसारा।
हमको मिला जियावन हारा॥
हरि मरि हैं तो हमहूँ मरि हैं।
हरि न मरें हम काहे को मरिहैं॥

—कबीर,

किन्तु यह तभी हो सकता है जब हम उस अमर तत्व को पहचान लें जो घट-घट वासी है, उसे कहीं बार खोजने की आवश्यकता नहीं—अपने घट ही में वह विराजमान है—

जल बिच कमल, कमल बिच कलियां जहं वसुदेव अविनाशी ॥
घट में गंगा, घट में जमुना वहीं द्वारका काशी ॥
घर वस्तु बाहर क्यों ढूँढ़ों, बन बन फिरा उदासी ॥
कहै जन सिंगा सुनो भाई साधू अमरापुरी के वासी ॥

—सिंगा.

रे मन बैठि कितै जिनि जासी। हृदय सरोवर है अविनाशी ॥
काया मध्ये कोटि तीरथ काया मध्ये कासी।
काया मध्य कमलापति काया मध्ये बैकुण्ठवासी ॥

—कबीर.

तथा— कबिरा दुनिया देहु रे, सीस नवावण जाय।
हिरदा भीतर हरि बसै, तू ताही सौं लौ लाय ॥
मन-मथुरा दि-द्वारिका, काया कासी जाणि।
दसवां द्वारा देह का ता में ज्योति पिछाणि ॥

—कबीर.

इसी कारण अंतर्मुख होकर कायागढ़ की रखवारी करने का संतों का आदेश है—

चुन चुन कंकड़ महल बनाया दस दरवाजा गहरा।
कायागढ़ की करौ रखवारी, लख न पावे डेरा ॥

—सिंगा.

कबीर साहब भी कायागढ़ में लगी हुई आग को बुझाने के लिए चेतावनी देते हैं—

देखहु यह तन जरता है। घड़ी पहर बिलमो रे भाई जरता है॥
काम क्रोध मन भरे विकारा। आपहु आप जरे संसारा ॥
नव तन द्वायरा लागी आगी। मुगध नाचे ते नख सिख लागी ॥

—कबीर.

किन्तु यह तभी हो सकता है जब हम अपने शत्रुओं से सावधान रह कर उनसे युद्ध करें—

काम क्रोध ये अति बल योधा
अरे नर विष का बीज क्यों बोये।
पाँच रिपु तेरे संग चलत हैं
अरे वो जड़ा मूल से खोवे।

—सिंगा.

काम क्रोध अरु लोभ विवरजित, हरि पद चीन्हे सोई।
मंच चोर गढ़ मंझा। गढ़ लूटे दिवस रु संझा॥
जो गढ़पति मुह कम होई। तो लूट न सक्कै कोई॥

—कबीर.

यह ज्ञान का मार्ग बड़ा सूक्ष्म है–

तुलसीदास जी ने भी "ज्ञान के पंथ" को "कृपाण की धारा" से उपमा दी है। सिंगाजी कहते हैं—

घुरत नगारा शून्य में ताकी सुधि लीजै।
मोतियन की वर्षा वर्षे, कोई हरिजन भींजै।
राह हमारी बारीक है हाथी नहीं समाय।
सिंगाजी चींटी हुई रह्या, निर्भय आवनी जाय।

—सिंगा.

जहाँ न चींटी चढ़ि सके, राईन पहुँचाय।
मन पवन का गम नहीं, तुहाँ पहुँचे जाय॥

सुर नर मुनि थाके जहाँ, तहाँ न कोई जाय।
मोटे भाग "कबीर" के, तहाँ रहे घट छाय॥

—कबीर.

सचमुच इस सूक्ष्म मार्ग में संतों ही ने प्रवेश किया है-इस जर्जर नाव पर संत ही तैर सकते हैं—

"कबीर" नाव जरजरी बूढ़े खेवन हार।
हलके-हलके तरि गये, बूड़े तिंन सिर भार॥

सिंगाजी दूसरी ही जहाज की सलाह देते हैं :—

राम नाम की जहाज बना ले, काठ भयो बहु सारा।
कहे जन सिंगा सुन भाई साधू, मन रंग उतरे पारा॥

यह भक्ति-प्रेम का मार्ग कायरों का मार्ग नहीं है, बल्कि वीरों का मार्ग है। गुजराती संत नरसी मेहता कहते हैं :—

हरि नो मारग छे सूरानो।
नहिं कायर नो काम जोने॥

कबीर के अनुसार इसमें शूर ही जूझ सकता है :—

कहै कबीर सोई जूझि है सूरमा।
कायरां भीड़ तहँ तुरत भाजै॥

पलटू साहब कहते हैं :—

समझ-बूझ रण चढ़ना साधो खूब लड़ाई लड़ना है।
दम-दम कदम पड़ै आगे को पीछे नाहिं पिछड़ना है॥

संत सिंगाजी इसी प्रकार के शूर थे, वे कहते हैं :—

पाँच हथ्यार जुगत करि बाँधो नव ठाकुर भव तेरा।
जमराज से लेऊँगा लड़ाई सम्मुख रहूँगा अकेला॥

तथा

जीन लगाम उतरने न पावे चलन न पावे घोड़ा।
सम्मुख रहूँगा धणी के आगे पहला मुजरा मेरा॥

सिंगाजी की वाणियों का काव्य की दृष्टि से अध्ययन

अभी तक हमने सिंगाजी को एक विचारक के रूप में देखा है इससे भिन्न उनका एक रूप और है और वह है उनका कवि-रूप।

साधारणतः कवि के जीवन और कृतित्व का मूल्यांकन करने लिए उसकी रचनाओं को दो तत्वों के आधार पर परखा जा है—(१) भाव-पक्ष और (२) कला-पक्ष। "सिद्ध-साहित्य" में ड धर्मवीर भारती ने इन्हें क्रमशः (१) सिद्धांत-पक्ष और (२) शैली-प कहा है।

भाव-पक्ष या सिद्धांत-पक्ष से हमारा प्रयोजन कवि के जीवन और उसकी विचार-पद्धति से है। कवि के जीवन में ऐसा कौन-सा महान अवसर आया जब उसकी हृदय-तंत्री झंकृत हो उठी और उसकी वाणी के स्वरों ने शब्द-विधान कर दिया? आदि कवि के विषय में कहा गया है कि क्रौंच पक्षी के निर्मम वध को देखकर उनका करुणा से भरा स्वर एकाएक फूट पड़ा और इसीलिए कविता और कवि की विशेषता बतलाते हुए पंतजी गा उठे—"वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।" किंतु यह तथ्य सर्वांश में संत कवियों के लिए सत्य नहीं प्रतीत होता। संत कवि कहने से काल और देश में बिखरे हुए एक विशाल जाल-सूत्र को पकड़ लेते हैं, जिसको लेकर हम बढ़ते हुए भारतीय काव्य-साहित्य के आदि-स्रोत तक पहुँच जाते हैं। यद्यपि सबके विषय में नहीं कहा जा सकता, लेकिन अधिकांश संत कवि लोक-कवि थे। जो लिखित या नागरिक साहित्य से सुपरिचित अत-एव उसके आदर्श का पालन करने के लिए उद्यत थे, वह भी कितने ही समय तक लोक-साहित्य की ओर झुके थे। अतः यह तो स्पष्ट ही है कि संत कवि लोक-कवि थे और इस तरह वे पहले संत थे फिर कवि या और कुछ।

संतों की जीवनी से ज्ञात होता है कि उन्होंने अपना जीवन मान-वता के लिए अर्पित कर दिया था और उन्होंने जो कुछ किया वह मानव-कल्याण के हित के लिए ही किया। इसीलिए संत सांसारिकता से ऊपर उठकर जन-सेवा या अपने सिद्धांत के प्रचार में लगा हुआ दिखलाई पड़ता है। संत का संसार से कोई नाता नहीं रह जाता। वह तो बाजार में खड़ा होकर बुरे को बुरा और भले को भला खुल कर कहता है। वह तो घर फूँक तमाशा देखता है और लोगों से भी कहता है :—

कबीरा खड़ा बजार में, लिए लुकाठी हात।
जो घर दीजे आपनो, चले हमारे साथ॥

अतः संत को परोपकारी[1], सदाचारी[2], पवित्रात्मा[3], बुद्धिमान[4] और शांत[5] कहा गया है।

संत कवियों की दूसरी विशेषता उनका मध्यम स्थिति वाले निम्न वर्ण या जाति के परिवार में जन्म लेना है। नामदेव, कबीर, दादू, दरिया आदि संतों के विषय में यह तथ्य सही उतरता है। संत सिंगाजी भी एक दरिद्र गवली परिवार में पैदा हुए थे और इन्होंने जीवकोपार्जन के हेतु भामगढ़[6] के राजा के यहाँ डाकिए की नौकरी १ रु० प्रति माह वेतन पर की थी। ऐसी स्थिति में यह जानना आवश्यक प्रतीत होता है कि संतों को संतत्व की प्रेरणा कहाँ से प्राप्त हुई और अन्य संतों की भाँति ये बिना पढ़े-लिखे होते हुए भी इतने महान संत और कवि कैसे हो गए ? इसके उत्तर में साधारणतः यही कहा जाता है कि संत कवि बनाये नहीं जाते, पैदा होते हैं। इनके जीवन में कभी न कभी ऐसा अवसर आता है जब इनका हृदय उद्वेलित होता है और इनकी आत्मा जाग्रत होकर, इन्हें उच्च मार्ग की ओर प्रेरित करती है। सर्वविश्रुत है कि अपनी पत्नी की उद्बोधक डाँट-फटकार सुनकर पत्नी में लीन तुलसी राम-भक्त और महाकवि तुलसीदास बन गये थे। इसलिए हमें यहाँ यही देखना है कि सिंगाजी को संसार से विरक्ति किस अवसर पर हुई और वे सर्वस्व त्याग कर संत कवि कैसे बन गए ?

संत सिंगाजी की जीवनी के अध्याय को पढ़ने से इस समस्या का

---

१. सन्तः स्वय परहिते विहिताभियोगाः — भर्तृहरि
२. आचारलक्षणो धर्मः सन्तश्चाचारलक्षणा — महाभारत
३. प्रायेण तीर्थाभिगमापदेशैः स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति संतः-–भागवत–
स्क० १, अध्याय १९, श्लोक ८
४. सन्तः परीक्ष्यान्तरद्भजन्ते मूढ़ः परं प्रत्ययनैय बुद्धिः—कालिदास
५. सतं अस्स मनंहोत्ति–धम्मपद–अर्हन्तवग्ग, गाथा ७
६. देखिए–संत सिंगाजी की जीवनी नामक अध्याय।

समाधान हो जाता है। एक दिन भामगढ़ के राजा की डाक ले जाते हुए अपने घोड़े पर सवार सिंगाजी को रास्ते में गुरु मनरंगगीर की यह वाणी सुनाई पड़ी :—

"समुझि लेवो रे मना भाई, अंत न होय कोई आपणा।"

यह वाणी उनके कानों ने कम सुनी, आत्मा ने अधिक। ये शब्द उनके कलेजे में तीर की भाँति बैठ गए। यह निष्कर्ष निकालते हुए कि अंत में कोई किसी का नहीं है—यह संसार माया का जाल मात्र है—वे दौड़कर गुरु मनरंगगीर के चरणों में गिर पड़े और उनसे गुरु-दीक्षा की प्रार्थना की।

यही वह महान क्षण था जब साधारण गवली जाति का अपढ़ और अज्ञान डाकिया महान संत बनने के प्रथम सोपान पर था। गुरु मनरंगगीर की उपरोक्त वाणी उनके जीवन का सिद्धांत-वाक्य बन गई और उनकी हृदय-तंत्री के झंकृत होने से उनकी स्वयं की वाणी ने जो शब्द-विधान किया, वही उनका कृतित्व या काव्य बन गया।

रसगत रमणीयता :

जिस तरह अध्यात्म शास्त्र में "आनंदो ब्रह्मयेति रसो वैसः" कह कर ब्रह्म की प्राणभूत विशेषता प्रकट की गई है, उसी प्रकार काव्य-शास्त्र में रस को प्राण स्वरूप माना गया है। भरत मुनि ने काव्य में सत्काव्य के रस की अनिवार्यता प्रकट की है।[1] अग्निपुराण में रस की महत्ता प्रकट की गई है और वाग्वैदग्ध्य को महत्व दिया गया है।[2] ध्वन्यालोक में ध्वनि को महत्व दिया गया है और साथ में ध्वनिकार ने परिपक्व कवियों की वाणी में रसादि तात्पर्य से अलग कोई व्यापार को शोभापूर्ण नहीं माना है।[3] विश्वनाथ ने रस को

---

१. नाट्य-शास्त्र—अ० ६

२. अग्निपुराण—३३७।३३

३. ध्वन्यालोक—२२१

काव्य की आत्मा माना है।[1] सरस्वती रस कण्ठाभरणकार भोज ने काव्य में रस को आवश्यक सिद्ध किया है।[2]

रस की दृष्टि से सिंगाजी की वाणियों का अध्ययन करने पर हमें ज्ञात होता है कि रस-सिद्ध कवि न होने पर भी सिंगाजी की उलटवासियों और संसार की नश्वरता का उपदेश देने वाली उक्तियों में क्रमशः अद्भुत और शांत रस के दर्शन मिलते हैं। सिंगाजी की उलटवासियों में अलौकिक, अदृश्य, अपूर्व और आश्चर्यजनक बातों का वर्णन मिलता है। इन उक्तियों में विस्मय स्थायी रूप से विद्यमान रहता है। सिंगाजी के "दृढ़ उपदेश" के अनेक दोहों में ये उपदेश मिलते हैं :—

१—बिना नगर की आबाद बस्ती, बिरला जण फिरता गस्ती।

२—बिना सूरज होय उभाव, बिना सीप जो मोती पाव।

और शान्त रस की छटा देखिये—

मत बयेजो मोह की धारा रे हंसा झूठा हये संसारा रे हंसा ॥टेक॥
झूठी गेह देह धन धरणी झूठो सकल पसारा।
झूठी अरधंगी ने तोहे भरमायो नही उतरन दे पारा रे हंसा ॥
काम क्रोध कछ मछ बसत है लोभ मगर खावे हाड़ा।
अहंकार की लहर जो आवे मद का उड़त फुवारा रे हंसा ॥
दुरमति दोयत भव जल गंदलो कपट भँवर फेरा फेरा।
आसा तरषणा की कांजी दहत है पीवो सोई बीमारा रे हंसा ॥
खोजी खेयटिया ये नाव चढ़े रे सादु ये सब से हये न्यारा।
कहे गुरु सिंगा सुणो भाई सादु डुब्या मूढ़ गँवारा रे हंसा ॥

सिंगाजी एक संत हैं और उनकी मूल प्रेरणाएँ धार्मिक हैं। अतएव उनकी रचनाओं में शान्त रस की प्रधानता स्वाभाविक है। इनकी रचनाओं को रस की कसौटी पर कसना अनिवार्य नहीं है क्योंकि

---

१. साहित्य दर्पण—१।३

२. सरस्वती कण्ठाभरण—१।२

इन्होंने जो कुछ लिखा वह अपनी रस शास्त्र सम्बन्धी मर्मज्ञता बताने के लिए नहीं प्रत्युत जनता के मार्ग-दर्शन के लिए लिखा है। उनकी कविता में प्रयुक्त लौकिक प्रतीकों का हम लौकिक अर्थ ही ग्रहण न कर उनकी अलौकिकता पर विचार करें तो उनकी साधना सिद्ध होगी। उनकी साधना साधारण-जन के लिए निषिद्ध नहीं थी। वे तो अपने कथन से लोगों का उद्धार करना चाहते थे। अतः उनके काव्य का एक मजबूत पक्ष है—नीति-पक्ष। नीति-पक्ष के द्वारा उन्होंने साधारण जनता को भ्रांतिपूर्ण मार्ग से दूर हटाकर एक सहज मार्ग की ओर उन्मुख किया है।

इन उलटवासियों के सम्बन्ध में डा० धर्मवीर भारती का मत है—"इन उलटवासियों का मुख्य उद्देश्य जनता को चमत्कृत करना और आकर्षित करना प्रतीत होता है।......यही काव्य पद्धति परवर्ती नाथ तथा संत सम्प्रदायों में भी अपनाई गई जिसके कारण आज भी उनके काव्य को शुद्ध लौकिक काव्य-शास्त्र की कसौटी पर कसना कठिन प्रतीत होता है।"[१]

कला-पक्ष

सिंगाजी की वाणियों को काव्य के कला-पक्ष सम्बन्धी तत्वों पर कसने के पूर्व हम काव्य के स्वरूप के सम्बन्ध में विचार करेंगे। विद्वानों ने काव्य के चार प्रमुख अंगों का निर्देश किया है—बुद्धि तत्व, भाव तत्व, कल्पना तत्व और शैली तत्व। किसी विद्वान ने बुद्धि तत्व को महत्व दिया है तो किसी ने भाव तत्व को। कोई कल्पना को प्रधानता देता है तो कोई शैली को ही काव्य का प्राण मानता है। भारतीय आचार्यों में ध्वनिकार ही एक ऐसे आचार्य हैं, जिन्होंने काव्य के स्वरूप का वास्तविक निर्देश किया है। काव्य वास्तव में एक अनिवर्चनीय विशेषता रखता है। आनन्दवर्धन ने उस अनिर्वचनीय तत्व का संकेत इस प्रकार किया है—

१—सिद्ध-साहित्य—डा० धर्मवीर भारती—पृ० २८५।

"प्रतीयमानं पुनरन्य देव वर्सत्वस्ति वाणीषु महाकवीनां ।
एतत् प्रसिद्धायवातिरिक्तं आभाति लावण्यनि युवांगनासु ॥"[1]

अर्थात् जिस प्रकार स्त्रियों के रूप में अवयव सम्बन्धी सौंदर्य के अतिरिक्त लावण्य नाम की एक अनिर्वचनीय वस्तु होती है, उसी प्रकार महाकवियों की वाणी में भी एक प्रतीयमान अनिर्वचनीय सौंदर्य होता है। यह अनिर्वचनीय तत्व काव्य में कहाँ से आता है, इस पर विचार करना चाहिए। काव्य में अलौकिक अनिर्वचनीयता तभी आ सकती है जब उसकी अभिव्यक्ति आत्मा से हो। महाकवि भवभूति ने सम्भवत: इसीलिए वाणी या काव्य को अमृतरूपा कहते हुए आत्मा की कला माना है।[2] कबीर के विचारों की साहित्यिकता और अभिव्यक्ति के सम्बन्ध में लिखते हुए श्री गोविन्द त्रिगुणायत ने सच्चा काव्य उसे ही माना है जिसमें आत्म तत्व की अनुभूति हो।[3] अमृत रूपा भी वही काव्य होगा जिसमें सच्चिदानन्द स्वरूपिणी आत्मा की अभिव्यक्ति होगी। ऐसे काव्य के लिए छन्द, गुण, दोष, अलंकार आदि बाह्य विधानों की अपेक्षा नहीं होती। उसमें आत्मा के दिव्य और अनिर्वचनीय आनन्द का रस होता है।

संत कवियों के काव्य की परीक्षा इसी कसौटी पर की जानी चाहिए। उनकी वाणी में गुण, अलंकार, छन्द, दोष आदि विविध काव्य के बाह्य उपादानों को खोजना निरर्थक है। उनकी वाणियों में आत्मा और परमात्मा के विविध सम्बन्धों की भावपूर्ण अनुभूतियों की अभिव्यक्ति मिलती है।

सिद्ध-साहित्य ग्रंथ में काव्य पक्ष के भाव-पक्ष नामक परिच्छेद में कवि के सिद्धांत पक्ष में भी यही विचार व्यक्त किया है—

"..................किन्तु हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि इन समस्त

१—ध्वन्यालोक १।४
२—उत्तर रामचरित १।१
३—कबीर की विचारधारा–गोविन्द त्रिगुणायत—पृ० ३८७।

कवियों के सम्मुख जीवन का लौकिक पक्ष उतना महत्वपूर्ण नहीं था। वे साधक थे और साधक के लिए लौकिक जीवन बन्धन था, अज्ञान था, मायाजाल था। उसकी समस्त साधना का लक्ष्य ही यही था कि वह इस मायाजाल से किस प्रकार मुक्त होकर लौकिक जीवन के दिव्य और आध्यात्मिक अर्थों को ग्रहण कर पाये। इसीलिए उनके काव्य को लौकिक काव्य-शास्त्र की कसौटी पर कस कर उनका सही मूल्यांकन नहीं कर सकते और न उनके दृष्टिकोण को सही समझ सकते हैं। उनके काव्य का सही मूल्यांकन करने के लिए हमें उसी दृष्टिकोण का परिचय प्राप्त करना चाहिए जिससे प्रेरित होकर, जिसे आधार बनाकर, यह काव्य प्रणीत किया गया है।[1]

संतों की मूलभूत भावना के सम्बन्ध में विश्वनाथ प्रसाद ने कहा है—"संतों की मूलभूत भावना अपने युग की परिस्थिति-विशेष से आविर्भूत थी। न तो दर्शन सम्बन्धी विवाद करना उनका काम था, न रस-ध्वनि समझाना उनका पेशा था। और न तो नीति का उपदेश सुनाना उनका रोजगार था। वे मस्त फकीर थे, बहुश्रुत एवं पारखी। स्वतः आँखों से जो कुछ देखा उसे आत्मा की तुला पर तौलकर इमान-दारी से लोगों के सामने रख दिया। ये साधक थे, ब्रह्म के उपासक और सच्चे आराधक।"[2]

संतों की काव्य कला की उच्च-भूमि की चर्चा करते हुए डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—

"वर्णन कौशल वहाँ प्रधान नहीं है, वह भक्त के महान आत्म-समर्पण का अंगमात्र है। जिस दिन साधक सिद्ध हो जाता है और भक्ति अर्थात् चिन्मय रस के एकमात्र आकार निखिलानन्द संदोह भगवान से मिलकर एकमेक हो जाता है उस दिन कुछ कहने को बाकी

१—सिद्ध-साहित्य—चतुर्थ अध्याय—डा० धर्मवीर भारती—पृ० २३७।

२—निर्गुण काव्य-दर्शन की भूमिका—विश्वनाथ प्रसाद।

नहीं रह जाता।"[1] इसी सिद्धावस्था को बताने के लिये कबीरदास ने कहा है—

> कहना था सो कह दिया, अब कछु कहना नाहिं।
> एक रही दूजी गई, बैठा दरिया माहिं॥
> साखी-शब्दी जब कहो, तब कछु जाना नाहिं।
> बिछुरा था तबही मिला, अब कछु कहना नाहिं॥

संत कवि सिंगाजी के काव्य का स्वरूप निर्धारित करने के पूर्व उपरोक्त उद्धरणों का प्रयोजन समझ लेना आवश्यक है। पहली बात तो यह है कि संत पहले अपने सिद्धान्त का प्रचारक और युग-नेता है फिर कवि। दूसरी बात यह है कि संत काव्य में काव्य का स्वरूप गौण है। कम से कम उसके श्रष्टाओं ने उसके काव्य पक्ष पर बल नहीं दिया। किन्तु फिर भी रस जो कि काव्य की आत्मा है, का अभाव इनके काव्य में नहीं है। कबीर के, "लोग कहें यह गीतु है यह निज ब्रह्म बिचार रे" उक्ति के आधार पर कबीर की साहित्यिक देन पर विचार करते हुए सिद्धिनाथ तिवारी ने[2] यह सिद्ध किया है कि "मसि कागद" नहीं छूने वाला भी अनायास ही जो कुछ बोल उठता है, उसमें रस-अलंकारादि नहीं है, ऐसी बात नहीं।

हृदय से निःसृत होने वाली बातों में स्वतः हृदय को छूने की शक्ति रहती है और इन मर्मी कवियों में मर्म-स्पर्श करने की शक्ति किसी भी रस-पिंगल के जानकार से कम नहीं थी।

सिंगाजी के सिद्धान्त या भाव पक्ष का मूल संत कवि के हृदय की वह उच्च भूमि है जहाँ पहुँचकर उसके भाव अपने आप निःसृत होकर काव्य का सृजन कर देते हैं। इनके काव्य के कला पक्ष पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि इनका काव्य सीधी साधी सरल भाषा में रचा

---

१. मध्यकालीन धर्म साधना—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—पृ० १३७।
२. निर्गुण काव्य दर्शन ग्रंथ की भूमिका—विश्वनाथ प्रसाद।

हुआ है। क्योंकि भाव जब सच्चे होते हैं तो उन्हें ईमानदारी के साथ प्रकट करने के लिये बनाव शृंगार की आवश्यकता नहीं होती। भावनाओं का वेग जब तीव्र होता है तब वे ऐसे ही व्यक्त हो जाते हैं। उस समय उन्हें छंद और पिंगल, अलंकार और रस की डोर में बाँधने का ख्याल ही नहीं रहता। निर्झरणी को बहने के लिये बँधा बँधाया पाट नहीं मिलता वह तो पहाड़ के तल फोड़कर नग्न रूप में बिखर पड़ती है।

संत कवि सिंगाजी की भाषा तुलसी या सूर की भाँति साहित्यिक भाषा नहीं, बल्कि लोक भाषा है। वह कबीर के शब्दों में "कूप-जल" नहीं "बहता नीर" है जिसका आनन्द सभी उठा सकते हैं। छंद या पिंगल के बंधनों से यह भाषा मुक्त है। इसीलिये इनके काव्य में छंद-भंग बहुत मिलते हैं, भाव भंग नहीं। इसी कारण इनके काव्य का प्रचार सभी जाति और सभी धर्मों की ग्रामीण जनता में हो सका है। कदाचित् इसीलिए वयोवृद्ध साहित्यकार और कवि पं० माखनलाल चतुर्वेदी ने अपने, सिंगाजी पर लिखित एक अति प्राचीन लेख—"नर्मदा तट का महान संत" में लिखा है—

"जिसमें देवताओं को रिझाने के लिए स्वर न था, अपनी भाषा को पेट भर तृप्त करने के लिए व्यंजन न थे, पढ़े लिखेपन के अभाव और पेट भरने की कठिनाइयों के कारण जिसे ऊँचा मस्तक करके वाग्मियों में स्थान पाने की सन्धि न थी·····सिंगाजी की वाणी बेइ-ख्तियार निकलती है—उसमें यद्यपि अलंकारों का प्रदर्शन नहीं, किन्तु वह इतने सीधे-सच्चे ढंग से कही जाती है कि वह सीधे मर्म को छू लेती है।"

संत कवियों की भाँति सिंगाजी की शब्द सम्पत्ति परिमित थी फिर भी उनकी अभिव्यक्ति में कितनी सरलता और मार्मिकता है। हम परमात्मा को कहाँ-कहाँ ढूँढ़ने जाते हैं, किन्तु वह तो हमारे बहुत

नजदीक है। हमारी कमजोरी ही हमें उससे दूर रखती है। कुछ ऐसा ही भाव इनके इस गीत में दिखलाई पड़ रहा है[१]—

(अर्थ)—'मैंने तुम्हें कितनी दूर जाना, पर तुम कितने निकट निकले। तेरी सी रहनी रहकर मुझे समर्थ मिल गई, क्योंकि उस समय मेरी पीठ पर मैं तेरे हाथों की थपकियाँ गिन रहा था, पर एक कसर है, तुम सोना हो, मैं गहना हूँ। सांसारिकता का टांका लगाकर ही सोने और सोने में भेद किया जा सकता है।" एक दूसरा भजन है[२]—

(अर्थ)—"भाई, हरिनाम की खेती जोतो, ऐसी खेती में बहुत लाभ होता है। पाप के पत्तों को काट डालना और उन्हें खेत से दूर डाल कर्मों का कूड़ा बाहर फेंक दो इससे खेती अच्छी आ जायगी। आती और जाती हुई दो साँसें दो बैल हैं, और मैंने स्मरण की डोर में उनको बाँध रखा है। इन बैलों को हाँकने के लिए प्रेम की लकड़ी में ज्ञान की पैनी खीली लगाना चाहिए।

सिंगाजी की वाणियों को हम मुख्यतः तीन विषयों में बाँट सकते हैं—(१) समाज-सुधार के लिए पाखंड की निन्दा।

(२) उपदेश।

और (३) स्वानुभूति चित्रण।

---

१. मैं तो जाणू साईं दूर है तुझे पाया नेड़ा,
रहणी रही सामरथ भई मुझे पखवा तेरा।
तुम सोना हम गहणा मुझे लागा टाका।
तुम तो बोलो, हम देह धरि के बोले के रंग माखा॥

२. खेती खेड़ो हरि नाम की, जाम मुक्तो लाभ।
पाप का पालवा कटाव जो, काटी बाहर राल।
कर्म की कासी एचाव जो, खेती चोखी थाय॥
वास स्वास दो बैल हैं, सूर्ति रास लगाव।
प्रेम पिरहाणों कर धरो, ज्ञान आर लगाव।

उन्होंने जन-समाज में जहाँ भी आडंबर या पाखंड देखा, उसकी तीव्र आलोचना की। जाति-पाँति का कृत्रिम भेद, ऊँच-नीच का भाव, रूढ़िग्रस्त परंपराओं का अंधानुकरण, अंध-विश्वास, मूर्तिपूजा, मंदिर, मस्जिद इनमें से जिस ओर भी उनकी दृष्टि गई, उसकी उन्होंने निन्दा की। उनकी इस निन्दा में चिढ़ या खीज नहीं, परोक्ष रूप से उपदेश का भाव रहता है। हिन्दू और मुस्लिम का मूल एक ही बतलाते हुए उन्होंने कहा—

"हिन्दू तुरक कवो मत कोई येक वाप का बेटा दोई।"

सिंगाजी अंध-विश्वास और पाखंड के घोर विरोधी थे। तीर्थ, व्रत, उपवास, मूर्ति-पूजा आदि को उन्होंने व्यर्थ सिद्ध किया है—

"तीरथ वरत फेरा न कीजो, कई लख जीव मरे अपणा सर लीजो।

× × ×

देव देव कहै सब कोई, देव सब फतर से होई॥
देव पूजे भला न होई, विनंती करी करी मुवा सब कोई॥

× × ×

फतर पूजे ती फतर पाव, नीरजीव की संग जलम गँवाव॥

× × ×

राम कहे होय कछू नाहीं, देखो संतों हीरदा माहीं॥[1]

नर और नारी के भेद को भुलाकर मानवतावाद का सबक निम्न पंक्तियों में स्पष्ट है—

"नर नारी का येकई वाप, काहे को हिरदे लावो पाप॥[2]

सिंगाजी की उपदेशात्मक रचनाओं में जीवन की दार्शनिकता भरी हुई है। उसमें शुद्ध आचरण, प्रेम और सत्संग का महत्व तो है ही, साथ ही माया-मोह की निन्दा और संसार की क्षण-भंगुरता

१—सिंगाजी का वृद्ध उपदेश।
२—वही।

आदि का वर्णन भी है। उनके ऐसे पदों से जीवन में उनकी गहरी पैठ का आभास मिलता है—[१]

जाप जपे कहो काहाते होई।
जाप जपे तरीया न कोई॥
हात पाव धोई सुमरण करे।
मन कपुत धीरज न धरे॥[१]

× ×

भगवा कीया जटा बढ़ाई।
मन की कलपना कभु न जाई॥[२]

× ×

माया हुये कहो काहाते होई।
माया होवै तरै न कोई॥
मेरी मेरी करता जन्म गमाया।
करता पुरस हीरदै नहीं आया॥[३]

संतों की साधना-पद्धति में हमें सर्वत्र एक समानता के दर्शन होते हैं और इसके फलस्वरूप उनकी रचनाओं में बहुत से शब्द क्या वाक्य के वाक्य ज्यों के त्यों एक-दूसरे की वाणी में मिलते हुए नजर आते हैं। "अलख पुरुष", "भंवर गुफा", "सद्गुरु", "अखंड ज्योति", "अनहदनाद" जैसे शब्दों के उदाहरण इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। शब्दों के साथ ही साथ सिंगाजी के भावों में भी यही समानता दिखलाई पड़ती है—

फल नजदीक नजर नहीं आवै सद्गुरु बिन कौन बतावे।
बिन पिंड को बिरछा कहिये डाल नवी नवी जाये॥

—सिंगाजी

१—दृढ़ उपदेश—८
२—वही —११
३—वही —२१

सार शब्द कहि बाचिहौ मानौं इतबारा।
सन्त पुरुष अच्छै बिरिछ निरंजन डारा॥

—कबीर.

और—

बिना पंख को हंसा कहिए अकास उड़ि उड़ि जाये।

—सिंगाजी

बिन बादर जहँ बिजुरी चमकै बिन सूरज उजियारा।

—कबीर

यह समानता निर्गुण के वर्णन में भी दिखलाई पड़ती है—

निर्गुण धाम सिंगाजी जहाँ अखंड पूजा लागी
जहाँ अखंड ज्योति भरपूर जहाँ झिलमिल बरसे नूर

—सिंगाजी

अनहद शब्द अपार दूर सुदूर है।
चेतन निर्मल शुद्ध देह भरपूर है॥

—चरणदास

झिलमिल झिलमिल त्रिकुटी ध्याना, जगमग जगमग गगन ताना।
गह गह गह गह अनहद निशान, प्राण पुरुष तहँ रहत आन॥

—बुल्ला

एक ब्रह्म की एकता में विश्व की एकता का समावेश है—

एक बूँद की रचना सारी जाका सकल पसारा।
सिंगाजी ने भर नजरा देखी सोई गुरु हमारा॥

—सिंगाजी

एक बूँद एकै मल मूत्तर एक चाम एक गूदा।
एक जोति में सब उतपाना को ब्राह्मण को शूदा॥

—कबीर

भाषा-सौष्ठव

जहां तक संत कवि सिंगाजी की भाषा का प्रश्न है इनकी भाषा का स्वरूप सधुक्कड़ी होते हुए भी काफी प्रांजल और सरस है। यह सधुक्कड़ी भाषा एक मिश्रित भाषा के रूप में हमारे सामने आती है, जिसका सौंदर्य इसलिए भी अधिक बढ़ गया है कि इसमें अनेक बोलियों के कहीं कहीं एकत्र दर्शन होते हैं और कथन में स्वाभाविकता आ जाती है। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि यह मिश्रित भाषा सभी संतों में एक रूप की नहीं है। जिस संत का निवास स्थान जो प्रदेश अधिक दिनों तक रहा है उस पर उसका विशेष प्रभाव पड़ा है और धीरे-धीरे उस प्रदेश की भाषा उसकी भाषा बन गई है। इन्हीं कारणों से सिंगाजी की भाषा में निमाड़ी बोली का प्राधान्य है। अतः सिंगाजी की भाषा के सम्बन्ध में यही कहना युक्तिसंगत होगा कि उनकी काव्य-भाषा मूलतः निमाड़ जिले की बोल चाल की भाषा "निमाड़ी" है।[१]

श्री शिवकुमार चवरे ने सिंगाजी की भाषा के संबंध में लिखा है—"सिंगाजी निमाड़ी थे, उन्होंने अपनी कविता उसी निमाड़ी में लिखी है। निमाड़ी एक "बोली" है, साहित्यिक भाषा नहीं, उसका शब्द कोष नहीं, उसका साहित्य नहीं। ऐसी भाषा में सिंगाजी ने दर्शन के सुन्दर तत्वों को किस सादगी से रखा है, देखते ही बनता है। जिस विषय को समझाने के लिए साहित्य का एक रूप ही बनाया गया, जिस पर कई बड़े-बड़े विद्वानों के ग्रंथ लिखे गये, उसे सिंगाजी का इस प्रकार सादी भाषा में लिख जाना, बहुत ही आश्चर्य है।"[२]

छन्द

साधारणतः समग्र संत साहित्य दोहा और पद शैली में लिखा

१—"निमाड़ी" के सम्बन्ध में देखिए-मेरा लेख-संत सिंगाजी की परचुरी—"हिन्दी अनुशीलन"—अंक अप्रैल-जून, १९५८। पृ० ६५।

२—संत सिंगाजी—श्री शिवकुमार चवरे। पृ० ३७।

गया है। उपदेश और नीति के सारे अवतरण दोहों में हैं। सिंगाजी का "दृढ़-उपदेश" दोहे और चौपाई में लिखा हुआ है। दोहे और चौपाई के सिवाय सिंगाजी की वाणियों में कोई छंद नहीं मिलता।

"सिंगाजी के भजन" नाम से उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ, मुक्तक काव्य का सुन्दर उदाहरण है। ये मुक्तक गेय हैं और निमाड़ के एक कोने से दूसरे कोने तक ये भजन इनके भक्तों एवं अनुयायियों के कंठ में गूँजते रहते हैं। निमाड़ जिले के प्रत्येक गाँव में सिंगाजी के भजन गाने वालों का समाज आज भी विद्यमान हैं। ये लोग मृदंग और मंजीरों पर इनके भजनों को रात्रि के सुरम्य वातावरण में घंटों गाते-गाते अपने आपको भूल जाते हैं। श्रावण की पूर्णिमाओं और त्योहारों पर किसान लोग सिंगाजी के गीतों को गाकर सिंगाजी के प्रति होने वाले आकर्षण को अनेक गुना कर दिया करते हैं। पं० माखनलाल चतुर्वेदी ने एक स्थल पर उनके गीतों के सौंदर्य के सम्बन्ध में लिखा है--

"सिंगा के गीतों के दीपक लेकर निमाड़ के किसान सुदूर आसमान पर चमकने वाले सूरज और चांद की आरती उतारा करते हैं। वे सिंगाजी के गीत दीपों की शिखा को अन्य संतों के चरणों पर हिलता झुलता देखते हैं, किन्तु अपना मस्तक सिंगा रूपी प्रकाश पुंज पर ही चढ़ाते हैं।"

इनके गीतों की विशेषता यह है कि सिंगाजी ने इन गीतों में गहन से गहन और गम्भीर से गम्भीर दार्शनिक विचारों को सीधे-साधे शब्दों में हमारे सामने रख दिया है—

निर्गुण ब्रह्म है न्यारा, कोई समझो समझणहारा ॥ टेक ॥
खोजत ब्रह्मा जनम सिराणा, मुनिजन पार न पाया।
खोजत-खोजत शिवजी थाके, वो ऐसा अपरम्पारा ॥
शेष सहस्र मुख रटे निरंतर, रैन दिवस एक सारा।
रिषि मुनि और सिद्ध चवरासी, वो तैंतीस कोटि पचिहारा ॥
त्रिकुटी महल में अनहद बाजे, होत सबद झनकारा।
सुकमणि सेज सून्य म मूल, वो सोहं पुरुष हमारा ॥

वेद कथे अरु कहे निर्वाणी, श्रोता करो विचारा।
काम क्रोध मद मत्सर त्यागो, ये झूठा सकल पसारा॥
एक बूँद की रचना सारी, जाका सकल पसारा।
सिंगाजी न भर नजरा देखा, अरे वोही गुरू हमारा॥

संत कवियों की भाषा को अनेक विद्वानों ने अशक्त एवं निकम्मा कहा है, पर ध्यान से देखने पर उनकी भाषा में भावों के प्रकटीकरण की जो तीव्रता है वह अन्यत्र नहीं मिलती। इसीलिए कबीर की भाषा के सम्बन्ध में द्विवेदी जी ने लिखा—"भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे।" संत सिंगाजी की भाषा के संबंध में भी यही कथन उपयुक्त है।

इनकी भाषा की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उनकी लाक्षणिकता है। लाक्षणिक भाषा से उस रहस्यमय वातावरण की सृष्टि होती है, जो संत-मत की एक प्रमुख विशेषता है। सिंगाजी की उलटवासियों में सांसारिक पहेलियाँ बुझाने के लिए सांसारिक अनुभव और शब्द चातुर्य दिखलाई पड़ता है किन्तु उलटवासियों को समझने के लिए ज्ञान की आवश्यकता है। इसीलिए कदाचित् सिंगाजी ने कहा—"उलट ज्ञान कोई बिरला बूझे, और न बूझे कोई" सिंगाजी की उलटवासियाँ देखिए—

फल नजीक नजर नहीं आवे, सद्गुरु बिन कौण बतावे।
बिना पाल को सरवर कहिए, लहेर उलट कर आवे।
बिना चोंच का हंसा कहिए, मोती चुग चुग कर खावे।
बिना पेड़ को वृक्ष कहिये, डाल नवी नवी आवे।
बिना पंख को हंसा कहिये, वो आकाश उड़ी उड़ी जावे।
बिना पत्र को बेल कहिये, छाँव नजर नही आवे।
बिना फूल फल लागा उनको, कोई साधु जन को पावे।
उलट ज्ञान कोई बिरला बूझे, और न बूझे कोई।
कह जण सींगा सुण भाई साधो चौरासी छुट जावे।

मुमुक्षु की दृष्टि से मोक्ष जीवात्मा का परमात्मा में मिलकर एकाकार हो जाना है। इस मिलन में भेद ज्ञान जरा भी नहीं रह जाता। सिंगाजी ने वेदान्त का अनुसरण करते हुए जल में डूबा हुआ घड़ा और घड़े में भरे हुये जल को एक ही बतलाया है। यह तथ्य अज्ञानी की समझ में नहीं आता—

सिंगा जल मां डुबी घाघरी जल घामर के माहीं।
आलम डुबी ब्रह्म में आंधे को सूजत नाहीं॥

कबीर के निम्न तथ्य और सिंगा के उपरोक्त कथन में कितनी समानता है—

जल में कुंभ कुंभ में जल है भीतर बाहर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना यही तथ कथौ गियानी॥

काव्य तत्व की दृष्टि से भी सिंगाजी की रचनाएँ साधारण कोटि की नहीं हैं। उनके आध्यात्मिक सिद्धान्तों के विवेचन, पाखंडों के उद्घाटन और उपदेशों की सृष्टि में जहाँ उनकी बुद्धि का चमत्कार दीख पड़ता है, वहाँ उनकी अनुभूतिपरक रचनाओं में उनकी भावना और कल्पना का सुन्दर समन्वय भी मिलता है। उनका बुद्धि तत्व तर्क प्रधान नहीं है इसलिए वह शुष्क और नीरस भी नहीं है। संतों का "सहज भाव" उनके जीवन के हर क्षेत्र में "सहज" वृत्ति लिए हुए है। यही सरलता उनकी महानता का द्योतक है। डा० जयराम मिश्र ने "सहज" के सम्बन्ध में लिखा है—

"सह जायते इतिभव्य: के आधार पर सहज उसे कहा जा सकता सकता है जो जन्म के साथ उत्पन्न हो। इसीलिए सहज की न तो कोई व्याख्या की जा सकती है और न इसे शब्दों द्वारा व्यक्त ही किया जा सकता है। यह स्वयं संवेद्य सत्ता है और अपने आप अनुभवगम्य है।[1]

१—श्री गुरु ग्रंथ साहिब में सहजावस्था— डा० जयराम मिश्र—
(सम्मेलन पत्रिका—भाग ४६, संख्या—२—पृ० ५९)

सिंगाजी के वर्णनों में यही सहज वृत्ति दिखलाई पड़ती है।

अलंकार :

काव्य में अलंकारों की मान्यता आदिकाल से चली आ रही है। संहिताओं और उपनिषदों में स्वाभाविक अलंकारों की योजना पाई जाती है। नाट्य शास्त्र में सबसे प्रथम उपमा, रूपक, दीपक और यमक नाम के नाट्यालंकारों का उल्लेख मिलता है।[1] अलंकार और काव्य के सम्बन्ध तथा स्वरूप का उल्लेख करते हुए लिखा है—

काव्यं ग्राह्य' अलंकारात सौंदर्य अलंकारः।

उनका मत है कि काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्मों को अलंकार कहते हैं।[2]

कबीर की तरह सिंगाजी ने अपने काव्य को साहित्यिक बनाने की कभी चेष्टा नहीं की। उनका प्रमुख उद्देश्य संसार का कल्याण करना था न कि काव्य की शास्त्रीय पद्धति को अपनाना। अतः सिंगाजी की रचनाएँ अलंकारों से बोझिल नहीं हैं। फिर भी उनमें अनेक स्थलों पर भावों की तीव्रता लाने एवं उसे ठीक तरह से समझाने के लिए सुन्दर रूपक और उपमाओं का प्रयोग किया गया है। इनकी उपमाएँ काफी चुस्त हैं—

वार नहीं नहीं कछु पारा, जयेसा धाम सुरीज मनभारा।
अलप लपटाण समजे कोई दास, जयेसी फुल म रहेती वास।

रूपक :

सिंगा मन मृग माया बाघुर, आनेक लकड़ी लाव।
सीर के उपर काल आहड़ी, नैहच्चे फंद म आव।

अन्य संत कवियों की भाँति सिंगाजी की "चेतावनी" और "उपदेशों" में उदाहरण अलंकार के साथ-साथ अन्योक्तियों की

१. नाट्य शास्त्र——१७।४३।
२. काव्यादर्श——२।१।

सुन्दर छटा दिखलाई पड़ती है। समासोक्ति पद्धति के कारण इनमें सर्वथा नवीनता और मौलिकता आ गई है—

१--पुस्पवास तो एक सो रहे, काहा चंपों काहा वेल।
वेल फुलेल काहा बसे, मीलकर भयो फुलेल॥

२—कूकर कयसें सुभाव डारो, काहे खु जनम आपण हारो।

३—सिंगा नौवत नगारा प मन धरे, करम न लिखिया ढोल।
पथर से परचा नहीं, करे हीरा का मोल॥

४—येक चाम का संकल पसारा, उँच नीच कहो कयेसा न्यारा।
लोही माँस सकल के माहीं, देख दुद कहुँ ते नाहीं॥

५—येक चाम का पुतला आनेक तरंगा, दीना चार नाचे कोई नहीं संगा
या जात पात कूल ते नाहीं, गई बूँद दरियाव के माहीं॥

६—हाये हाये करता सब दीन बीता, आंत काल कु जायेगा रीता।
हारक सौक करो मत कोई, करता करै सो नेहश्चै होई॥

अपनी उपमाओं में सिंगाजी जिन उपमानों को लाये हैं वे प्रायः परम्परानुगत नहीं हैं। वे सामान्य जीवन की वस्तुओं से संबंधित हैं। ब्रह्म निरूपण में विभावना अलंकार का अधिक सहारा लिया है—

नाम होवे तो बोले सही, अंधी दुणीया भर्म गई।
भर्म भर्म सकल सब डोले, मुख नहीं कैसे कर बोले॥

सिंगाजी की चेतावनी दो प्रकार की है। सर्वप्रथम उन्होंने बहु-जन-हिताय संसार को संबोधित करके लिखी है। दूसरे उन्होंने आत्म-उद्बोधन के लिए चेतावनी दी है। ऐसी चेतावनी में आत्मा को संबोधित किया है।

संत कबीर की भाँति सिंगाजी ने अपने दार्शनिक सिद्धांत और बिचार पद्धति को समझाने के लिए अपने पदों में "प्रतीक" पद्धति को अपनाया है। डा० गोविन्द त्रिगुणायत ने कबीर के प्रमुख चार प्रतीकों की चर्चा की है।[१]

१—कबीर की विचारधारा—गोविन्द त्रिगुणायत पृष्ठ—३९२।

सांकेतिक प्रतीक

सिंगाजी ने बहुत से प्रचलित सांकेतिक प्रतीकों को अपनाया है। गगनमंडल से ब्रह्म रंध्र का, बंकनाल से इड़ा का अर्थ लिया है—

स्वर्ग बांध्या सिंगाजी झोपड़ा कलु म करी रे अधवार ॥टेक॥
बिना हाथ सी घर गढ़्या, नहीं लगाया सुतार।
गगन में दोर लगावइया, दीपक लगाया अकास ॥[१]

और—

चढ़ी जाओ हम सीधी धारा रे हंसा,
बंकनाल उलटी कद चाले मेंढक रवि ससि धारा।

पारिभाषिक प्रतीक

इड़ा नाड़ी के लिए गंगा, पिंगला के लिए यमुना तथा सुषुम्ना के लिए सरस्वती नाम के पारिभाषिक प्रतीक निश्चित किये हैं—

आगमघाट तिरवेणी तीरथ चकासी ध्यान लगावो रे।
गंगा, यमुना, सरसती रे, उ तिरवेणी म नहाओ रे।

संख्यामूलक प्रतीक

सिद्धों और नाम पंथियों की भांति सिंगाजी ने अनेक संख्या-वाचक शब्दों का प्रयोग प्रतीकों के रूप में किया है। यथा—

दस दरवाजा प्रगट भई दूजे तीन ख कुलुप लगाई।
उ तीनई म उपर को खोजो अरे गुरु वही सबद है सार॥
सोल सुहागण सुन्दरि नव बैठी कुवांरी रे।
उनसी हरीजन तू दूर रहे तिनख सौद करारे॥

सिंगाजी की कविता में सामाजिक-विचार

सिंगाजी के भजनों को पढ़ने से उनमें हमें तत्कालीन समाज की स्थिति के प्रति एक गहरा क्षोभ दिखलाई पड़ता है। समाज में व्याप्त अन्धविश्वास और रूढ़िवाद के कारण वर्ण-भेद और ऊँच-नीच की

१—भजन।

भावनाएँ प्रबल थीं। उन्होंने वेद के पठन-पाठन को व्यर्थ सिद्ध किया।[१] कर्म की महत्ता को स्पष्ट करते हुए ऊँच-नीच के भेद को मिटाने का प्रयास किया।[२] उनका मत था कि मनुष्य जन्म से ऊँच या नीच नहीं होता, उसके कर्म उसे ऊँचा या नीचा बनाते हैं।

उस समय धर्म का वास्तविक स्वरूप लोप हो रहा था और अनेक विकृतियों के कारण समाज पतन की पराकाष्ठा की ओर अग्रसर हो रहा था। सिंगाजी ने विविध जटिलताओं का वर्णन करते हुए हिन्दू और मुसलमान धर्मों के आडम्बर, पाखंड और अंध-विश्वासों के प्रति कठोर व्यंग्य किये हैं।[३] रैदास की तरह उन्होंने जाति-पाँति के झगड़े को भी समाप्त करने का संदेश दिया। उन्होंने तो केवल संसार से लिंग-भेद को हटाकर मानवता का संदेश दिया :—

नर-नारी का येकई बाप, काहे को हिरदे लाओ पाप।

सिंगाजी का "सुधारवाद" उनके भजनों और दोहों में झलकता है। वे जीवन के नवीन मार्ग को अपनाते हुए प्राचीन से संबंध मिटाना नहीं चाहते थे। उनका सुधारवाद मध्य-मार्ग की आधार-भूमि पर खड़ा हुआ है। पाश्चात्य साहित्यालोचक अबरक्रांबी का निम्न कथन सिंगाजी जैसे संत कवियों के काव्य की रचनात्मकता पर पूर्ण प्रकाश डालता है :—

"काव्य का तत्व शुद्ध अनुभूति है, जो हमारे राग-प्रधान जीवन में ही नहीं प्रत्युत विचार-प्रधान जीवन में भी सम्भव है। विज्ञान और दर्शन के सत्य भी हमारे आनंद के विषय बन सकते हैं।"[४]

अतः काव्य की रसात्मकता हमारे हृदय के किसी भी भाव की अभिव्यक्ति में होती है।

१—"वृद्ध-उपदेश" २—वही। ३—"वृद्ध-उपदेश"।

4—The master of literature is pure experience which is possible not only in emotional life but also in intellectual life.. Truth of science and Philosophy may also be enjoyed.

—Principles of Literary Criticism—L. Aberorombie.

संत सिंगाजी की वाणियों की निमाड़ी भाषा का व्याकरण की दृष्टि से अध्ययन

"निमाड़ी" का स्वरूप :

"निमाड़ी" वस्तुत: निमाड़ जिले की लोक-भाषा है। निमाड़ डिस्ट्रिक्ट गजेटियर में इसे राजस्थानी हिन्दी की एक बोली कहा है। यह निमाड़ जिले की ५० प्रतिशत जनता द्वारा बोली जाती है।[1] डा० कृष्णलाल "हंस"[2] ने निमाड़ी को मध्य प्रदेश के उत्तर-पश्चिम और मध्य भारत के दक्षिण-पश्चिम भू-भाग से निर्मित एक ६४३५ वर्गमील के क्षेत्रफल में स्थित भू-प्रदेश की लोक-भाषा कहा है। यह भाग २१.४ और २१.५ उत्तर अक्षांश और ७४.४ और ७७.३ पूर्व देशांश के बीच स्थित है। यह क्षेत्र मध्य प्रदेशीय निमाड़ और मध्य-भारतीय निमाड़ (अब पूर्वी और पश्चिमी निमाड़) मिलकर बना है। सन् १९५१ की जन-गणना के अनुसार निमाड़ी भाषियों की कुल संख्या २,६२,२६१ है।

निमाड़ के उत्तर में मालवी, दक्षिण में मराठी और खानदेशी, पूर्व में निमाड़ी प्रभावित मालवी और पश्चिम में भीली-भाषी क्षेत्र है।

1—The prevalling language is a dialect of Rajasthani Hindi named Nimari after the locality. This is spoken by more than 50% of the population—

(C. P. District Gazetteers, Nimar District,
Edited by R. V. Russel, I. C. S. P. 54.)

२. रविशंकर शुक्ल अभिनंदन ग्रंथ—(मध्य प्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन)—'निमाड़ी बोली' 'कृष्णलाल 'हंस' पृष्ठ १५९।

निमाड़ की इस स्थिति का इस लोक-भाषा के स्वरूप-निर्माण पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है।

ग्रियर्सन महोदय ने राजस्थानी की विशेषताएँ दर्शाते हुए निमाड़ी को "दक्षिणी राजस्थानी" कहा है और इसे राजस्थानी की एक लोक-भाषा निर्धारित किया है। अभी तक इस लोक-भाषा को भाषा-विज्ञानी राजस्थानी के अंतर्गत ही स्थान देते जा रहे हैं और इस पर नवीन दृष्टि से कोई विचार नहीं किया है। प्रसिद्ध भाषा-शास्त्री डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने अपने "राजस्थानी" पर दिए गए एक भाषण में निमाड़ी को राजस्थानी की बोली होने में संदेह प्रकट कर इस विषय पर तनिक सूक्ष्मता से विचार करने को प्रेरित किया है।

ग्रियर्सन महोदय ने भी अपने ग्रंथ में निमाड़ी के संबंध में एक से अधिक मत व्यक्त किए हैं और वे किसी एक निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाये हैं। इसलिए निमाड़ी के स्वरूप-निर्माण के सम्बन्ध में शंकाएँ पैदा होना स्वाभाविक है। उन्होंने एक स्थल पर निमाड़ी को राजस्थानी का दक्षिणी रूप कहा है किंतु निमाड़ी पर पृथक रूप से विचार करते समय मालवी को राजस्थानी की बोली कहकर निमाड़ी को मालवी का ही एक रूप बतलाया है। फिर आगे चलकर निमाड़ी की अपनी विशेषताओं के कारण इसे मालवी से पृथक एक स्वतंत्र लोक-भाषा ही मानना स्वीकार किया है।

ग्रियर्सन महोदय ने अपने इसी ग्रंथ के प्रथम खंड में निमाड़ी के सम्बन्ध में बतलाया है :—

'उत्तरी निमाड़ और उससे लगे हुए मध्य भारत के भोपाल राज्य में मालवी, खानदेशी और भीली से इस प्रकार मिल गई है कि वह एक नई बोली का ही रूप धारण कर निमाड़ी कहलाती है, जिसकी अपनी विशेषताएँ हैं। जिस अर्थ में मेवाड़ी, जयपुरी, मेवाती और मालवी को वास्तविक रूप में राजस्थानी की एक बोली कहा जा

सकता है उस अर्थ में निमाड़ी कठिनाई से एक बोली कही जा सकती है"[1]

फोर्सिथ का मत है कि निमाड़ी मालवा और नर्मदा के उत्तर में बोली जाने वाली सामान्य हिन्दी के साथ मराठी और फारसी के शब्दों का एक मिश्रण है।[2] दूसरी ओर बाबू श्यामसुन्दरदास का मत है कि निमाड़ी कोई स्वतंत्र बोली नहीं है। वह मुख्यत: मालवी के आधार पर बनी हुई एक संकर भाषा है।

हमें फोर्सिथ और बाबू श्यामसुन्दरदास के मत युक्तिसंगत प्रतीत होते हैं। निमाड़ी में अनेक भाषाओं के शब्दों का मिश्रण है और उसका मालवी से अधिक साम्य भी है। इसलिये इसे मालवी के अन्तर्गत स्थान देना चाहिये। निमाड़ी में अनेक भाषाओं के शब्दों का मिश्रण देखकर तथा उसका मालवी से अधिक साम्य पाकर उसे मालवी के आधार पर बनी एक संकर लोकभाषा मानने में कोई आपत्ति नहीं जान पड़ती। किंतु हम उसे ग्रियर्सन महोदय के अनुसार राजस्थानी भाषा-परिवार में स्थान न देकर पश्चिमी हिन्दी की एक भिन्न लोक-भाषा मालवी के के अंतर्गत स्थान देना उचित समझते हैं।

संत सिंगाजी के पूर्ववर्ती निमाड़ जिले के संत ब्रह्मगीर महाराज के पदों में कबीर की विचारधारा दिखलाई पड़ती है। भाषा की दृष्टि से इनकी रचनाओं में खड़ी बोली का प्राधान्य है। ब्रज-भाषा से प्रभावित शब्दों जैसे—लीना, कीना आदि के दर्शन भी होते हैं।

संत सिंगाजी के गुरु मनरंगगीर और शिष्य दलुदास के पदों की निमाड़ी भाषा पर सामान्य हिंदी का प्रभाव क्रमश: होता गया और

1—Linguistic Survey of India. Vol. I, Part II. P. 172.
G. A. Grierson.

2—Forsyth—Settlement Report of Central Provinces, 1865.
—Para 1.

उसमें अधिकाधिक निमाड़ीपन आता गया। इस निमाड़ीपन में भी खड़ी बोली, व्रजभाषा और उर्दू के अनेक रूपों की झाँकी दिखलाई पड़ती है। संत सिंगाजी के पदों की निमाड़ी भाषा में निमाड़ीपन के साथ-साथ व्रजभाषा, खड़ी बोली और उर्दू के प्रचलित रूपों की प्रधानता है।

निमाड़ी के सम्बंध में जानकारी देते हुए, जार्ज ग्रियर्सन महोदय ने "लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया" में बतलाया है कि निमाड़ी, राजस्थानी की एक बोली है जो कि निमावर क्षेत्र के निमाड़ जिले में, बुरहानपुर तहसील को छोड़कर; जो कि खानदेश क्षेत्र में पड़ता है, बोली जाती है।[1]

इम्पीरियल गजेटियर आफ इंडिया में निमाड़ी को निमाड़ जिले की स्थानीय भाषा कहा गया है। निमाड़ी राजपूताने की मालवी से बहुत मिलती जुलती भाषा है और इस पर विशेष रूप से मराठी का प्रभाव दिखलाई पड़ता है।[2] ग्रियर्सन महोदय ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि निमाड़ी राजस्थान की मालवी बोली का एक रूप है। किन्तु इसकी अपनी कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जिसके कारण इसका

1—Nimadi is the dialect of Rajasthani which is spoken in the tract known as Nimawar. Nimawar consists of the Nimar District of the Central provinces (Except the Burhanpur Tahsil, a portion of Khandesh Plain).

—Linguistic Survey of India. Vol. IX, Part II.
By G.A. Grierson. p.60.

2—A special local speech, Nimari, akin to the Malvi dialect of Rajasthan, but infuienced by Marathi, which is spoken by the majority of the rural inhabitants of the north of the District.

—Imperial Gazetteer of India. Vol. XIX. p. 110.

पृथक रूप से अध्ययन होना चाहिए।[1] इनके मतानुसार निमाड़ी पर निमाड़ के दक्षिण की खानदेशी मराठी के साथ साथ पड़ोसी भाषा गुजराती और भीली बोली का विशेष प्रभाव पड़ा है।

व्याकरणिक रूप

किसी भी भाषा अथवा बोली के व्याकरणिक रूप को समझे बिना उसका अध्ययन अपूर्ण समझा जाता है। किसी भी भाषा के संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया के रूप, कारक-रचना और काल-रचना आदि पर विचार करने के पश्चात् ही उसका एक व्याकरणिक रूप स्थिर किया जा सकता है।

निमाड़ी के व्याकरणिक रूप पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ ग्रियर्सन महोदय ने अपने "लिंग्विस्टिक सर्वे" में दी हैं। यद्यपि इन टिप्पणियों से संतोष नहीं होता तथापि इन पर किंचित विचार करना आवश्यक है—

(१) उनका मत है कि निमाड़ी में उच्चारण की उसकी अपनी एक प्रधान विशेषता है। हिन्दी के 'ए' अथवा 'ये' का उच्चारण 'अ' के रूप में ही किया जाता है, जैसे—

आगे	—	आग
जाने	—	जान
खाने	—	खाण
लाने	—	लावण

(२) निमाड़ी में अनुनासिक ध्वनि प्रायः नहीं पाई जाती, जैसे—

दांत	—	दात

1—Nimadi is really a form of the Malvi dialect of Rajasthan, but it has such marked peculiarties that it must be considered seperately.

—Linguistic Survey of India.

—By G.A. Grierson. p.60.

कांच	—	काच
आंच	—	आच

(३) ल और न वर्ण — परस्पर विपर्यय—

नीम	—	लीम

ल और न की इस विशेषता को नियम के रूप में नहीं माना ज सकता। ऐसा बहुत कम उदाहरणों में होता है।

(४) वर्तमानकालिक क्रिया 'छे' (है) का रूप एक वचन औ बहुवचन में नहीं बदलता।

ग्रियर्सन महोदय के उपरोक्त विवेचन के पश्चात् अब हम निमाड़ी का व्याकरण की दृष्टि से अध्ययन प्रस्तुत करेंगे—

ध्वनि और ध्वनि-प्रक्रिया

इसकी प्रधान विशेषता यह है कि मालवी और खानदेशी की तरह अधिकांशत: उत्तरवर्ती व्यंजन वर्ण, महाप्राण से अल्पप्राण रूप में उच्चरित होता है, यथा—

हाथ	—	हात
भूख	—	भूक
साथ	—	सात

'च' अपने शुद्ध रूप में ही बोला जाता है किन्तु क्रियाओं के साथ वह 'ज' के रूप में उच्चरित होता है, यथा—

जावांज	—	जाता हूँ
खावांज	—	खाता हूँ

श, ष और स के उच्चारण भेद नहीं हैं। तीनों का भेद बहुधा दन्त्य 'स' के द्वारा ही हो जाता है, यथा—

शक्कर	—	सक्कर
शर्त	—	सर्त
दृष्टि	—	द्रस्टि
शोर	—	सोर

ल का उच्चारण मराठी के 'ल' जैसा होता है।

स्वराघात—शब्द के मध्य में अपूर्णोच्चरित 'अ' आता है, यथा—

घर, चलज, मारज, करज और रङज इत्यादि।

अग्रागम—शब्द के प्रारंभ में स्वर का आगम।

अस्नान	—	स्नान
अस्तुति	—	स्तुति
इस्त्री	—	स्त्री

ह्रस्व स्वर वर्णों का दीर्घत्व—

अमरापुर	—	अमरपुर
जलामई	—	जलमयी
धवलागीर	—	धवलगिरी

स्वर-विपर्यय—

खुशबो	—	खुशबू
सेंदूर	—	सिंदूर
सूरीज	—	सूरज

संयुक्त-व्यंजन—

वर्णलोप :

कलु	—	कलियुग
आंतजामी	—	अंतर्यामी

समीकरण :

पुंनेव	—	पूर्णिमा
अनंद	—	आनंद

क्ष का छ :

दीचा	—	दीछा

असंयुक्त-व्यंजन—

'ण' का 'न' में परिणमन—

पूर्ण	—	पूरन
जाणा	—	जाना

'श' का 'स'—

बिस्वास	—	विश्वास

रेफ का अन्तः समावेश—

सराप	—	श्राप
नरक	—	नर्क
ध्रिग	—	धिक्

अल्पप्राण का महाप्राण—

अविनासी	—	अविनाशी
भरथ	—	भरत

'ह' का अन्य महाप्राणों में परिणमन—

सिंघ	—	सिंह
संघारे	—	संहारे

विषमीकरण—

मदत	—	मदद

मिथ्यासादृश्य—

जग्य	—	यज्ञ
पुरातम	—	पुरातन

शब्दाकृति और वाक्यविन्यास

संज्ञा

निमाड़ी में शब्दाकृति और वाक्य-विन्यास की विशेषता यह है कि इस पर अन्य बोलियों और भाषाओं का प्रभाव पड़ा है। इन इतर बोलियों और भाषाओं में मालवी, राजस्थानी, मराठी (खानदेशी), गुजराती तथा भीली बोली उल्लेखनीय है। अब तो खड़ी बोली के अनेक तद्भव रूप भी देखने को मिलते हैं।

संज्ञाओं के दो लिंग पाये जाते हैं। पुलिंग और स्त्रीलिंग। संज्ञा के (पुलिंग) ऐसे रूप जहाँ खड़ी बोली के तद्भव शब्द मिलते हैं वहाँ मालवी और निमाड़ी में कुछ परिवर्तन दिखलाई पड़ते हैं—

एकवचन :— आ का ओ

घोड़ा — घोड़ो, (एक घोड़ो छै)

बेटा — बेटो

बहुवचन :— ए का आ

घोड़े — घोड़ा, (दस घोड़ा छै)

बेटे — बेटा

संज्ञा के (स्त्रीलिंग) और कहीं-कहीं पुर्लिंग में प्राय: 'न' लगाकर बहुवचन बनाया जाता है, यथा—

एकवचन		बहुवचन
बेटी	—	बेटी न
घोड़ी	—	घोड़ी न

संज्ञा के कुछ शब्द भेद जो हिन्दी और मालवी से समानता और भिन्नता रखते हैं। निम्न उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जावेगी—

हिन्दी	मालवी	निमाड़ी
पैर	पग	पांय
मुँह	मूंढो	मूंढो
बहिन	बेन	बईण
बैल	बेल	बईल

कारक-रचना

	कारक	विभक्तियाँ	उदाहरण
१	कर्ता	न	सिगाजी न बाघ मार्यो।
२	कर्म	ख	गुरु न सिंगाजी ख बुलायो।
३	करण	सी, सु	राम न हात सी आम तोड़्यो।

४	संप्रदान	ख, कालेण	इ जाम राम का लेण छै।
५	अपादान	सी	सिंगाजी पीपल्या सी चल्या।
६	सम्बन्ध	का, के, की,	सिंगाजीका भजन।
७	अधिकरण	म, उप्पर,	सेर जंगल म रहेज।
८	संबोधन	हो, अजी, अरे,	अरे सिंगाजी की जय बोलो।

पुंलिंग संज्ञाएँ

अकारांत—

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	बालक न	बालक न न
कर्म	बालक ख	बालक न ख

आकारान्त—

कर्ता	छोरा न	छोरा न न
कर्म	छोरा ख	छोरा न ख

इ और ईकारान्त—

इ और ई में कोई विशेष अन्तर नहीं पाया जाता।

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	बेटी न	बेटी न न
कर्म	बेटी ख	बेटी न ख

विशेषण

सामान्यत: विशेषणों के दो लिंग हैं—पुलिंग और स्त्रीलिंग। विशेषण के निम्नलिखित भेद हैं—

१—गुणवाचक। २—परिमाणवाचक। ३—संख्यावाचक। ४—सार्वनामिक (इसकी चर्चा सर्वनाम के साथ की जायेगी)।

गुणवाचक—

असो	(ऐसा)
कसो	(कैसा)
जसा	(जैसा)

परिमाणवाचक—

कंवं	(कब)
अंवं	(अब)

संख्यावाचक—

गणनात्मक :

(क) एक, दुइ, तीन, चार, पाँच, छव, सात, आट, नव, दस, ग्यार, बार, तेर, चौद, पंद्र, सोल, सत्र, अठार, वन्नीस, वीस, एक्कीस, बावीस, तेवीस, चौवीस, पच्चीस, ओग-न्तीस, तैंतीस, एकोत्तर, वहोत्तर आदि।

(ख) एकादस, द्वादस, त्रयोदस, सहस्र, जैसे तत्सम शब्दों का व्यवहार सिंगाजी के पदों में मिलता है।

क्रमसूचक :

पहिलो, दुजो, तीजो, चौथो, पांचवां, छठवों आदि।

सर्वनाम

सर्वनाम के प्रमुख रूप—

उत्तम पुरुष—

हउं	—	मैं
म	—	मुझे
मख	—	मुझको
म्हारो	—	मेरा
हाम	—	हम (मैं)
हमारो	—	हमारा (मेरा)
अपण	—	हम (सब)

अपणो	—	हमारा (सबका)
अपुण न	—	हमारे द्वारा

मध्यम पुरुष—

तू	—	तू
तून	—	तूने
तुमख	—	तुमको
थारो	—	तुम्हारो
इ	—	यह
इन्न	—	इन्होंने

अन्य पुरुष—

उ या वो	—	वह
उन्न	—	उन्होंने
वा या वो	—	उन्होंने, वे
जेको	—	जिसका

प्रश्नबोधक सर्वनाम—

कुन या कुण	—	कौन
कुनको या कुणको	—	किसका
काई	—	क्या

अनिश्चयबोधक सर्वनाम—

कोई	—	कोई भी
कई	—	कुछ

सार्वनामिक विशेषण—

संख्यावाचक—

केतोक या केत्तो	—	कितना

सार्वनामिक विशेषणों का लिंग उनके विशेष्य के अनुसार होता है, यथा—ऐसी (स्त्रीलिंग) कालई (काली)

क्रियाएँ :

गुजराती और भीली बोली का प्रभाव निमाड़ी की क्रिया पर लक्षित होता है। सहायक क्रिया के रूप में "छे" = "है" का प्रयोग किया जाता है। "छे" का रूप एक वचन और बहुवचन में नहीं बदलता।

एकवचन	बहुवचन
घर म एक मनुस छै।	घर म दस मनुस छै।
(घर में एक मनुष्य है)	(घर में दस मनुष्य हैं)

धातु—

(१) व्यंजनांत (२) स्वरान्त हैं, और वे अपनी क्रियार्थक संज्ञा में से "ना" हटाकर बनाये गये हैं।

व्यंजनांत धातु :

कर	—	करना से
मर	—	मरना से

स्वरान्त धातु —

सो	—	सोना से
पी	—	पीना से
जा	—	जाना से

"ता" वाले अनेक रूप खड़ी बोली की तरह पाये जाते हैं—

एकवचन—"अतो,"	बहुवचन—"अता,"
डरतो	डरता
बोलतो	बोलता
लड़तो	लड़ता

काल :

काल	सामान्य	अपूर्ण	पूर्ण
वर्तमान	उ चलज (वह चलता है)	उ चली रह्योज (वह चल रहा है)	उ चल्योज (वह चला है)
भूत	उ चल्यो (वह चला)	उ चली रह्यो थो (वह चल रहा था)	—
भविष्य	उ चलगा (वह चलेगा)	—	

कृदन्त :

वर्तमान सूचक कृदन्त—

(१) कभी-कभी वर्तमान कृदन्त से ही पूर्ण क्रिया का बोध होता है—

काई ढूंढज — क्या खोजता है।
काई सूंघज — क्या सूँघता है।

(२) "ज" और "वज" या "यज"—स्वरान्त धातुओं में, यथा—

आवज — आता है।
जायज — जाता है।

अतीत सूचक कृदन्त

ओ — गयो
आ — लपटाणा

वर्तमानकाल—

प्रत्यय :

पुरुष	एकवचन	बहुवचन	आदरसूचक
उत्तम	उं, ऊं या उंज	—	—
मध्यम	अ,	ओ या व,	व, वो
अन्य	ओ, योज	आ, यांज,	आ, याज

उदाहरण—

उत्तम पुरुष—	खाउं, जाऊं	—	—
मध्यम पुरुष	कर	लाव	जाओ
अन्य पुरुष	चल्योज	चल्याज	चल्याज

भविष्यत्काल—

प्रत्यय :

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
उत्तम	गा, उंगा	गा, वांगा
मध्यम	गा, येगा	गा, वोगा
अन्य	गा, येगा	गा, येगा

उदाहरण—

उत्तम पुरुष—	हउं, जाउंगा	हम जावांगा
मध्यम पुरुष	तू जायेगा	तुम जावोगा
अन्य पुरुष	उ जायेगा	उ जायेगा

अन्य पुरुष में कर्ता का एकवचन और बहुवचन सूचक सर्वनाम प्राय: एक से रहते हैं।

भूतकाल—

प्रत्यय :

पुरुष	एकवचन	बहुवचन
उत्तम	यो	यो, या

मध्यम	यो	यो, या
अन्य	यो, या	यो, या

उदाहरण—

उत्तम पुरुष	मन खायो	हमन खायो, हम चल्या
मध्यम	तून खायो	तुमन न खायो, तुम चल्या
अन्य पुरुष	वन खायो,	उन्न खायो, ऊ चल्या
		उ चल्या

अब आदरसूचक शब्दों में खड़ी बोली के 'आप' का प्रयोग होने लगा है।

'हो' या 'ह' के निम्नलिखित रूप स्वतंत्र रूप में भी व्यवहृत होते हैं।

हुयो, हुता,

यथा—

उनका घर बालक हुयो।
सिंगाजी जाता हुता।

कर्म वाच्य

कभी कभी 'ओ' वाले रूपों का प्रयोग कर्म वाच्य अथवा वाच्यहीन के रूप में वर्तमान या विधेयात्मक कालों में किया जाता है—

यथा—

सिंगाजी सी पूछो संदेसो।

यहाँ पूछो-पूछा जाय

कुछ धातु ऐसे हैं जो तात्पर्य में कर्म वाच्य, पर व्यवहार में कर्तृ-वाच्य हैं—

सूझत—दिखाई देता है।

प्रेरणार्थक :

प्रेरणार्थक रूप का निर्माण धातु के अंतिम—आ अथवा—अ के

बाद प्रायः य (श्रुति) लगाकर और धातु के स्वर का ह्रस्वत्व करके होता है, यथा–

जीमाव्या (भोजन कराया) जीमना
नचाया (नाच कराया) नाचना

संयुक्त क्रियाएं

संयुक्त क्रियाओं का सामान्य प्रकार से सभी काल में प्रयोग किया जाता है, यथा—

कर् — करयो बताई
आ — धरी आयो
कर — करयो कर्म नहीं छूट
दे — कई दियो
पड् — समझ पड्यो
फिर — चलतो फिरयो
लाग् — बतावण लाग्यो
ले — विचारी लेवो
सक् — कई नी सकता
रह — जाई रह्या

क्रिया विशेषण :

क्रिया विशेषण के आधार निम्नलिखित पाये जाते हैं—

संज्ञा — जरा (थोड़ी देर के लिये)
सर्वनाम — कंवं (कब)

क्रिया विशेषणों के भेद :

समय बोधक — सौंदार (प्रातःकाल, सूर्योदय के पूर्व) सरीसंजा (शाम)
स्थान सूचक — भीत्तर (भीतर), पिछवाड़ (घर के पीछे)
थपमासूचक — दूणो (दुगुना) कहीं कहीं भवरी, (बहुरी)

प्रकार बोधक — ज़ोर सी (तेजी से) या (ताकत से)
कारण बोधक — मन म्हारो काई भूल्यो भरमणा माहिं
(मन भ्रम के अंधकार में क्यों पड़ा हुआ है)
परिमाण बोधक — अत्ति (अधिक)
स्वीकार या
अस्वीकार बोधक — हाव (हां), नईं (नहीं)
संयुक्त क्रिया विशेषण—काई कर्‌यो (क्या किया)

संयोजक अथवा समुच्चायक अव्यय :

प्रधान योजक

एवं, तथा, और, के रूप में—"न"

यथा—

इ हात लेवो न ऊ हात देवो (इस हाथ लो और उस हाथ दो)

कहीं कहीं "न" के रूप में—"न"

म्हारा भाई न मख मार्‌यो (मेरे भाई ने मुझे मारा)

विभाजक

नईं तो—(नहीं तो)

कि—तू आदमी आय कि राक्षस
(या के रूप में)

विरोध दर्शक

पर या पन (किन्तु, परंतु, लेकिन, मगर के रूप में)
हउं जातो पर मख बुखार आई गयो थो।
(मैं जाता किन्तु मुझे बुखार आ गया था)

परिणाम दर्शक

सो (इसलिये के अर्थ में)
चिट्ठी नई मिली सो फिकर लगेल छे।
(पत्र नहीं मिला सो चिन्ता लगी है)

संकेत वाचक

फिरी भी (फिर भी)

सम्बंध सूचक

अनेक सम्बंध सूचक अव्यय खड़ी बोली के तत्भव रूपों में पाये जाते हैं—

नजीक, (नजदीक) पाछ, (पीछे) सी, (से) लेण, (लिए) से, (द्वारा) सरीसा (सरीखा)

स्वरूप वाचक

को, का, की।

एकवचन	बहुवचन	स्त्रीलिंग
भाई को छोरो	भाई का छोरा	भाई की छोरी

निमाड़ी के सिंगाजी-कालीन और वर्तमान स्वरूप में अन्तर है। सोलहवीं शताब्दी की निमाड़ी का जो रूप सिंगाजी की वाणियों में मिलता है, उस पर ब्रजभाषा का स्पष्ट प्रभाव है। ब्रजभाषा-काव्य के व्यापक प्रभाव के कारण निमाड़ी के संत कवि ब्रह्मगीर, मनरंगगीर और सिंगाजी आदि की रचनाएँ अपने को इस प्रभाव से बचा नहीं सकी थीं। वर्तमान निमाड़ी में हमें मराठी, राजस्थानी, मालवी, भीली के साथ-साथ फारसी तथा उर्दू, गुजराती और अंग्रेजी भाषा के अपभ्रंश रूप भी मिलते हैं। इन विभिन्न भाषाओं के शब्दों का निमाड़ी में आने का कारण इन भाषा-भाषियों का निमाड़ी-भाषी क्षेत्र में आकर बस जाना है। कुछ उदाहरणों से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है—

मराठी—उंदरा (चूहा), डोला (आँख), सकाल (सबेरे), लेकरु (बच्चा), कालजी (चिन्ता) आदि।

राजस्थानी—छोरी, कुकड़ो (मुर्गा), थारो (तेरा) आदि।

मालवी—मंगत (भिखारी), चोखा (चांवल), तीस (प्यास), आदो (आधा), अड़गाप आदि।

भीली—सेंगलई (फल्ली), गगायज् (रोना), केल्यांग (कहाँ), वल्यांग (वहाँ),

फारसी तथा उर्दू—वक्सो, दीदार, उज्र, दरखास (दरखास्त), रोजी आदि।

गुजराती—आवसे, छे, जेवी, तमे, तारो (तेरा) आदि।

अंग्रेजी—कोरट (कोर्ट), इंजन, मोटर, ठेचण (स्टेशन), सेल अमीन आदि।

आरम्भ में सामान्य हिन्दी और निमाड़ी में केवल उच्चारण भेद से ही कुछ अन्तर था, किन्तु समय के साथ इसके स्वरूप में अन्तर होता गया। आज भी पूरे निमाड़ी भाषी भाग में निमाड़ी का एक रूप नहीं मिलता। स्थान भेद के साथ निमाड़ी का स्वरूप बदलता गया है। उत्तरी निमाड़ की भाषा मालवी और दक्षिणी निमाड़ की भाषा मराठी या खानदेशी से प्रभावित मिलेगी। भाषा वैसे ही परिवर्तन-शील होती है और निमाड़ी को लिखित रूप प्राप्त न होने के कारण लोकवाणी में उसका परिवर्तन और भी द्रुत गति से हुआ है। खंडवा से खरगोन (पूर्वी और पश्चिमी निमाड़ के दो केन्द्र स्थल) तक के मध्य भाग में निमाड़ी का एक 'स्टैण्डर्ड' रूप मिलता है।

सिंगाजी के पदों में कुछ ऐसे शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं जो गोरखनाथ कबीर और मीरा आदि की रचनाओं में पाये जाते हैं, यथा—

गोरखनाथ—उलीचो, निवाण, पावड़िया, कीधा आदि।

कबीर—गैव, दिसटी, जाणी आदि।

मीरा—साँझ, घणी, भागण, जिण, विण (बिना) आदि।

संत सिंगा-वचनावली

अर्थात्

संत सिंगाजी की वाणियों का संग्रह

श्री गणेशायेनमः । श्री सरस्वते मातायै नमः । श्री गुरु देवताये नमः ।

। श्री सिंगाजी महाराज का दृढ़ उपदेश प्रारम्भ ।

न कछू कूची न कछू ताला । सहेजू सहेज भया उजियाला ।
पडल खोल जडी ते वाही । आलम दुणिया दीसे माही । १ ।

बिना सूरज होय उझाव । बिना सीप जो मोती पाव ।
गरजि-गरजि बरसे मोती । झिलमिल-झिलमिल अनेक ज्योति । २ ।

नजरा देखे हात न आवे । ये ही मता विरला जन पावे ।
अलप लपटाण समजे कोई दास । जैसी फूल मु रहेते वास । ३ ।

पाव लपटाण हातु पहेरे । असा वारीक हये निराधारे ।
भाग पड़े जीहा जाये ते चाली । सांई बिना रत्ती न खाली । ४ ।

कपड़ा कुं छेद करता कुं नाहीं । ऐसा सघन घन पुरिया सब ठाई ।
सकल मु रहे सकल सु न्यारा । न वाद का सवद सु बी प्यारा । ५ ।

धुल मु रहे धुल नहीं लागे । ऐसो करता हये आगादे ।
आग में रहे आग नहीं लागे । ऐसा पावे तिसी का भागे । ६ ।

दरियाव का पाणी कैसे कर धकावे । खाली नहीं जो पहेरत जावे ।
हाले चाले जनम धरते नाहीं । उतपत परल होये सब माही । ७ ।

घाम छाया कभु न लागे । खुधा नहीं जो खाण कुं मागे ।
बोले चाले कभु ते नाहीं । आलप होकर बैठा ते माही । ८ ।

बीना नयेन सकल कुं देख। लख चवरासी जीव सकल कुं लेख।
बाला बूढ़ा कभु न होई। बीना नयेन देखे जनि कोई। ६।
पाणी पवन सु हये वो भीना। त्रषावंत कोईक जन पीना।
अंत्रगत सेवा स्वांग न लेई। ता पर सांई राजी ते होई। १०।

ऊपर भेख अन्दर नाहीं। भूला भेख फीर[1] सब ढाईं।
आगू पीछू दूजा मत लेखो। जैसा भाद व बरसे पुरण त्यों देखो। ११।

लख चवरासी जीव रहे जल माही। दाद फीराद[2] काहू की नाहीं।
उत्तपत्त परल सबको हो जावे। एक आजरा अंमर तू ही कहावे। १२।

जीव बुद्ध छांडी ब्रह्म बुद्ध जो आवे। तब तो सांई सरीखा हो जावे।
जे समजे तिसी का भाग। जैसी काष्ट में रहेते आग। १३।

जीमी न रहे न रहे आकास। जैसी फूल मा रहे ते बास।
हलका नहीं नहीं ते भार। नहीं तकिया नहीं आधार। १४।

अखंड हये कछू पोकला[3] नाहीं। जैसा माखन दूद के माहीं।
वार नहीं नहीं कहू पारा। जैसा घाम सुरीज मंझारा। १५।

फतर[4] माही सोना रूपा की धात। कसणी कसे तो आवे हात।
तिली में तेल जब कसिये। मन को कसिये तो थिर होये बसिये। १६।

येक आलख में सकल संसारा। जैसे वृक्ष बीज मंझारा।
ऐसे बात समजे मन माहीं। ते नर देह धरे कभु नाहीं। १७।

सींघा ऐसा कोई आपरुप हये। सब कोई करे वाकी आस।
नाम ठाम कछू नहीं वाके। कैसे सुमरे दास। १८।

सींघा[5]-मुख से बोले बारे रास। नयेन नासिका करी पछि पीवे।
कहेण सुणन कुं आनेक नाम हये। हुरदे येके नेहे। १६।

१—फिरे। २—फरियाद। ३—खोकला। ४—पत्थर।
५—सिंघा, सिंघाजी।

माटी की भीत पांडु को पोता । परदेशी जीव काहा का नाता ।
काहा था जीव काहा सुं आया[१] । पिछला भेद कोई न पाया । २० ।

इये ब्रह्म जीव कैसा कव्हाया । बस्ती छोड़ जंगल में आया ।
पंचतत्व त्रिगुण लगाया । मन त्रष्टना[१] सी जीव कव्हाया ।२१।

कह्या सबद माने न कोई । मरणा भला पण जीवणा न होई ।
घट-घट झूठ रही समाई । तामे साच रूंगावण[२] आई ।२२।

झूटा बोले नहीं सुकवावे । ताको जन्म सुवर को थावें ।
फथर पूजे तो फथर पावे । नीरजीव की संग जन्म गंवावे ।२३।

धीरजवान कोई धीरज धरे । ताके आसपास सांई ते फिरे ।
सांईं सेवक दोई कव्हावे । तब लग मुक्त कभु न आवे ।२४।

ऐसी गत समज कर जाणे । नदी दरियाव का पाणी कोण पहेचाणे ।
दूद माखन येक ते मेला । सांई सेवक कोई न देखा ।२५।

सकल स्वारथ कुटम का मेला । आंतकाल कुं जाये आकेला ।
हुकमी बंधा[३] हुकम कुं आण । पीछू देखु तो कछू लेण न देण ।२६।

मोह की कही ये भगनी और भाई । ये परदेसी जीव की कैसी सगाई ।
याके जात पात कुल ते नाहीं । गया बूँद दरियाव के माहीं ।२७।

मनुस-मनुस कहे सब कोई । देखूँ मनुस तो येक न होई ।
गयेश्री पवन माटी मा रहीये । मनुस नाम कोण सुं कहीये ।२८।

येक चाम का पुतला आनेक तरंगा । दीना चार नाचे कोई नहीं संगा ।
जन्म दीया पण नयेण न दीया । सकल फुतला आंधला कीया ।२९।

माटी का डेरा फेर माटी ते होई । गया पवन देख्या न कोई ।
मेरि-मेरि करता जन्म गमाया । खाण न पाया आमर न भया ।३०।

१—तृष्णा । २ – राई के बराबर । ३ – बंधा ।

कहे सींघा सहश्र[1] नाम और चौबीस मंत्र । ये ही बीध जन्म गमावे ।
आम छोड़ बबूल को सेवे । कहो आमीरस कैसे पीवे ।३१।

देहधारि सब जीव कहावे । आगु खयेच पीछु नी आवे ।
आवाज सुण कलपे मन माही । कोस[2] येक की खबर ते नाही ।३२।

द्वारक सोक ती रहित जो होई । तो आप सरीखा सहेजु सोई ।
वे बुध मन बुध ते नाही । भ्रमत फिरे सकल सब ठाई ।३३।

घर-घर फिरे भूख मरे । कहो वीनंती कोण सु करे ।
ऐसा जनम वहोर न लीजै । लख चवरासी दुख का हालु सहीजे ।३४।

नर देही भली ते नाही । नरक पीवास भरीते माही ।
नर देह धरी आक्रम[3] करे आपारा । ते कारण भुक्ते चवरासी
मंभरा ।३५।

सींघा मन मृग माया वाघुर । आनेक लकड़ी लाव ।
सिर के उपर काल आहड़ी । नेहश्चे फंद में आव ।३६।

आहंकार का मारया फिरे सब कोई । सांई भरोसा काहू कु न होई ।
ज्यों कछ कोपला लहे-लहे करे । वैसा दीना चार मन पहोरिख
धरै ।३७।

दगाबाज दगा कुं जाणे । जस[4] पाड़ तो कभुनी माने ।
आद आंत का मन बेपीर । कायेर घणा धरै न धीर ।।३८।

करे येक आराधे बीस । हायेराण होये तब वरे तेतीस[5] ।
जेता रोम तेती चिंता । मुख से बाचे भागवत गीता ।३९।

पढ़े[6] लिखे लोक सुणावे । जेजमान पंडत मुक्त नहीं पावे ।
लड़का फोले रंडी ते खावे । ताको मारे पंडत परदेसा जावे ।४०।

१—सहस्त्र । २—दो मील । ३—आर्म (बुरे कर्म) ।
४—यश । ५—तैंतीस करोड़ देवता । ६—पढ़े ।

लालुच के जोर वाचे पुराण। कहो कैसे मिले श्री भगवान।
ये तो सकल सब रोजगारा। जेजमान पंडत उतरे न पारा।४१।

सींघा दव लागी चिता की। जरी मुवा विन आग।
विंन मारथा सकल मुवा। वाच्या[1] तिनका भाग।४२।

सींघा मारथा बाण निरवाण का। मन लिया समजाये।
बाहेर घाव दीसे नहीं। साले हुरदा माहे।४३।

छूटा जाए देस सब कोई। पीछू खयेंचे सो सांचा होई।
नीच जात ऊच का लसण करे। ताकी सांई बाहा ते धरे।४४।

येक कमावे सारा मिली खाये। जेका करतव तेकी संग जावे।
कीया करम कभू न छूटे। जन्म-जन्म दुसमन हुई लूटे।४५।

वैरी कर देखे न आवे कीव[2]। मुरख नर तू केताक दिन जीव।
नाहेक जन्म कछू न आवतारा। गंधी[3] देही माखी का चारा।४६।

आविद्या तुम सकल परहारो। येक प्रीत सांई सु करो।
जनम मरण ते न्यारा रहे। लख चवरासी दुख काहा लु सहे।४७।

तिरथ वरत फेरा न कीजे। कै लख जीव मरे दोस आपणा सर लीजे।
भयरू भूत पूजो मत कोई। जीव मारे का लछण होई।४८।

आप मारे और आप संघारे। जीव हिंसा करे संसारे।
खोजो साधो ब्रह्म हम कैसा। जैसे आग्नि काष्ट प्रकासा।४९।

हये नजीक दूर ते नाही। जे जाणे ते मिले पल माही।
मन समजावो धोका नाही। चवरासी छाडी बसो ते माही।५०।

मन खुं धरिये तो तेज न करीये। ब्रह्म सुमरिये जम से न डरिये।
काहु का कह्या कभु न कीजे। नजर आपणी देखी लीजे।५१।

बहेकाया कोई मत बहेको। जे देखो ते हिरदे राखो।
लोग की बात सुणो मत कोई। जो कहु हाजीत मुक्त की होई।५२।

१—जो बचे। २—घृणा। ३—गंदी।

लोक तो सकल बेसीर फीर[1] । कायेर घणा धरे न धीर ।
अधीरज फीरे सकल संसारा । धीरज धरे तो उतरे पारा ।५३।

सिधा औगुण छाडी तुम गुण करो । सेवा करी लेवो देव ।
ये ही जनम तरण तारण का । पीछू दुख का नही छेव[4] ।५४।

रहो ईहां उहा करो निवासा । ताते छूटे साधो पिछली आसा ।
पाप पुण की मणी करो आसा । ताते आवो साधु प्रभ[5] निवासा ।५५।

गर्भवास नर्क हुये सारा । ताते तरसे साधु मन हामारा ।
जाप मंत्र मूट है सारी । याति साधु मुक्त है न्यारी । ५६ ।

तीरथ वरत जम की जाल । ताते भपे फीर फीर काल ।
देव देवी की भणी करो आसा । ताथि साधो रहो निरासा । ५७ ।

टीका टोला लावो मत कोई । ये सब साधु पाखंड होई ।
सहेज सहेजु प्रीत लगावो । ताथे तुम आगाउ जावो । ५८ ।

हिन्दु तुरक कवो मत कोई । येक बाप का बेटा दोई ।
बडी राहा जावो मत कोई । बडी राहा लुट्या नर सोई । ५६ ।

आलप महेल[6] तुम खोजो रे भाई । तेमा सहेजु आवो और सहेजु जाई ।
खिन मे वारा खिन में पारा । आवत जात न देखे संसारा । ६० ।

भरमा भरम करो मत कोई । आपणे नयेण देख लेवो दोई ।
कहे कहे इतवार[7] न आवे । विन देखे कैसे पतियावे । ६१ ।

पाणी कहे प्यास न जाई । भोजन कहे कहो कैसे आघाई[8] ।
आफिम कहे आमल नहीं आवे । ऐसे बिन पहेचाने मुक्त न पावे । ६२ ।

आग कहे आंच[9] नहीं लागे । कहो साधु थंड कैसी भागे ।
खाया बिना स्वाद न आवे । जैसे बिन पहेचाणे मन हात न आवे । ६३

१—फिरे । २—अंत । ३. गर्म । ४. गैल ।

प्रीत सीढ़ी तुम लावो रे भाई। ताते ततकाल मा पोहचो जाई।
कही भक्ति करो मत कोई। मुवा प्राणी निवास कहा होई। ६४।
येक वास का सकल पसारा। ऊँच नींच कहो कैसा न्यारा।
लोही[1] मास सकल के माही। देख दुद कहुते नाही। ६५।
मारग चले तो गांव में जाई। कहे कहे पोहचण न पाई।
कूकर कयेसे सुभाव डारो। काहे खु जनम आपणा हारो। ६६।
उपजे विनसे न सांई हमारा। और दीसे सब आक्रम का मारा।
देखे और साहेब हुरदे आवे। सोई बुध संत की कव्हावे। ६७।
मांता मन कु फेरे कोई। ते नर सहेजे पारांगत होई।
झूटा जाये तो होये संताप। ताते नइया जनम का पाप। ६८।
तीर्थ जाये और क्रोध न जाई। खेती यम ऐवी ऐवी लाई।
तीरथ गये और भूट न जाई। अंधि दुणिया दीवी बहेकाई। ६९।
तिर्थ गये और तृष्टना[2] न जाई। जान नफा छूटे ते नाही।
तिर्थ गये और चोरी न जाई। अंधि दुणिया भटका खाई। ७०।
सिंघा तैतीस क्रोड देवता। चवरासी सिद्ध पूछो जाये।
हास्ती सरीका खाईया। खाकस खाया न जाये। ७१।
देखी तो हारख लागे। बोलाड्या पर मौन।
पकड़ा तो हात न आवे। ऐसा साधु कोण। ७२।
सिंगा रचना देखु तो आवण दीसे। सब हुर देखा जोये।
हये हाजुर मालुम नहीं। ऐसा निराकार नीज सोये। ७३।
सिंघा निधरे दोये का पहेरणा। टुके दोये का खाणा।
दीवाणी दुणिया किसी की नाही। काहा देख भुलाना। ७४।
सिंघा माया मेरे नाथ की। कछू आपणो मत्त जाण।
खात देत खुटे नहीं। सब जुग भया हैराण। ७५

१. खून। २. तृष्णा।

नर नारी का येकै बाप। काहे को हिरदे लावो पाप।
पाप पुंन बंधन हये दोई। आंत काल तेरा ते तुई।७६।

काहां का बाप काहां की माई। कहो केताक दिन की सगाई।
ये सकल स्वारथ का मेला। आंतकाल तू जाय आकेला।७७।

मयेला देखे सकल संसारा। सुपेत होये तो उतरे पारा।
कपट दगा हामेसा करे। ते नर कहो कयेसे नीस्तरे।७८।

नदी बिना जो उतरे पारा। जनम की छूटे आरम्भारा।
सांई छाड़ दूसरे कुं ध्यावे। ते नर बुड़े पार नहीं पावे।७६।

घर मा चोर घर मा मूसा। कहो कोण को दीजे दोसा।
मुक्त राहा तुम खोजो रे भाई। काहु का आपण न आपण होई।८०।

वटाव दीसे सकल संसारा। सुपेत होये तो उतरे पारा।
जिवते जाणते उतरे पारा। स्वांगी विचारा करे आरम्भारा।८१।

सालगराम पूजो मत कोई। आंतकाल फथर ते होई।
चौवीस मंत्र ती मुक्त हये न्यारी। आंतकाल होयेगा भारी।८२।

संध्या तर्पण टीका लावे। भीतर का कपट कहो कोण छोडावे।
नाम लिये कहो काहा ते होई। नाम लिये तरे न कोई।८३।

बिना देखे कहे जो सांई। पिंड छूटे जीव काहां समाई।
जब लग आतम ग्यान न पावे। तब लग जनम आवर्धा[1] जाये।८४।

कहो दुखिया काहा सु ते आई। सोई ठोड कोई मोहे देवो बताई।
भेख लिये कहो काहाते होई। जब लग जीवन मुक्त न पाई।८५।

भरमी भरमी भेख ले सब कोई। जब लग सांई राजी न होई।
भरम विध सब जनम जाई। ते नर काहे कु फूले मन माही।८६।

सिंघा नौबत नगारा पर मन धरे। करम न लिखिया ढोल।
फथर से परचा नहीं। करे हीरा का मोल।८७।

---

१. व्यर्थ।

वोखद वोखद कहे सब कोई। वोखद सारी जड़ात ते होई।
वोखद खाय जीया न कोई। गहेलीं दुणिया सारी सारी ते होई।८८।

तिर्थ तिर्थ कहे सब कोई। तिर्थ सारा पाणी ते होई।
आस्नान कीये पाप न जाई। अंधि दुणिया फ़ेरा ते खाई।८९।

देव देव कहे सब कोई। देव सब फथर ते होई।
देव पूजे भला न होई। विनंती करी करी मुवा सब कोई।९०।

मनुस मनुस कहे सब कोई। मनुस सारी माटी ते होई।
ईनका भरोसा करो मत कोई। आंतकाल जोवणा न होई।९१।

माया माया कहे सब कोई। माया मूल फथर ते होई।
देखत कानी खाये न जाई। ता पर मन लटुरो थाई।९२।

अंनदेव अंनदेव कहे सब कोई। अंनदेव सारा चारा[1] ते होई।
जिभी स्वाद जोजक छारा। रात दीवस दुणिया होये बेजारा।९३।

मनुस मनुस कहे सब कोई। मनुस देखु सब माटी ते होई।
ऊपर रंग तुम देखो जाई। गया पवन मालुम न होई।९४।

निद्रा निद्रा कहे सब कोई। निद्रा नहीं सब संतोस ते होई।
मन सोहे सोहंग ब्रह्म जागे। कले कलपणा दाहा दीसा भागे।९५।

रात रात कहे सब कोई। रात आसमान की छाया ते होई।
घडी येक विश्राम पीछू वोई हावाल।
देखो साधो जलम धर्‍या का ख्याल।९६।

बादल बादल कहे सब कोई। बादल नहीं सब पाणी ते होई।
ये सकल पवन की खाप। गयेबी गाजे आपे आप।९७।

हिन्दु तुरक कहे सब कोई। मूल दोई का येक ते होई।
येक ही खोही येक ही भासा। येकै जीव और येके सासा।९८।

---

१. घास।

कपड़ा कपड़ा कहै सब कोई। कपड़ा सारा कपास ते होई।
घड़ी ग्रेक सांभा पीछू चिंधी[१]। लटुरी दुणिया होये ते अंधि।९९।

सिघा ये रचना सब कारवी। थीर न देखु कोये।
थिर हुये मेरा सांईया। आजरा आमर नीज सोये।१००।

देवी पूजे कहो कहा ते होई। देवी पूजे तरे न कोई।
पीसे पांवे आप ते खावे। सिंदूर लई लई भीत कु लगावे।१०१।

बेटा बेटी सु फल कर मांगे। कोण बधावे जब लागी ते आगे[२]।
तिर्थ गये कहा काहाते होई। तिर्थ गये तरे न कोई।१०२।

तिर्थ गये और गाट[३] को खावे। बुड़की दई दई जल मुं न्हावे।
चिंता व्यापे तब घर मो आवे। उपर धोवे पाप नही जावे।१०३।

मन कुं पाप देह कुं नाहीं। काहा जाये धोवे जल माही।
देह कुं पाप होये तो जल धोये जावे। मन का किया मन फल लै आवे।१०४।

पुंन किया कहो कहाते होई। पुंन किया तरे न कोई।
जिसका माल तिसी को दिया। आंधा ने बोझ आपणा सर लिया।१०५।

इसका किया कमु न होई। गुलाम पराया मनवा वे होई।
करता पुरस देवे सब खावे। टुकत फिरे चहु दीसा चाहे।१०६।

पुंन पुंन करी लोक बिजमाया। आंतकाल मुक्त नहीं पाया।
जाप जपे कहो काहा ते होई। जाप जपे तरिया न कोई।१०७।

हात पांव धोई सुमरण करे। मन कपूत धीरज न धरे।
सुमरण सारे निरफल जाई। देख्या बिना कैउं मीलते सांई।।१०८।

---

१. टुकड़े-टुकड़े।

२. आग।

३—घर से साथ में ले आया गया भोजन।

भेक लिये कहो काहा ते होई। भेख लिये तरे न कोई।
ऊपर भेक आंदर नाहीं। आंधा गया सब जोजक माही ।१०६।

नाम लिये कहो काहा ते होई। नाम लिये तरे न कोई।
नाम-नाम कहे सब कोई। नाम बारे रास ती न्यारा होई ।११०।

पुकार-पुकार मुवा आजान। आंतकाल न पोंहचे ठीकाण।
नाम होये तो बोले सही। आंधि दुणियां भर्म गई ।१११।

भर्म-भर्म सकल सब डोले। मुख नहीं कैसे कर बोले।
राम कहे होये कछू नाहीं। देखो संतो हिरदा माहीं ।११२।

तपस्या किये काहा ते होई। तपस्या किये तरे न कोई।
भगवा किया जटा बढ़ाई। मन की कलपना कमु न आई ।११३।

ऊपर भेक अंदर नाहीं। कमु नजर देख्या नहीं सांई।
गायेत्री मंत्र जपे कहाते होई। गायेत्री मंत्र जपे तरे न कोई ।११४।

मेहेरी नाम जो कारज न सरे। करता पुरस कु सेवे तो पिंड उद्धारे।
गायेत्री छोड़ी घुरा कमावे। दिन उगे ढेकू घर जावे ।११५।

कपाल टीका खांदे दोरा[१]। आंतकाल सांई का चोरा।
जग[२] कीये कहो काहा ते होई। जग किया तरे न कोई ।११६।

जग कीया जगन्नाथ न जाना। सांई का मन कमु न माना।
सोभा करी लोक जीमाया। आंतकाल आपजस[३] ते आया ।११७।

कोई गया जीभि[४] कोई गया रीता। देखो साधु जग का फजीता।
गिन्यात[५] जीमाये कहो काहाते होई। गिन्यात जिमाये तरे न कोई ।११८।

१—जनेऊ। २—यज्ञ। ३—अपयश।
४—खाकर। ५—जाति भोज।

गिन्यात जीभावें बकरा लावे । सोही दोस आपणा सिर आवे।
सारी खट पट सुख कहु नाही। जब लेग दया न उपजे मन
माही ।११६।

सिधा कोई खाये मास और दारू। कोई खाये भात और रोटी।
आंतकाल मुक्त न पावे। ये कमाई सब खोटी ।१२०।

माया हुये कहो काहाते होई । माया होवे तरे न कोई।
मेरी-मेरी करता जनम गमाया। करता पुरस हिरदे नहीं आया ।१२१।

रात दीवस बहुतक धंदा। सूजे नहीं भये-सा आंधा।
खाण ने पाया स्वाद न लिया। आंतकाल जनम कूकर का दिया
।१२२।

वेद पढ़े कहो काहा ते होई। वेद पढ़े तरे न कोई।
तले[1] कागज ऊपर स्याही। आंधा रे पंडत देखे न माही।१२३।

आप कहे सुणावे लोग। कयसे वुझे दुरदा की आग।
लालुच झूट कभु न जाई। ये सकल सब झूट ते होई।१२४।

ये सकल सब झूट ते होई। ये राहा जावो मत कोई।
सकल छांड़ येक कुं ध्यावो। तो आपणी मुक्त आप मा पावो ।१२५।

देखी सेवा करो सब कोई। आण देखी सेवा झूट ते होई।
सांई सेवो करो आरदास[2]। और सकल सब झूटी आस।१२६।

सिधा तरण तारण देही सही। पीछू दुख का छेत्र तें नाही।
नर देही मा पहेणे कोई। तो चवरासी छूटे पल में साई।१२७।

काहा वखाणूं रूप निसाणी। जेउ दरियाव में झलके पाणी।
सुणो कोई आनभव[3] की वाणी। तेज अहंकार जायेगा पाणी।१२८।

खाली नहीं सब दुर पूरा। आसमान बाजे आनहद तुरा।
बीज चमके नयेण झंझरा। बिन बादल बरसे दो धारा।१२९।

१—नीचे। २—प्रार्थना, विनय। ३—अनुभव।

खोजो साधु आपके माही । जेउ दरपण मी दीसे भाई ।
दूर नही आस ते पासा ।[1] जयेसी फूल में रहेती वासा ।१३०।

सिंघा सुरीज येक है । जीहा तीहा निज राम ।
आयेसा सांई येक है । जीहा तीहा निज राम ।१३१।

हाये-हाये करता सब दिन बीता । आंतकाल कुं जायगा रीता ।
हारक शोक करो मत कोई । करता करे सो नेश्चे होई ।१३२।

बहेकाया फिरे सकल संसारा । जे पहेचाण ते उतरे पारा ।
आपणे स्वारथ फिरे सब कोई । साई राजी नहीं भला केउ होई ।१३३।

नारी पुरस कहे सब कोई । बोलन हारा येक ते होई ।
येक मास और येके खूला[2] । मरद देखी मरद भूला ।१३४।

सिंघा येक पुरस की रचना सारी । किया नान्ह विस्तार ।
ग्यान द्रष्टि देखिया । दूजा नहीं सिरजणहार ।१३५।

प्राण भीतर तन है सारा । प्राण आमर तन सब छारा ।
बीज भीतर बड़ है सारा । बीज आमर बड़ सब छारा ।१३६।

बीज भीतर पीपल है सारा । बीज आमर पीपल सब छारा ।
गोठलो भीतर आम है सारा । गोठली आमर आम सब छारा ।१३७।

बीज भीतर तुंबा हये सारा । बीज आमर तुंबा सब छारा ।
काकड़ा भीतर कपास है सारा । काकड़ा आमर कपास सब छारा ।
।१३८।

सिंघा ऐसे सांई में लोग हये । सांई आमर दुनीया थीर नाहे ।
कई जुग परले हो गया । सांई उपजे बीणसे नाहे ।१३९।

बाहेर भरमी मरो मत कोई । पहेचाणो साधो आपमा होइ ।
देखो, कोई ग्यान हामारा । जीस मा डुब्या सकल संसारा । १४० ।

१—आसपास । २—पिंड ।

आप रूप देखो कोई देस हामारा। उस जगा कछु सुरज नहीं तारा।
चार वेद नही चारई खाणी। उस देस कछू पवन नहीं पाणी। १४१।
भूक प्यास लोभ नही आस। जीहा खेले कोई बिरला दास।
रात दीवस धूप नहीं छाया। आव न जाये मोह न माया। १४२।
आन्धा जपे मन समभाव। गांव न खेत नाव न ठाव।
भीतर नहीं नहिते न्यारा। जीसका ग्रभ में सकल संसारा। १४३।
दूर नही जाण नजीक रहेणा। भरमी भरमी बे हाल न होना।
तिर्थ वर्त मिथ्या करी जाण। येक सांई सु करो पहेचाण। १४४।
देव देवी की भणी करो आसा। सांई बिना मिटे न प्यासा।
ऐसा जाणी सेवो अभिनासि। तो मीटे गरभ वास की फासी। १४५।

सींघा जाप जपते सान वे। दृष्ट देखे सो देव।
उनसे जम से भेटे नही। छूटे पूरव जन्म क छेव। १४६।

आकाश ऊपर जावो मत कोई। करता पुरस तुम मा होई।
आकेला सांई कब लग घड़े। घड़ते घड़ते मांदा पड़े। १४७।
वाके कछू मजूर नहीं लागे। सहेजुं सहेज फायली ते आगे।
नहीं दीवान नहि दरबारा। पुरस से नेश्चे करो आरभारा। १४८।
पूछता जरा ते नहीं कोई। जैसी मती तैसी गति होई।
कहे कहे का हालु माने। आन्दर उपजे ताखु जाने। १४९।
देह धरी करता मत जाणो। पिंड पड़े जीव जीहा रहे ते जगा पहेचाणो।
येही बात खोजो नर लोई। और भरमणा भरमो भणी कोई। १५०।
पाणी बिना मछली केउ जीये। ऐसा सर्व जीव ब्रह्म रस पीवे।
आनहाद बाजे आखंड गाजे। बीज चमके आसमान बिराजे। १५१।

सींघा आसमान उपर बैठे हुये। करे आसमान की बात।
सुगरा को मालूम है। निगुरा को अयेसी रात। १५२।

सगुरा को दीवस हये । नीगुरा को जयेसी रात ।
वस्ती कहु न देखिया । जीहा तीहा ड जडात, । १५३ ।

सकल ब्राह्मण देख्या जोई । धागा[1] नाखे उत्तम न होई ।
पांडु घसे और टाका लावे । जैसो गीद कर गट पर ध्यावे । १५४ ।

संध्या सारे हार हार करे । मन की भ्रष्टना कभु न मरे ।
उत्तीम जात विप्र कव्हावे । सूतक मृतिक घर मा लावे । १५५ ।

मसाण जाये गउ ते लेई । उनसे नीच और न कोई ।
आवला सवला करे बहु तेरा । विकार भरा सब तन मंझारा । १५६ ।

धूरा कमावे फीर घर घर । डेढ़ चमार का दर्शन कर ।
कांमल वेचे हाट मो जाई । झूठा बोले और खुसी थाई । १५७ ।

ऐसा सकल ब्राह्मण देख्या जोई । इनसे नीच और न कोई ।
चाल हये नीच नीच नही जात । सुरता जण तुम सुणों हो बात । १५८ ।

भूला खु भूला बहैकावे । आप आन्धा और काहा वतावे ।
राहा छांड़ चले आडवाटा । काहा करे पहेले जड़े कपाटा । १५९ ।

देखे और विसवास न आवे । तीन को सांई दूर छोड़ावें ।
पुखता होये तो मन भासे । ऐसे गवार केते गये प्यासे । १६० ।

सांई सांई करी खलक जगावे । भीतर बुद्ध एक नहीं आवे ।
सतगुरु मिले तो सांई को पावे । तेथी मन दया पर आवे । १६१ ।

आगु पाइये तो पीछू लये लाईये । खाया बिना स्वाद केउ पाईये ।
ऐसा समझे ज्ञान सोई । आन्तरगत जाणे गत होई । १६२ ।

राम कहे झूट जो बोले । ताते फिरी फिरी चवरासी डोले ।
राम कहे और दारू पीवे । राम कहे और मारे जीवे । १६३ ।

आंत:करण होये सो साची । मुखवाद भक्त सकल हये काची ।
राम कहे करते हैं चोरी । राम कहे ताके पर नारी । १६४ ।

1—जनेऊ ।

राम कहे मास जे खावे । ताते फिरी फिरी जोजक में आवे ।
राम कहे हुरदे बसे क्रोध और काल। तिन पर पड़े जम की जाल ।१६५
मुख राम हिरदे नहीं दया। तिनका जनम सुवर का भया।
राम कहे और चुगली करे। ताकुं सांई दूर पर हारे । १६६ ।
राम कहे दगाबाज़ी न जाई । तेकोर जलम लग कुकर थाई।
कहै सींघा सुणो नर लांई । मुख से कहे कछू न होई। १६७।

सींघा देखी बात कहे न कोई। कही बात खु हां जी।
कोई येक नर दुद पीया। ते केउ पीयेगा कांजी। १६८।

सीघा आप जाणे होयेगा छूट का। और जाणे जोजक जाये।
जे नर ने खांड खाई। ते मली केउ कर खाये। १६९।
सींघा उंच जात विप्र कव्हावे। नीच जात घर मांगण जाये।
तरण तारण कुं गउ[1] कव्हावे। सो केऊ विष्टा खाये। १७०।
सींघा दोना चार का घुमरा। काहा टीका काहा भीत।
मुख धोये क्या हायेगा। जयेसे न होवे परतीत। १७१।
सींघा गाल गुल सब छांड दे। हीरदे राखो नेह।
आहंकार तजी जे नर मुवा। ते न धरी फिर देह। १७२।
नरम वीना[2] नेरा[3] न पावे। नरम वीना आसमान न जावै।
नरम नजर करता[4] देखावे। नरम वीना आनहाद कैसे वजावे।१७३।
नरम वीना नेरा न पावे। नरम वीना मन हात न आवे।
नरम वीना सर संधान न होई। नरम कमाण दावै सब कोई। १७४।
नरम रेसम महंगा बेकावे। सब कपड़ा मौ शौभा पावे।
नरम घीव स्वाद पर आवे। जैसा नरम नरम महंगा बेकावे। १७५।

१—रास्ता।
२—बिना।
३—नजदीक।
४—कर्त्ता।

नरम कपड़ा सब सु प्यारा। जैसा नरम सांई हामारा।
नरम चन्द्र कुं नवै सब कोई। नरम बीना मुक्ति न होई। १७६।

सींघा नरम नेह चल विरला देखु। कपटी हुये संसार।
सींघा आपणा क्या जायेगा। जंघा करेगा आरम्भार। १७७।

सोना रूपा होये ते घणा। तुम वीना प्रकार जीवणा।
हाती घोड़ा होये ते घणा। तुम बीना प्रकार जीवणा। १७८।

नौबत नगारा धुरे आपारा। तुम बीना जीवणा प्रकारा।
तिर्थ वर्त करते घणा। तुम बीना प्रकार जीवणा। १७६।

देवा देवी पूजे ते घणा। तुम बीना प्रकार जीवणा।
दान पुंन करे आपारा। तुम बीना जीवणा प्रकारा। १८०।

राजपाट पाछाई होई। तुम बीना प्रकार हुये सोई।
कटक खंगार होये आपारा। पुत्र कलत्र होये घणा आपारा। १८१।

जैसा माया का सुख भोगे आपारा। हारी भक्ती दीना भगभग संसारा।
हारी नाम जपो रे मुंड आजाण।
हारी भक्ती बीना दुख नीवारे कोण। १८२।

सींघा मीष्टान मेवा मीठा लागे। पाछू बांष्टा न खाये।
दीना चार हारीयाला दीसै। आन्त काल सूकी जाय। १८३।

सींघा और नर सांई सु सेव रे। रहे रहे संमाये।
लौहा सु लोहा घसै। तो मैल दोनु का जाय। १८४।

झूट खोवो साच लेवो ते सही। आप ठगावो और ठगिये ते नाही।
क्रोध खोवो सील संतोस करो। शोक खोवो हारख मन धरो। १८५।

कु जबा खोवो सु जबा बोलो। आवगुण खोवो गुण कुं खोलो।
थोड़ा खावो बहोत न खोजो। निद्रा खोवो जामण लीजो। १८६।

सोभा खोवो गरीबी सु रहो। पाप खोओ धरम कुं गहो।
कु द्रष्ट खोओ सु द्रष्ट सु देखो। घणा खोवो थोड़ा सत करी
लेखा। १८७।

सब खोओ येक कुं राखो। गाअण बाजावण चतराई नाखो।
पहेचाण प्रीत आंतरगत लावो ।'कहे वत छोडी नयेन देखो
ध्यावो। १८८ ।

येक मारे सकल सीध होई।[1] भेद जाणे वीरला जण कोई।
सकल ध्यावे सो जाजक म जावे। येक कुं ध्यावे तो पारंगत होवे।१८६।

सींधा जैसा जीव आयणा, तैसा सकल मु देख।
कसभ[2] देखी भूलो मत, बोलणहारा येक ॥ १६० ॥

सींधा लंत्र दोरा येक है, मणका पोया आनेक।
तैसे लख चवरासी जीव है, खेवण हारा येक ॥ १६१ ॥

सींधा जल मो डूबी घाघरी, जल घाघर के माहे।
आलम डूबी ब्रह्म में, आंधे को सूझत नाहे ॥ १६२ ॥

भूली हारणी[3] वात न जाणी। बकरी कुं माये कर मानी।
भूली भयेस ते पाडा जाया। लेकर मन मनुस ले आया। १६३ ।

भूला लोक आपण खोजे । फतर कुं देव कर पूजे ।
भूली मुरगी न जाणे भेव। मोहण का अंडा आपण नरी सेव। १६४ ।

भूली गोचडी थान कुं धावे। लोही पीवे दूद न पावे ।
भूला मृग आपण खोजे । दवडत फिरे जड़ांत सूंघे । १६५ ।

भुली मछली पाणी मो घर करे। नीर न पीवे प्यासी मरे।
अैसे भुला लोक ब्रह्म मा फीरे। बिन पहेचाणे कयेसे तिरे। १६६ ।

येक आलस ती हुआ आनेक। कहो कैसे करी होयते येक।
कंचन येक आभुखण आपारा। आभुखण माला तब कंचण
सारा। १६७ ।

१—सिद्ध।
२—कसाई।
३—हिरन।

तैसे ब्रह्म में जे जन गल गया। ते नर ब्रह्म सरीका भया।
जब लग बंध्या क्रम भरम के माही। तब लग ब्रह्म हो ऐसे
नाही। १९८।

जब क्रम भ्रमती रहीत जो होई। तो आप सरीका सहेजु सोई।
आये सी कहे सींघा समजाई। तुम सुणो मेरे संत जन भाई। १९९।

जो ये कथा वाचे सूणें करे अभ्यास। तो भक्त द्रढ़ होवे विश्वास।
अब ये कथा सम्पूर्ण भई। सूणोरे साधो सींघाजी ने कही। २००।

सींघा जग में जीवता, सेवक सुमरे पास।
जन कारण तन धरिया, सो ब्रह्म जोत प्रकास॥ २०१॥
॥ ईती सींघाजी महाराज का द्रढ़ उपदेस सम्पूर्ण॥

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ अथ आत्म ध्यान प्रारम्भ ॥

सोहंग ध्यावै उनमुनि लावै। अनहद में हाथ न लावै। चन्द्र सूर्य दोई बतावै।

निरख परख भेद जो पावै। बंकनाल में आवे जावे। किल्ली देके उल्टा चढ़ावै।

जहां टीका तहां साहब बैठो। हाथ न पाव रूप न रेखो। उलट अपान प्राण में लावै।

पश्चिम दिशा का इक्कीस मनका, वे ही इक्कीस ब्रह्मांड हैं, तहां भंवर गुफा है।

ऊपर मूल अरद उरद। ऊपर त्रिवेणी। दो दल कमल ऊपर।

निरंजन परमात्मा सत्य यह जानो दस दरवाजा प्रगट बतावै।

तीन दरवाजा गुप्त न पावैं। अठारह भार बनस्पति रोमावली।

छिन में सफेद छिन में काली। सकल हाड़ पर्वत सवा लाख। सत् शब्द ये सिंघाजी भाखै।

ऊँच नीच में पूर रहा, नहिं सेव नहिं पूजा।
मोक्ष का मूल सत्, ये भी धर्म न दूजा॥

मूल द्वारे गनेश देवता। रंग पीला पाखड़ी चार॥ जाप ६००१॥

स्वाधिष्ठान चक्र ब्रह्मा देवता। रंग श्वेत। पाखड़ी छः॥ जाप ६०००॥

नाभी कमल विष्णु देवता। रंग नीला। भीतर नीला। पाखड़ी आठ॥ जाप ६०००॥

हृदय कमल शिव देवता। रंग लाल। भीतर का रंग काला। पाखड़ी बारह। जाप ६०००।

कंठ स्थाने जीवाआत्मा देवता। रंग हरा। भीतर रंग श्वेत। पाखंकी सोलह। जाप १०००।

त्रिकुटी स्थान दोई दल कमल पर आकाश जहाँ साइंग पुरुष परमात्मा देव।

जिसके रूप न रेखा। जाप १०००। सहस्त्र दल कमल पर सतगुरु आदि पुरुष।

जाप १०००। जुमला जाप २७००१।

बाहर बाणी का रंग लाल। बाहर जिमी का रंग पीला।
बाहर पत्थर है। बाहर बनस्पति है। बाहर नदी है। बाहर पर्वत है।

बाहर जिमि है। बाहर पानी के झिर हैं। बाहर पाठा है।
बाहर बिजली है। बाहर पवन है। बाहर नर है। बाहर नारी है।

बाहर काल है। बाहर गरजना है। बाहर तारा है। बाहर षटचक्र है।

बाहर मोती है। बाहर कर्ता पुरुष है।

जैसी रचना बाहर है, तैसी भीतर देख।
बाहर भीतर एक है, कहन को है अनेक॥

तैसी देह जिमी है। यामें परवत चाहिये। तो टींगल्या वो हड्डी परवत है। यामें झिरना चाहिये। तो द्वार सब झिर हैं। तो यामें पाठा चाहिये। पांसू सब पाठा हैं। यामें चन्द्र सूर्य चाहिये। दोनों नैन चन्द्र सूर्य हैं। यामें नदी चाहिये। तीन गुण तीन नदी हैं। यामें बादल चाहिये। तो भय भ्रम बादल हैं। यामें बिजली चाहिये। तो उनमुनी का चमकारा बिजली है। यामें इक्कीस ब्रह्मांड चाहिये। पश्चिम दिशा के इक्कीस मण का इक्कीस ब्रह्मांड हैं। यामें आकाश चाहिये। तो आकाश शीश है। यामें गर्जना चाहिये। अनहद गर्जना है। यामें काल चाहिये। तो क्रोध काल है। यामें खटचक्र चाहिये। तो खटकमल खट-

चक्र हैं। यामें परमेश्वर चाहिये। तो सोहं परमेश्वर हैं।

बाहर भीतर जल भई, अन्तर नहीं लगार।
अपने नयन आपको देखे, न कछु वार न पार ॥
सकल जीव एक कर लेखे, ऊँच-नीच कोई मत लेखे।
भूख प्यास आत्मा जाने, हर्ष शोक हृदय नहिं आने ॥
देव देवी की नहीं करै पूजा, आठों पहर भाव नहि दूजा
नर नारी से झूठ न बोले, सत्त न छांड़े घर-घर नहि डोले
सांप बिच्छू कछू न मारे, तरण होय जो चले ऐसी चालें
अल्प अहार बहुतसा न खावे, तीसरे चौथे दिवस नदी तरफ जावे
जैसी अपनी तैसी पराई जाण, लोभ मोह मत करो।
होय मुक्त-मुक्त में हाण, शोभा मान अहंकार डारे ॥
सो तरही गयो फिर साई क्या तारे।
लालच लोभ सकल है कांची, हुश्यारी करो नहिं तो होयगी हासी ॥

॥ इति आत्म ध्यान सम्पूर्ण ॥ जय-जय महाराज ॥

श्री गणेशाय नमः

॥ अथ सिंघाजी महाराज का दोष बोध प्रारम्भः ॥

दोष मद मांस खाये का ।१। दोष चोरी अन्याय किये का ।२।
दोष तो झूठ बोले का ।३। दोष चुगली किये का ।४।
दोष पराई निंदा का ।५। दोष कड़ी जुबां बोले का ।६।
दोष जीव हसन किये का ।७। दोष कुदृष्टि देखे का ।८।
दोष दगा किये का ।९। दोष बकवाद किये का ।१०।
दोष कु जबां बोले का ।११। दोष आत्मा किलपाये का ।१२।
दोष तो खोटा दिये का ।१३। दोष जाफा लिये का ।१४।
दोष पर उपकार न किये का ।१५। दोष मेरी-मेरी किये का ।१६।
दोष अहंकार किये का ।१७। दोष हथियार बांधे का ।१८।
दोष साख बोले का ।१९। दोष जगत कमाये का ।२०।
दोष चेटक नाटक किये का ।२१। दोष नाम लिये का ।२२।
दोष बैल वाधी किये का ।२३। दोष सन्त को सताये का ।२४।
दोष ब्रह्म अंश खाये का ।२५। दोष शिव निरमाल खाये का ।२६।
दोष अनदेखा दोष लगाये का ।२७। दोष जुबां खेले का ।२८।
दोष व्यभिचार किये का ।२९। दोष ब्रह्म को छांड़ि देव सेवने का ।३०।

आये साधू जगत में। नाम लिये उतरे पार।
और डूबा भवसागर में। सिंघाजी कहैं विचार।
सतगुरु ऐसा चाहिये। जग में होत उछाव।
दुनियां डूबी ब्रह्म में। दीसै नारायण को भाव।
इति दोष सम्पूर्ण। जय-जय महाराज।

श्री गणेशाय नम:

अथ श्री सिंघाजी महाराज की नरद प्रारम्भ: ॥

तप किया न खाक लगाई । सतगुरु दिया सहज बतलाई ।१।
अन्न खाय न पानी पीवे । हाथरु पांव शीश नहिं दीसे ।२।
ना बोले ना रूप दिखावे। ऐसा तू जगदीश कहावे ।३।
जो कछु हो पहची ही कम ई । सतगुरु खोजो सहजहिं जाई ।४।
सतगुरु दिया सहज बतलाई । ता पर ध्यान धरो लौ लाई ।५।
तीन लोक में किया पसारा । क्यों कर भूला सब संसारा ।६।
सोलहा सहस्त्र जिन परनी नारी । सो तो कहाना मत ब्रह्मचारी ।७।
अहो पंडित तुम देखो विचारी । कौन भया पुरुष कौन भई नारी ।८।
आपै गावे आप सुनावे । भजन कपूत मुक्ति नहिं पावे ।९।
अपना मुक्ति को आप न जाने । तो क्यों बांचे वेद पुराने ।१०।
पंडित अनेक जन्म का धारी । कहां तो नगरी कहाँ की तारी ।११।
माटी गूंजी कर दुजवारी । ऐसी गति से दुनी खवारी ।१२।
तामें कैसे करों विचारा । साईं सेती कोई नहिं न्यारा ।१३।
तन मन सौंप साई लौ लाओ । जम के हाथ से जीव छुड़ाओ ।१४।
जीव औ जम का एकही वासा । अन्धी दुनियां होवे प्रासा ।१५।
वार तिथी जो आय के पूछे । रात दिवस सब एकही दीसे ।१६।
खोज खरा कछू नहिं दीसे । ऐसा परिया इक जगदीसै ।१७।
ख्याल देख साधु जन हसै । ज्यौं परदे में पुतली नचै ।१८।
बिन देखे क्यों चलिये वाटा । जाय पड़े कहीं औघट घाटा ।१९।
जनसिंघा भूलो संसारा । जीते जो कोई उतरे पारा ।२०।

॥ इति नरद संपूर्ण ॥ जय-जय महाराज ॥

श्री गणेशाय नम:

॥ अथ सिंघाजी महाराज की शरद् प्रारम्भः ॥

शरद् कहो तुम संशय मेटा। हर्ष शोक नहिं करना।
घड़ी एक दिन दो चार में। आखिर अन्त को मरना।१।
सुन्न में रहना भेद न कहना। पाप पुन्य नहिं जाना।
ले दीपक दरयाव में बैठा। मनुआं जाय हिराना।२।
त्रिकुटी में भाटी लागी। बहती नदियां दोई।
जो जन जाने सो पहिचाने। पिये सन्त जन कोई।३।
कहाँ से आया कहाँ जायगा। कहाँ जीव का वासा।
सोई पंथ तुम खोजो साधू। और झूठी सब आसा।४।
कर्म भर्म बंधा संसारा। ये तो बन्धन सारा।
कर्म न मेटे बन्धन न छूटे। सोई पंथ है हमारा।५।
सुन्न करो तुम शहर बसाओ। मारो पांचों थाना।
आकाश ऊपर महल है जिनका। बिन पेड़ी का जाना।६।
आपस सेती प्रीत लगाओ। ज्यों नदी का पानी।
अधबिच में तोड़ा परै। तो होय भक्ती में हानी।७।
जित देखो तित मृतक सारा। किस से जोड़ों यारी।
समर्थ साहिब से पर है। साधू सोई है मुक्ती प्यारी।८।
मुआ मुआ कहै संसारा। मुआ न दीसै कोई।
तन कांचरी उतार धरी है। फिर-फिर जीवता होई।९।
प्रेम जेवरी मनुआं बन्ध गओ। कुमत संग ना जाई।
बगला छांड बनोरे हन्सा। मोती चुग-चुग खाई।१०।
इंगला पिंगला सुखमन नारी। सोई है जात हमारी।
कहो जम्म तुम क्या करोगे। मोढी वस्तु सारी।११।
जैसे बेटी रहे सासरे। पीहर तन को जोवे।
ऐसे सन्त रहे दुनियां में। सुरत निरत में होवे।१२।

रोम-रोम तन दीपक। लागा नहीं मूल से देही।
हाथ पांव कछु नाहीं दीसै। निरख सुख लेई।१३।
रूप न रेख कछू न दीखै। ऐसा नाथ हमारा।
जिनके सिर पर नौबद बाजे। रहे खलक से न्यारा।१४।
काहे की जम्मीन बनाई। काहे का असमाना।
यही बात का विवेक आनो। सुन्न में सुन्न समाना।१५।
काहे का बादल बनाया। काहे का है पानी।
काहे की वो बिजली चमके। पूछो हरि के ज्ञानी।१६।
काहे का वो चन्द्र बनाया। काहे के हैं तारा।
काहे का वो सूर्य बनाया। पूछो हरि का प्यारा।१७।
भैरों खाली भूत भी खाली। खाली देवा देवी।
बिन पानी से पैदा करता। सच्चा साहब सोई।१८।
तीरथ खाली बरत भी खाली। खाली देवा चारा।
द्वैत भाव से बाहर देखे। तभी मिलै करतारा।१९।
नहिं कछु छोटा नहि कछु मोटा। नहिं कछु हल्का भारी।
मूल रचना साहब रच दीन्हीं। कहाँ थे पुरुषा नारी।२०।
अकाश पताल मेघ मेदनी। पव पानी किन दीया।
गूनर में से पन्छी उड़भा। संजोग किन्हों न कीया।२१।
कोई कहे बेटा कोई कहे बेटी। कोई कहे पुरुषा नारी।
संजोग कहो तो सब ही झूठे। गैजी दुनियां। सारी।२२।
मुख सेती राम कहो। मन तो फिरे उजाड़ा।
खेत कहे मोहे नेक न खेड़ो। कैसे पाके बाड़ा।२३।
ऐसे राम कहै का होई। यह तो मुक्ति नहिं पाई।
ऐसे राम कहैं गये केतक। गिनत पार ना आई।२४।
जोगी होके जटा बढ़ावे। नगर फिरै जस भैंसा।
चमड़ी ऊपर खाक रमाई। मन जैसा का तैसा।२५।

भैख लिया पर भेद न जाना । बैल फिरै ज्यों घाना ।
परदे अन्दर साहब ठाडो । उसको नहीं पहिचाना ।२६।
माया मोह देखकर भूला । ये परपंच की चट्टी ।
इस देही का क्या भरोसा । आखिर हो गई मट्टी ।२७।
रैन दिवस क्यों करै कलपना । माया से मनलाया ।
नौ महिने तक रहा गरभ में । वहां किन ने पहुँचाया ।२८।
सहज गुड़ी पवन गुतानी । कई एक भाषा बोले ।
सहस्त्र पाखंडो मन खों लागी । क्यों कर सीधा होवें ।२९।
एक वृत्त के फल है सारे । कोई खट्टा कोई मीठा ।
डाल पत्त कछू नहि दीसै । और आय सब दीठा ।३०।
ये मनुआं जब सीधा चाले । नहि क्रोध नहिं काया ।
तुरत काल के काम को मेटे । पलटे दूजी काया ।३१।
नहीं यहाँ से बाहर रहूँगा । नहीं जाऊँगा पारा ।
मुक्त मूल बैराग्य सिधाजी । हिन्दू तुर्क से न्यारा ।३२।
इति शरद सम्पूर्ण ॥ जय-जय महाराज ॥

श्री गणेशाय नमः

॥ अथ श्री सींघाजी महाराज की देश की वाणी प्रारंभः ॥

मेरे देश क्रिया नहीं कारी। मेरे देश पुरुषा नहीं नारी ।१।
मेरे देश शक्ति नहिं शीवै। मेरे देश मरै न जीवै ।२।
मेरे देश सांस नहि उसांस। मेरे देश कुल नहिं जात् ।३।
मेरे देश बेटा नहिं बेटी। मेरे देश सांच नहिं झूठी ।४।
मेरे देश पूजा नहिं पानी। मेरे देश जापा नहिं थापी ।५।
मेरे देश जमी नाह असमाना। मेरे देश बालक नहिं ज्वाना ।६।
मेरे देश नैन नहिं अन्धा। मेरे देश सूर्य नहिं चन्दा ।७।
मेरे देश नहिं कूकर नहिं कागा। मेरे देश बकरी नहिं बागा ।८।
मेरे देश बादशाह नहिं काजी। मेरे देश उमराव नहिं पाजी ।९।
मेरे देश पाप नहिं पुण्य। मेरे देश बोले नहिं मौन ।१०।

कहैं सिंघाजी कहते-कहते हैरान हुआ, अब कछु कहा न जाय।
कूकर स्वभाव छोड़े नहीं, फिर-फिर हाड चबाय।

मेरे देश नभ नहिं तारा। मेरे देश धरती नहिं भारा ।११।
मेरे देश राम नहिं सीता। मेरे देश भागवत नहिं गीता ।१२।
मेरे देश नागा नहिं संन्यासी। मेरे देश वैरागी नहिं उदासी ।१३।
मेरे देश ऊँच नहिं नीच। मेरे देश जरा नहिं मीच ।१४।
मेरे देश भट्ट नहिं पंडित। मेरे देश तीरथ नहिं बरत ।१५।

सिंघाजी ऐसा कोई एक देश है, जाप मंत्र है नाहिं।
बहुरि-बहुरि आवे नहीं, जहाँ का तहाँ समाय ॥
सिंघाजी साईं सरीखा दरयाव है, खाली नहीं लगार।
जिमी असमान सब डूबियां, और सकल संसार ॥

॥ इति देश वाणी सम्पूर्ण ॥ जय-जय महाराज ॥

श्री गणेशाय नमः

॥ अथ श्री सिंघा जी महाराज की वांणावली प्रारम्भः ॥

बे मरजाद जीव की। मरयादा तन की। सिंगार तो शोभा को।
निद्रा तो सुख की। जागना तो चिंता को। आवना तो जीव को।
प्रलय तो तन का। बल तो हिम्मत का। वांणावली सांवत की।
भागना तो कायर का। झूठ तो लोभ की। सांच तो मुक्ति की।
तपस्या तो पत्थर की। धीरज तो वृक्ष की। सुफेरा तो सूरज का।
सत्य तो धीरज का। चंचलता तो पवन की। कला तो बुद्धि की।
प्यार तो मोह का। आवरण तो वे त्याग का। तान तो कोयल की!
मिलना तो प्रीति का। रूप तो पानी का। तेज तो अग्नि का।
बोझा तो जमीन का। हलकाई तो आकाश की। तरना तो
वैराग्य का।
डूबना तो अज्ञान का। आहार तो मन का। शठपना तो
अपमान का।
इज्जत तो भलाई की। लज्जा तो शरम की। स्त्री तो कामदेव की।
भूख तो प्राणवायु की। धर्म तो दया का। लोभ तो पाप का।
आसा तो जीवन की। श्वासा तो तरने की। गरज तो सेवक की।
हर्ष तो फायदे का। सोच तो ज्ञान का। स्वाद तो जिह्वा का।
दौड़ तो जम की। खुद ही तो माया की। देव देवी पूजना
स्वार्थ का।
नाद तो अनहद की। वर्षा तो सोहं की। रंग तो तत्व का।
उजाला तो उनमुनी का। चमकना तो अर्धचन्द्र का। सफेदी तो
शिव की।
वेद तो सोहं का। पल तो सांस उसांस का। देहधारी जीव आत्मा।
देह रहित परमात्मा। कर्ता पुरुष परमात्मा।

॥ इति वांणावली संपूर्ण ॥ जय-जय महाराज ॥

श्री गणेशाय नमः

॥ अथ श्री सिंघाजी महाराज का सात वार प्रारम्भ ॥

मंगल से मूल पहचाना। पहले प्राण किया आसमाना।
आवागमन का जाने भेव। आपहि करता आपहि देव ।१।
बुधवार से बुद्धि विचारे। जीवन मरण की क्रिया सारे।
पांच तत्व ले ब्रह्म में धरे। सो नर जीते मरते क्यों डरे ।२।
बृहस्पतिवार बहुरि नहिं आवै। अन देखे को गैल बतावै।
चढ़े अकाश चवघड़िया बाजै। अविचल देख तेराही राजै ।३।
शुक्रवार सुस्थान विचारै। भेष धर-धर नाहक हारै।
आवत जात ठीक न लागै। देश हामार पीछे आगै ।४।
शनिवार शैतान सिधारै। अन्तरघट सेवै करतारै।
मणका-मणका सूत्र लगावै। आगले घाट का भेद बतावे ।५।
दीतवार दीवान को पेलै। सकल घाई आप में खेलै।
नारी पुरुष सब देव स्वाले। भेद होय तो बस्ती में हाले ।६।
सोमवार सो सचराचार। पलक में पावे पार।
कहैं जन सिंघाजी जन करो संसा। ते नर मरै न जावै जैसा
का तैसा ।७।

॥ इति सातवार संपूर्ण ॥ जय-जय महाराज ॥

श्री गणेशाय नम

॥ अथ श्री शिवा जी महाराज को पन्द्रह तिथि प्रारंभ ॥

पड़वां पहले पस्ता किया। सिर के साटे साहेब लिया।
नहीं जिमी नहीं आसमाना। सिद्ध साथ जहाँ सहज समाना।
दूजे दूज दूजा नहिं कोई। जो जाने सो आप ही होई।
चंदा सूरज जहाँ जोति लागी। सुख किया दुख गया सब
भागी।१।

तीज त्रिगुण किया पसारा। पर घट जोत तीन लोक उजियारा।
अखंड गहो तो अविचल रहो। मन को देख मन ही को गहो।३।

चौथ चंचल मन निश्चल कर धरो। सहज-सहज भवसागर तरो।
नैन खोलकर निरखो सारा। जाय मिलो जहाँ सिरजन हारा।४।

पंच पंचमी का करो एक अहारा। पच्चीस छोड़कर खेलो न्यारा।
आकाश लागी आखंड धारा। सदा पीवै सतगुरु का प्यारा।५।

छट छटी का अक्षर टारै। कर्म की रेख पर मेख मारै।
तेरा मेरा एक न लावै। सो तो गैबी गैब में जावै।६।
सतमो सारा देख पसारा। कोई एक भीतर कोई एक न्यारा।
जो जन जाने सो हरि का प्यारा। और पशु सब काल का
चारा।७।

अष्टमी अड़सठ तीरथ माहीं। दूर दश काहे को जाई।
भीतर सपड़े हृदय शुद्ध होई। बाहर क्या धोवै गंदी देही।८।
नौमी अमल की राह जो पावै। भेद होय तो बस्ती में हालै।
बाट चला सो अदबीच रहता। उलट चला सो जाय पहुँचता।९।
दशमी देही अनी को जारा। स्वाद मेटा खट्टा खारा।
मन चाह खेलो दस ही द्वारा। नैन झरोखे निरखों सारा।१०।

एकादशी तो खेरस जानी । पुरुष छांड़ि क्यों सेवै नारी ।
पिछले दिन पड़ेगा भारी । अब साईं बिना को लेय उबारी ।११।
बारस बारह रास ते न्यारा । देह बिना साहब है मेरा ।
मुक्ता दीसें पर हाथ न आवै । तापर कोई रंडापो गालै ।१२।
तेरस ते सब देख पसारा । कोट सूर्य जहाँ गैबी तारा ।
उलटा देखो नैन मँझारा । तब सेवक होय सब संसारा ।१३।
चौदस चौकस वार जो कीना । सकल छोड़ के आप में लीना ।
एका एकी दूजा न लेखे । जिम असमान में बैठा पेखे ।१४।
पूर्नों पूर्ण के लख चन्दा । तू क्या भूलै जन्म के अन्धा ।
कहैं जन सिंघाजी तुम खोजो देही । मुक्त पुरातन राह येही ।१५।

॥ इति पन्द्रह तिथि सम्पूर्ण । जय जय महराज ॥

श्री गणेशाय नमः

अथ श्री सिंघाजी महाराज की बारहमासी प्रारम्भ।

फागुन फारकत हो रहो। होनी छांडि अनहोनी गहो।
जीवन जीव का करो ठिकाना। हद छांडि बेहद में जाना।१।
चैत चिता भर रहो। उठाय आकाश नीचे धरो।
कर न पांव रूप न रेखा। आवे न जाय सब जुग देखा।२।
बैसाख वस्तु आप में खोजे। पांच पच्चीस को संग कर बोधे।
उड़ना पन्छी का खोज बतावे। वो नर देह धरे नहिं आवै।३।
जेठ जग में भया उजाला। रोम रोम नख सिख में व्यापा।
अन्धा कहे मैं जाऊँ अकाशा। अन्तर में देख सिद्धों का वासा।४।
अषाढ़ आप आप में हटकै। निर्गुण हण्डी चौक में पटकै।
काम क्रोध को बस कर रखै। उतरिया कलंक काल नहिं भख्यै।५।
सावन सागर भरिया। थाह अथाह भरा है दरिया।
नहीं है पारा नहीं है वारा। जिसके गर्भ से सकल संसारा।६।
भादों भय से न्यारा। मेहा बरसै अखंड धारा।
रिमझिम रिमझिम बरसै पानी। भीजेगा कोइ बिरला ज्ञानी।७।
कुँवार खोजो काया। तीन लोक में आन समाया।
कोष हजार लों देवै दिखाई। पवन स्वरूप रहा समाई।८।
कातक पल्टै दूजो काया। गैबी पुरुष जहाँ आन समाया।
जिनने पिछाना दुख सह लिया। सो आवागमन का भेद जो लिया।९।
अगहन से तो मिलकर रहो। नयन खोल कर अपना गहो।
इंगला पिंगला जिनने साधा। सहज सुन्न में लौ समाधी।१०।

मूस में जाय दीदार मिलिया। तुरिया पद में जाय पहुँचिया।
अनन्त सूर्य का भया प्रकाशा। आवागमन का मेटा सांसा।११।
माघ मगन बुद्धि बिचारो। हिन्दू तुर्क का संग निवारो।
दोनों पन्थ से रहो न्यारा। कहें जन सिंघा सदा मतवारा।१२।
॥ इति सिंघाजी महाराज की बारहमासी सम्पूर्ण। जय जय महाराज ॥

सिंघा-पदावली

मत बयजो मोह की धारा रे हंसा,
झूठा है संसारा रे हंसा।
झूठी गेह देह धन धरणी झूठो सकल पसारा,[1]
झूठी, अरधंगी न तोहै भरमायो नहीं उतरन दे पारा रे हंसा।
काम क्रोध कछ[2] मछ[3] बसत है लोभ मगर खावे हाड़ा,
अहंकार की लहर जो आवे मद का उड़त फुवारा रे हंसा।
दुरमति दोय त भव जल गंदलो कपट भंवर फेरा फेरा,
आसा तरसणा की कांजी[4] बहत है पीवो सोई बीमारा रे हंसा।
खोजी खेवटिया ये नाव चढ़े रे सादु ये सब से है न्यारा,
कहे गुरु सिंगा सुणो भाई सादु डूब्या मूढ़ गंवारा रे हंसा।१।
निरगुण ब्रह्म है न्यारा कोई समझो समझण हारा,
खोजत ब्रह्म जलम सिराणा[5] मुनी जण पाया न पारा।
खोजत खोजत सिवजी थाके अयसा अपरम्पारा,
त्रीकुटी महल में अनहद बाजे होत सबद झनकारा।

१—सकल विश्व, २—कछुवे। ३—मछली।
४—मैल। ५—जीवन समाप्त हो गया

सुकमणा[1] सयेज सुन मं भूले सोहंग पुरुष है न्यारा,

वेद कहे सुख आगम वाणी सुरती करो विचारा।

काम क्रोध तो छिन म जावे अरे भूटा सकल पसारा,

सहस्त्रं सहस्त्र मुख रटें निरंतर रहे दिन येक सारा।

रुसि[2] मुनि और सिद्ध चौरासी तैतीस करोड़ पचिहारा,

एक ब्रह्म की रचना सारी जिसका ही सकल पसारा।

'सिंगाजी' भर नजरों से देखे सोई गुरु हमारा। २।

मैं जाणु स्वामी दूर है मुझे पायो नेड़ा[3]

तुम चंदा हम चाँदणा रहणी उजियाला,

तुम सूरज हम घामला साईं चव जुग पुरीया। टेक।

तुम सोणा हम गहेणा मुझे लागा टाका,

तुम बोले हम देह धरे बोले कई रंग भाखा।

तुम दरियाव हम मीन है विश्वास का रहेणा,

देही घरी म भट्टी होय तेरा तुईम समाणा।

तुम वृक्ष हम बेलणी है मूल से लपटाणा,

कहे 'सिंघा' रे पहेचाणिया दरीयाव ठीकाणा। ३।

दया धरम क्यों छोड़ो रे धर्मी,

दया धरम क्यों छोड़ो हऊँ कऊँ वचन एक थोड़ो रे।

हरी जन की आतमा कल[4] पावे दुख पड़से बन्दी तोड़ो रे,

संत सतावे न तीनई[5] बढ़ावे दुख कुँभी पाप पड़ो रे।

१—सुषुम्णा। २—ऋषि।

३—नजदीक। ४—दुख। ५—तीनों ताप।

सोमदेव को वंस लजायो वीरमती को कियो त्रिलोड़ो रे,
कहे जण 'सिंगा' सुणो भाई सादु गिरे सोहंग सिखर से
छोड़ो रे । ४ ।

तुझा सरीसा करील रे साहब भव सागर पार उतारील,
तुझ में खाणा तुझ में पीणा तुझ में लेणा देणा रे।
जहाँ देखूँ वहाँ तू ही दीसे मन उपजो विसवासा रे।
ज्यों ज्यों मछली जल में पहरे ज्यों पहरे संसारा रे,
जो खोजे सो नजीक पावे नहीं तो फिरे अनजाणा रे।
आद अन्त का तुझा सरीसा देह धरी बदलाणा रे,
कहे जण 'सिंगा' सुणो भाई सादु जोत में जोत समाणा रे । ५ ।

सतगुरु हम पर दया करो विधि[1] देव बताई।
जीव ब्रह्म कैसे हुआ कासे पूछों जाई। टेक।
पवन डोर जीव संचरो जल सिरजी काया।
जा घर से जीव आइया हम तुमको लखाया।
दक्षिण पश्चिम उत्तरा पूर्व फिर आया।
दिव्य दृष्टि देखा नहीं जासे भरमाया।
दस दरवाजे प्रगट हैं चारों कुलप लगाया।
दो दरवाजे खुल गये हंसा सुख पाया।
सतगुरु केवल संग ले जाने थाह बताया।
कुर का जल सागर मिला जब मारग पाया।
कहं सिंघाजी साईं पातलो जाके रूप न रेखा।
आवत जात लखा नहिं भारी अचरज पेखा।६।

तज दिये प्राण काया हो कैसी रोई।
चलत प्राण काया कैसी रोई छोड़ चला निरमोही। टेक।

1—उपाय।

मैं आछु काया संग चलेगी ।
याके कारण काया मल-मल धोई ।
ऊँचे नीचे मंदिर छांडे गाय भैंस घर घोड़ी छोड़ी ।
त्रिया तो कुलवंती छांडी और तो छोड़ी पुत्रन की जोड़ी ।
मोटी छोटी डांडी मंगाई विन काठ की घोड़ी ।
चार जणा मिल ले जो गए हैं फूक दई रे फागुण जसी होरी ।
भोली तिरिया रोवन लागी बिछुड़ गई मोरी जोड़ी ।
कहे जण 'सिंगा' सुणो भाई साधु जिन जोड़ी तिन तोड़ी ।७।
ऐसा मरणा मरो संत भाई भवरी जलम नहीं धरणा रे । टेक ।
अगले होयंगे आग का पूला आपण होणा पाणी रे ।
जाणे आगु आजाण होणा तत्व लेना छाणी रे ।
नदी नाला मेल भयो है जब दरियाव कव्हाणा रे ।
गंगा जल की मोटी महिमा देस म देस विकाणा रे ।
अठारह वरण की गौआ दुहाई एक बरतन मु रखणा रे ।
दधी मथी न माखन कीनो न बरतण को क्या करणा रे ।
साधु संत से अधीन रहणा उपाव कभी न करणा रे ।
कहे जण 'सिंघा' सुणो भाई साधु-साधु सदा दीवाणा रे ।८।
सतगुरु सबदां हेरी कोई देखो दरीयाव की लहेरी ।
इस दरीयाव में बाजा बाजे-बाजे आठों पहेरी ।
ताल पखावद बजे झांझरी जां बन्सी बाजे गहरी ।
इस दरीयाव में सात समुन्दर बीच गयब की डेरी ।
डेरी के अन्दर अलख विराजे अहो जहाँ सुरता लग रही मेरी ।
विना पीड़ का बीरछ कहिये डाल गई चहुँ फेरी ।
पान फूल वाको कछु नहीं देखयो जहाँ छाया रहती गहेरी ।
आगम अगोचर अनुभव ठाडी अब क्या पूछे मेरी ।

कहे जण 'सिंघा' सुणो भाई साधु निरभय माला फेरी।६।

गुरु गम को मारग वांको[1]।
खांडा की धार छुरी को पानो, जहाँ असल सुई को नाको। टेक।
परधन माल पराई तिरिया, अरे गुरु इधर उधर मत भाको।
सोहं सिखर गढ़ चढ़ीजा मनुवा, तू गिरे तो यहाँ को नी वहाँ को।
कहे जन सिंघा सुनो भाई साधो, जहाँ भक्ति को नहीं है टाको।१०।

क्यों चिल्लाते हो साहब नहीं है सन्तो बहरा। टेक
पंडित जी तो पुराण बांचे शब्द सुनावे सांचे-सांचे।
अन्धयारा दीपक नीचे बिना प्रेम साहब नहिं रीझे।
सुमरन ऐसा करो कि जैसी मकर तार लगी डोरा।
मुल्ला होकर बांग पुकारे बन्द किये मसजिद के द्वारे
हाट गाट जिन पर रखवारे महबूब की बात निहारे।
अल्ला परवरदिगार खुदावन्द करीम मुजरा मेरा।
साधू होकर जटा बढ़ाये धूनी जलाकर खाक रमावे।
कर सिद्धि दूकान बढ़ावे उतने गुरु गोविंद न पाये।
ये तो दुनियां की ठगबाजी भवसागर में आन उलझाना।
भरा हलाहल जहरा।
राम कहूँ तुला ने घेरा कृष्ण कहूँ मिथुन का डेरा।
वो बारह रासों से न्यारा अजपा से कोई करो विचारा।
कहे जन सिंघा कथा समझाऊँ जब हो जायगा हमारा।११।

जिन देही का साहब मेरा देह धरी संसारा रे। टेक।
ताल पखावद बजे झांझरी ज्ञान कथे बहुतेरा रे
कथा कीतन करे बहुतेरा तोभी साहब नहिं माना रे।
नागा मुनि और दिगम्बर मुक्त राह नहिं जाना रे।

१—टेढ़ा।

करे तपस्या भूले उरध मुख सो भी साहब नहिं माना रे।

देवल देवी पूजे बहुतेरा बैठ गये तुला दाना रे।
लिंग भंग पूजे बहुतेरा सो भी साहब नहिं माना रे।
मैं तो देखूँ पाखंड सारा मोहे पीछे जाना रे।
कहे जन सिंघा सुनो भाई साधो सहजे सहज समाना रे।१२।

ये संसार असार है[1] बरजो[2] मत भाई
जैसा मोती ओस का पल में धुल जाई।
झूठी कंचन कामिनी झूठी ये माया,
आज की रैन कसी[3] गई जैसा अंधियारा।
क्या लूटे क्या मूसते[4] क्या जुंआ रे बाजी,
ये पड़पंच[5] कुड़ा[6] घणा गोविन्द नी राजी।
कई येक जीव तुम हणया[7] दुख दियो रे भारी,
यही रे जलम अहिलो[8] गयो सदा रहेगा भिखारी।
द्दो लख चौरयासी भोग के नर देही पाया,
सत गुरु चरण न सेविया पद 'सिंघाजी' ने गाया।१३।

हीरो हरदय हरि का नाम,
हां जी मोहे दवलत से नहीं काम।
हीरा मोती लाल जवाहर यही माया का फंदा रे,
ये ठगनी ने कई घर ठगिया ये जी वो क्या सूरे क्या स्याम।
तिरवेणी की निरमल धारा विरला जन करते इसनान,
सांचो हीरो संत परखदे हां रे ओ पावे समरथ से ज्ञान।
तीरथ वरत को पारथेमरे भूठो छे[9] अज्ञान,
ऐसी मुक्ति नहीं होय भाई ये तो है विश्राम।

१—है। २—बहुजो। ३—कैसी।
४—कंजूसी। ५—प्रपंच। ६—कूड़ा।
७—मार डाले। ८—व्यर्थ। ९—है।

सांच कहूँ परतीत नी आव झूठो मरो अज्ञान,
कहे जण 'सिगा' सुणों भाई सादु अर्जी ओ जन निकाल चाम ।१४।
गुरु के चरण गंगा,
कोई नहाई लेओ रे लूला अपंगा ।
जोगी हुई न जटा बढ़ाव बन बन फिरव नंगा,
माल खाई न देह फुलाव बणी रह्या लाल सुरंगा ।
इत सन्यासी न उत वैरागी तीरथ करी रह्या दंगा,
कहे जण 'सिंगा' सुणो भाई सादु अहो तुम फिरी रह्या अपंगा ।१५।
सदा सरण सुख पाउं भवरी न भव जल आउं,[1]
निंद्रा आहार तज्यो रे मारा सामरथ थारी मूरतिम सूरति मिलाउं।
रैन दिवस छै सब एक बीस हजारा ओम निरफल एक नी खोउं,
काम क्रोध मोह लोभ पुराणा इनकी ते नीव बहाउं ।
माया की बेड़ी ख तोड़ो म्हारा सामरथ न को हुरू महिमा गाउं,
तज्यो परिवार न छांडी थी चाकरी अब तो कहाउं ।
जसी पपैया[2] क्ष खंड धुन मांड ऐसो सबद सुणाउं,
करुणा सी नयना भरया म्हारा सामरथ
हउं लटी लटी सीस नवाउं ।
कहे गुरु 'सिंगा' सुणो रे भाई सादु बिना देही सी पुजाउं ।१६।
मार्यो वाण तुम कसी[3] मत गुरु मार यो बाण तुम कसी,
तन को नजर नहीं आवै अहा रे जसी[4] कलेजा म माल[5] घसी ।
छुरी नी मारी कटारी ना मारी हां रे कहां लगाउं दवा घसी,[6]
कहे जण 'सिंगा' सुणो मनरंगा थारे
थारा सबद[7] की बाणी घसी ।१७।

---

१. गुरु-दीक्षा के समय की गई प्रार्थना ।

२. पपीहा ।   ३. कसकर ।   ४. जैसी ।

५. भाला ।   ६. घिसकर ।   ७. उपदेश के शब्द ।

अहो मन म्हारा काई मूल्यो भरमण माहीं,
जी कारण नर जाय तीरथ थ उ तीरथ थारा घट माहीं,

उ तीरथ ख अपणों करी लेम्वों कि जैम भवरो रह्यो बिलमाई,
आगम घाट तिरबेणी तीरथ व कासी ध्यान लगाओ रे।

गंगा जमुना सरमती रे उ तिरवेणी म नहाओ रे,
अजपा उपर एक मुकाम यहां एक जोत झुलकती।

अनहद सबद बजे चौघड़िया थारी भंवर गुफा के माहीं,
गुरु परताप सादु की संगत धन सिंगा' जस गाई,
हद छोड़ बेहद को ध्यावे दुख जम काल नी खाई ।१८।
सकल भरमणा सारा साधो पहेचाण बिना अंधियारो,

पांच और रहे घट भोतर कहिए मन का सूत्र लावे।
कांची माटी मांहा घड़िया ताहि कहे नर न रा,

पहाड़ फोड़ कर पथरा लाये घम्मण है घम ई।
देदे ठस्सा बरतन घड़िया ताहि कहे नर माया रे,

आकास बरसे धरती झेले भरा हो जल बिम्ब पानी।
गंगा यमुना ये नाव नदी का ताहि को तीरथ ठानी,

आपन समझे औरन को समझावे बिना रोजगार को खाये।
कोरो कागद काला रशाही ताहि कहे पुराणा रे।

कहे जण 'सिंगा' सुण भाई सादु
सतगुरु की पहिचाण बिना अंधयारो ।१६।

चढ़ी जा सोहंग धारा रे मन तू क्यों मारा मारा,
तज दे कपट अटारी महल पे जा बैठे रे गंवारा।

---

१. गुरु-दीक्षा के समय की गई प्रार्थना।

वहां का खेल निराला देखो यहां का है झूठा पसारा।
चढ़ी गमन मगन हुई देखो बहती तिरवेणी धारा,
उस धारा में न्हालो धोलो फिरणा नहीं लागे किनारा।
बीच तिरवेणी सुमरण करले जपले सोहम प्यारा,
वो है सो तू है, तु है सो वो है रख निश्चय निरधारा।
ये है तन्त संत नित प्यारा रख निश्चय ये धारा,
कहे जण 'सिंगा' सुणो भाई सादु हरि भजन का प्यारा।२०।

संगी हमारा चला गया हम भी चालण हारा,
पैंडा[1] था सा उठ गया चलणा निरधारा।
एक साथ दोनों गये दो से गये चारा,
चार जान पांचों गये गयो सब संसारा।
कुड़ा कपट को छोड़ी देव अनुभव पहले लेणा,
खात्या नाल्या[2] त्यागी देव सरवर जल पीणा।
ये जल बसे अमीरम हलका फुनवासा,
आगम पं छम की गगन वही जैसा मदमाता।
कहे जण 'सिंगा' म हे मिला रे मनरंगा,
अष्ट कमल का फुलणा काटी दिया रे जम का फंदा।२१

बिन सतगुरु पहेचाण मेरो दिल नहीं माने नहीं माने।
आतम तंत भेद नहीं जाणे फोकट तके विराणा,
जो घट भीतर साहेब बसे है वाको नहीं पहेचाणा।
न्हावे धोवे तिलक लगावे बाचे वेद पुराणा,
आपही गावे लोग रिझावे झूठो तंडे टाणा।
तीरथ बरत और करे पारथेसर पूजे देवा देवी.

---

१. सहारा।
२. छोटे नाले।

ये देवा तेरे काम नी आवे झूठी मांडी सेवा।
सकल भरमणा छोड़ो बंदे ऐसी झूठी आसा,
सतगुरु 'सिंगा' इ वचन सुणीन मुखड़ो हुयो उदासा।२२।

मन तू अमोल वाणी बोल,
थारो तीन लोक म मोल।टेक।

ओहंम सोहंम दो पलवा बणाया,
निरगुणी उतर से तौल।

तन मन धन का बाट बणाया,
सुरत मुरत सी तौल।

आठ नौ मास गरभ म राख्यो,
कलु म झूठ मत बोलो।

ये काया का दस दरवाजा,
इधर-उधर मत डोल।

भवसागर अथाय भरो है,
सत का पलवा तोल।

कहे जण 'सिंगा' सुणो भाई साधु,
अमर वचन नित बोल।२३।

अहो आत्म ज्ञानु न पावे तब लग मुक्ति नहीं मिले,
मन भारी तन बस करो किरया करम कहाओ।
करम-सी मन शुद्ध होत है तब ओ सन्त कहाओ,
औंधा कुलुप[१] अड़िया बिन सामरथ कयसा खुले।
माया मल भगणी निश्चय बागड़[२] लावे,
वो वधिक जणी न वधकी जीवें त्रिया सुताहार खावे।

१—[illegible]   २—भाषा।

सोल[३] सुहागण सुन्दरी नव बैठी कुवारी रे,
असी हरीजन तू दूर रहे तेकासी पार हुजो रे।
कहत-कहत जुग गया तो भी चेत न पाया,
कहे गुरु 'सिंगा' अपणा क्या गया ओ नर जम का
हात बिकाया।२४।
खेती खेड़ो हरि नाम की जामें होवे लाभ,
पाप का पालवा कटाड़ जो काटी बाहेर राल।
करमन की कासी ये चाड़ जो खेती चोखी हुई जाय।
मन रे पवन दुई बल दिया सुरती रास लगाय,
प्रेम पीराणी कर धरो ग्यानी आर लगाय।
वो हुंग परवर जू पजो सो हुंग सरतो लगा
मूल मंत्र बीच बीव जो खेती लड़ झुम थाय।
सत का भालो रोप जो धरम पयड़ी लगाय,
ग्यान का गोला चलावजो सुंवा उड़ी-उड़ी जाय।
दया की दावण राल जो भवरी फेर न होय,
कहे जण 'सिंगा' पहेचाण जो आवागमन नहीं होय। २५।
लहेर-लहेर कर चला अब नहीं आणे का आणे का,
करो कोई लाख उपाय फिर नहीं रहणे का रहणे का।
दस दरवाजा प्रकट भई दूजे तीन ख कुलुप लगाई,
उ तीनई म उपर को खोजो अरे गुरु वही सबद है सार,
अब नहीं आणे का आणे का।
बंकनाल से अमीरस पीना तिरवेणी में नहावण करणा,
सींग गरजना गाजे जहाँ बिष अमरत बरसाद।

३—सोलह।

बिरला जण इ बरसा म भींज,
जैम हीरा लाल जवाहीर गूँज,

अब नहीं आणे का आणे का।

अनघड़ मुरली गगन की उठे छत्तीसों राग,

बिना नगर आबाद बस्ती,
बिरला जण फिरता गस्ती,

कहे गुरु 'सिंगा' सुणों भाई साधु सोहंग शब्द है सार।

अब नहीं आणे का आणे का।२६।

चढ़ी जाओ हम सीधी धारा,
बंकनाल उलटी कद चाले मेंढक रवि ससिधारा।
सुकमण नार सासरो निरमल वाही में सिरजनहारा।
दिल दरियाव अमरत मीठा ये सबको लगता प्यारा,
और जल है सब समता का घट-घट का है न्यारा।
ज्यों मछली जल में पहरे ज्यों पहरे संसारा,
पर ढीमर डाले जल माहीं सिर पर काल का डेरा।
अलंक निवारा अलंक में पारा याही में सिरजन प्यारा,
कहे जण 'सिंगा' सुणो भाई साधु प्राण देह से है न्यारा।२७।
काया में गुलजार बागों मत जा तेरी काया में गुलजार।टेक।
मन माली परमाद लेकर संयम की बात।
दया पौद सूखन नहिं पावें क्षमा नीर ले डार।
करनी क्यारी बीज की रहनी भई रखवार।
दुरमति काग बाग में बेठे फिर क्यों नहिं देत बिडार।
चित चम्पा बुध मोगरा फूल रही फुलवार।
मुकत कली को नवैर के गुम्फ पहने गले हार।
काया नगर गुलजार है महिमा अपरम्पार।

कहें जन सिंघा सुनो भाई साधो भक्ती लागो ख्वार ।२८।
दान करो नाहीं पुंन रे सुमरण की सरवर न पावे ।टेक।
धन चाहो तो धरम करो मुक्ति चाहो भजो राम ।
दोनों वस्तु विचार के थारा मन चाहे सो लेव रे ।
तीरथ करो चाहे व्रत करो रे कर पथरा की सेव ।
इनसे कारज न सरे तुम पूजो आतम देव ।
पंढरपुर में विमल सेठ देत तुलावा दान ।
अर्थ नाम केवट तरिये से गाले सबके मान रे ।
कुलमा तो खेती करे पालन को परवार रे ।
कहें जन सिंघा सुनो भाई साधो जासे नहीं रीझे करतार रे ।२९।
मनुआ डारि सोहागी तोहे कैसी दुरमति लागी । टेक ।
मेरी मेरी करत बहुत दिन बीते अजहु न चेत अभागी ।
झीना रूप अनूप ही दीखे क्या सोवे उठ जागी ।
गाज न बीज पवन नहिं पानी जहाँ बिन बादली भर लागी ।
कह जन सिंघा सुनो भाई साधो सिंघा देख भय भागी । ३० ।
झूठा जाप जपो मत कोई पहिचाने गति होई । टेक ।
भोपा घुमावे भूत मनावे रमन धमन दोई जागे ।
भैरों आवे करे लुटावन पत्थर से पूत मांगे ।
कृष्ण महादेव आप कहावे सोई बसत पराया रे ।
जो कोई उनका सुमरन करे सो भी मुक्ति नहि पावे रे ।
शिव सनकादि आदि ब्रह्मादिक सोई पार नहिं पाया रे ।
अपरम्पार भरे जग माहीं सतगुरु को बतलाया रे ।
बिन देही का साहब मेरा व्याप रहो घट माहीं रे ।
कहे जनि सिंघाजी सुनो भाई साधू सिंघा सहज समाया रे । ३१ ।

भजन है तीन लोक से बड़ा जिनके सिर पर साहब खड़ा। टेक।
धरती माता कुंजर कहाये आकाश सत्त पर खड़ा।
भर भर प्याला पिलाया सतगुरु ने अरे वो सुन्न शिखर गढ़ चढ़ा।
सिंघा स्वामी बड़ा शक्त है जाय ब्रह्म से अड़ा।
कहे जन सिंघा सुनो भाई साधू जिनका अटल झंडा गड़ा।
अवगुण बहुत कियो गुरुजी अवगुण बहुत कियो। टेक।
नित उठी पांय जमीन पर धरीयो कहीं येक जीव मर्‍यो।
नव मास माता गरभ में राख्यो बहुतक दुख दियो।
बाट चलन्तो तिरिया हो निरखी मंसा पाप कियो।
कहे जण सिंघा सुणो भाई सादु गुरु का चरण छियो। ३२।
रतनों की माला बिरला संत कोई पाई। टेक।
मूल कमल चौकी बणी पूरण धर्म शाला।
वाही में आप विराजिया गुरु दीन दयाला।
पांच तत्व का बंगला हीरा जड़े हो अपारा।
वाही के उजियारा में छवि निरख्या हारा।
चंद्र सूरज मण क्या करो सोहं सुरति का धागा।
हर दम वाही को फेरजो भजो अजपा की माला।
चार नयन दा अंतरा अंतहि खोजो भाई।
भुक्ति सुधारो सिंघा आपणी अनहद के माहीं। ३३।
निकट भाजे नैना जहां सहज का चालणा। टेक।
ईंगला नाहीं पिंगला नाहीं अरे ओ नहीं सुखमणा ध्याना।
ओहमं नाहीं सोहमं नाहीं जहां नहीं मूल म ध्याना।
जोति नाहीं मोती नाहीं नहीं द्वादश ठाणा।
कहे जण सिंगा सुणो भाई सादु जन तत्त वस्तु पहेचाणा। ३४।
तुझा सरीसा करीन रे साईवा भवसागर पार उतारील। टेक।
आदि अन्त न तुझा सरीसा देह धरील बदलाणारे।

जहाँ देखूँ तहां तूही दिखावे मन उपजी विस्वासा रे।
ज्यों ज्यों मच्छी जल में पहरे ज्यों पहरे संसारा रे।
ज्यों खोजूँ त्यों नजीक आवे नही तो लिना पैयाला रे।
तुझ में खाणा तुझ में पीणा तुझ मैं लेणा देणा रे।
जहाँ देखूँ तहाँ तूही दिखावे आखीर का मंजाला रे।
तेरे कारण लीवी फकेरी करता तेरी आसा रे।
कहे जण सिंघा सुण भाई सादु जोत म जोत मिलाणा रे। ३५।

अबको जलम सुधारों गुरुजी मेरो अबकी जलम सुधारो।
नहीं भूलूं जस तेरो गुरुजी मेरो अबको जलम सुधारो। टेक।
गुरु बिन सहाय करे कौण जिव की तीरथ बरो न हजारो।
पति बिन सोभा क्या तिरिया की क्या विधवा को सिनगारो।
घड़ी दुई घड़ी में करूँहूँ विनती वेगि ते सुणों हो पुकारो।
आप गुरुजी मेरे पर उपकारी अवगुण चित न धरो।
गुरु बिन ज्ञान ध्यान सब फोकट फांकट नेम हजारो।
बैकुँठ से पीछा फिरी आया सुकदेव नारद प्यारो।
राम मिलण की राह बताओ ना मेटो मन मेरो।
गुरु सिंघा को दरसन दीजो सिर पर पंजो थारो। ३६।

मैं तो हुवाली बन तेरा हो राम।
तू सच्चा साहेब मेरा हो राम। टेक।
जीन लगाम मन उतरनी पावे चलणनी पाव घोड़ा।
निस दिण रहे धणी के आगु सनमुख अकेला लड़े हो राम।
पांच हथियार जुगुति करि राखो ठग ठाकुर भव तेरा।
गढ़ किल्ले की करो रखवाली लुटण नी पाव गढ़ डेरा।
दिवान मंगाले कलम बुलाले पट्टा लिखाले घणेरा।
अमरापुर की जमीन लिखाले बैकुँठ का बसेरा।

कंकर चुनाले महल बणाले मंजुर लगाले घणेरा।
कहे जण सिंघा सुणों भाई सादु पहला मुजरा मेरा। ३७।

सुरत सावला साहेब मेरा पड़पंच का रखवाला रे।
किनसे हमने रोस करणा किनसे करना अलंवारी रे। टेक।

आप हात के रंग बणाव आप बणाव फुतलई रे।
फुतलई म तो तार पेराव फेर अलवई सलवई रे।

पिंजरो बणायो जेम तोतो मेल्यो खाव नीर दम दालई रे।
तोता खतो दियो उड़ाई पिंजरो दियो ढोलई रे।
उज्जड़ खेड़ा फिरी श्रो काया जन्म काल का कोमई रे।
घर भेदु हो गाँव लुटाया सूना मंदर दिया बालई रे।
भजन आरती पुरा पूजा नित सुमरा बन मालई रे।
बाबा सिंघा अरज करता राखी लेव चरण की पालई रे। ३८।

माजा माहेगा बन्दो जा इसको निवाई। टेक॥
चंदा का तो छाया करील सुरीया करीला गायत्री।
सवा हाथ अंचोलो करील सतगुरु ख लइल संगाती॥
ध्यान को तो दीवलो करील मनसा करील बाती।
राम नाम को सुमरण करील चढ़ीजा निरगुण घाटी॥
ये काया का दस दरवाजा दसई ख ताला कुची।
दस दरवाजा बन्द किया निकल गयो मुवासी॥
कहे जण सिंघा सुणो भाई सादु जात वरण का गवलई।
तन्त वस्तु ते न निकाल ली पिंजरो दियो ढुलकाई। ३९।

भंवर नहीं आवेगो रे गंवार भया क्या जनम अवतार। टेक।
पाणी सी पिंडनी बुझे लुदरे मिले नहीं मांस।
उपर रंग सुरंग जड़यां हैं कारीगर करतार॥

अंधे को क्या आरसी रे क्या बहरे को बात।
आणी बुझी नर कुआ पडयो रे दीपक लीनो हात ॥

अंधे ने विस खाविया कुमत जिनकी साथ।
सुवा भगत नर चालीया यही बड़ो संताप।

खटु रस भोजन जीमील प्राणी दही दुध और भात।
तातो पाणी तुख दुलभ हुसे फिर नहीं होय जलभार।

कहे सिंघा तन खोजिया कितनोक है संसार।

तेल खुट्यो बाती बुझी मंदिर पड़े अंधियार ।४०।

इस विध राम रिझाओ रे साधो तासे भवरी जलम नहीं आव ।टेक।
जल बीच लकड़ी लकड़ीया पर मकड़ी मुखसे तार बहावे।
आगु आगु तार पेछु चरण बढ़ावे तुरत किनारो पावो रे साधो।
जैसी पणिहारी चली पनघट पर सखिया म दे रही ताली।
आंख गाल बीच करत बिलोला सुरता घड़ ठहराव रे साधो।
जैसी नटनी नये जो वास पर धा था ढोल बजावे।
लोग हंसे पर नटनी नहीं जोवे सुरत बाम ठहरावो रे साधो।
सुरत सुहागणी नार सुन्दरी याही ख गगन चढ़ाओ।

कहे गुरु सिंघा सुणो भाई साधो तब नर पावगा ठिकाणो ।४१।

अब काहे को कलपे मुरख कोई परदेसी आया रे। टेक।

एक बूँद की रचना सारी गया बूँद बहुतेरा रे।
गया बूँद का खोज न करिया रह्या बूंद खूं रोया रे ॥
माता कहती पुत्र हमारा पुत्र कहे मेरी माता रे।
मेरी मेरी करे बहुतेरी संग कछु व न लाया रे ॥

कहा करे सीपन का मोती लाखन हीरा खोया रे।
सांच कहूं तो कोई नहीं जाने जनम नहीं कोई संगी रे ॥

कहा भये असरापे पहरे आलम दुनियां नंगी रे।
चन्द्र सुरज दो बाजू कहिये कोटि भानु उजियाला रे ॥
कहे जन सिंघा सुणो भाई साधु भंवर जनम नहीं आवे रे ।४२।

अन्त को तरणा नित नाम सुमरण करणा। टेक।
रंग सरूपी बनी सुन्दरी माया देखी मत भूलणा।
ये पवलीयो फीर नहीं आवे तुम लख चौरासी फिरणा।

धन माल का भरा खजाना पल में होत बिराणा।
उल्टी पवन चले घट भीतर तुम उनका करो ठीकाणा।

इतनो जनम गयो वहोतेरो माया माही फन्दाना।
हरी को नाम लियो नहीं सरवण तुम वेस धरि धरि मरणा।

साधु सन्त के सरणे रहना उपाय कवहुंन करना।
कहे जन सिंघा सुणो भाई साधु तुम रहो राम के सरणा ।४३।
चेत रे म्हारा चतुर जीवड़ा मत म्हारो सामरथ दीजे रे। टेक।

पहला पहर रे जीवड़ा सुन्न मंडल म रहजे रे।
धर्म वृत्त पर बासो कीजो मन इच्छा फल पावजे रे ॥

दूसरा पहर रे जीवड़ा कुंवर से हट कीजे रे।
बलीवत बली जोधा मारजे पांच इन्द्री बस कीजे रे ॥

तीसरा पहर रे जीवड़ा सतगुरु बिना मत रहजे रे।
पांव लाग परिक्रमा दीजे दिल दीदार को पावजे रे ॥
चार पहर की रात्रि सिंघा सतगुरु बिना मत रहजे रे।
जम का दूत तो जाती रहसे भवसागर पार उतरजे रे ।४४।

समझ म्हारा वीर मनवा समझ म्हारा वीर। टेक।
ये भव सागर पार उतरना जाना पहला वीर।
आठ नौ मास गरभ में राखे अटल भजो रघुवीर।
कलु काल की घाटी चढ़ी हुओ है वे पीर।

मन दूत की नाव बनी है लोभ भरयो भरती है।
झूठा पुतला बण्या खेवटिया किस विधि उतरेगो पार।
लाल खंभ से खेंच बंधोगे कौन चढ़े तेरी भीड़।
गंगा यमुना नहातो डोले मलीच जड़यो शरीर।
कह जण सिंघा सुण भाई साधो गुरु चरण के तीर। ४५।

तू चढ़िजा सोहं सीधी धारा रे मन तू। टेक।
दिल दरियाव उमंग जल गहरा लहरा उठत अपारा।
सोई नीर सकल भवसा में दिल रह्यो न्यारा न्यारा।
वंकनाल की तू सुध कर भाई त्रिकुटी संगम मेला।
सुखमन नार दोऊ सांस बरावर वही थारो सिरजण हारा।
मन मछुओ माया की जाल म उलझ रह्यो संसारा।
ढीमर जाल झपट कर डाले हद छोड़ जम घेरा।
अलख म खलक और खलक म पारा छिन म मिले करतारा।
कह जण सिंघा सुण भाई सादु पल में करे निरवेड़ा। ४६।

क्यों करतो गुमान मूरख मन धारी उमर चली हैवान। टेक।
नहीं कछु लाया नहीं ले जाएगा क्यों करतो गुमान।
ये गुमान म सब जग बहियो अब रट गुरु को ज्ञान।
धन चाहे तो सो धरम करले मुक्ति चाहे तो भजो नाम।
संकट पड़े से प्राण दोहेला अवसर आवसे काम।
कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी धर्यो रह्यो एक ठाण।
चलणा की विरिया काम नी आवे यई माया को नाम।
हाल दीवाणा कोई माल दीवाणा जोबन दीवाणा गुलाम।
कहे सिंघाजी हम नाम दीवाणा पाया गुरु की धाम। ४७।

ऐसो जंत्र बजायो मन रे ऐसो जंत्र बजायो खलक तमाशो आयो। टेक

संभु सरीखा जोगी कई एक ब्रह्म सरीखा ब्रह्मचारी।
नारद सरीखा बड़ो उ ज्ञानी कृष्ण जी भयो अवतारी।
सात समुन्दर अंग पसीना बहु तक हैं नन्दी नाला।
अठारई बार रामायण कहिए सिर मटकी का भारा।
खुटी गाड़ी न तंम्बू तणाया दूकान लगई न्यारी न्यारी।
कहे गुरु सिंघा सुणो भाई सादु तम्बु म खलक समायो। ४८।
तुम बिन मेरे और न होगा गुरुजी शरन तेरी हूँ जी। टेक।
जब हम तुमरी संगत कीनी जब तुम पकड़ी बाहीं।
घट घट में तुम रखवारे जब सुमरूँ जब माहीं।
तुमरी संगत हम सुख पाया जरी हिरदे की काई।
दुविधा दुरमत दूरि करी घट घट रहा समाई।
अबके गुरु जी शरणों राखा ये ही प्रण है मेरा।
भूल चूक की राह लगाओ दीजो ममसर मेरा।
भक्तवत्सल बिर्द कहायो अबकी न लेहीं ज्ञानी।
कहे सिंघा सुनो भाई साधू तत्व ब्रह्म पहिचानी। ४९।
अटल तेरी बादशाही रे मनुआं अटल तेरी बादशाही रे। टेक।
मन अहंकारी घोड़ा करले पवन की कर असवारी।
चन्द्र सूरज दोई मोर्चा करले बीच में लरे सिपाही रे।
सार शब्द की झलका करले बखतर माती पहराई रे।
अनहद नाद जुझ ऊ बाजे फौज लई हैं मारी रे।
चार खंट का बादशा तू ही और दूजा नहिं कोई।
पकर मंगावे अदल चल वे जाकी फिरे दुहाई।
इतसे बोता उतसे तुनता निरफल कमू न जाई।
कहे जन सिंघा सुन भाई साधू उनकी सुफल कमाई रे। ५०।
कायागढ़ का तुम देखो तमाशा लड़का। टेक।

कायागढ़ में बड़े बड़े जोधा शूरवीर हो लड़का।
कायागढ़ में बाजे बजत हैं अनहद का हो झड़ता।
कारा पीरा रंग अपारा बिजली कैसा तड़का।
कहैं जन सिंघाजी सुनो भाई साधू वहाँ पंचरंग निशान उड़ता।५१।

कोई कछु कहे मन लागा। टेक।
मेरा मन लागा सत्त नाम से हट कट लोग अभागा।
जरसे अगन में कंचन डारा सोने में डारा सुहागा।
हन्स की चाल हन्स पहचाने क्या जाने कारो कागा।
कहैं जन सिंघाजी सुनो भाई साधू जीव ब्रह्म हो जाएगा।५२।

मन तू कैसा निर्भय सोवे कोई यहाँ अपना नहिं होवे। टेक।
काम क्रोध दोइ अतिबल योधा ये विष के बीजा बोवें।
भटकत भरमत जनम गमाया तेरी आई बाजू क्यों खोवें।
पांच तत्व की देही बनाई तू जरा मूर से खोवे।
कहैं जन सिंघाजी सुनो भाई साधू हरी बाजू को फेरे।५३।

हमारी एक पलक की बात मूरख जन्म अकाज। टेक।
हाकम तो मोरे नहीं चोरे विचारी घाट।
दूध दुहायो भैंस कोरे भैंस विचारी नाठ।
पानी तो बहवे नहीं रे बहे विचारो खेत।
कपड़ा ने धोबी को धोया धो धो किया सफेद।
गधा तो धरती चले हाथी उड़े रे अकाश।
श्रवण नयन नासिका मार्ही नहीं रकत नहिं मांस।
आवाज तो सब कोई सुनेरे पंछी नहीं दिखाय।
बिना सीप मोती ऊपजे तुम पहरो नयन मंझार।
एक ब्रह्म की दुनिया सारी बिन जल रही समाय।

कहैं जन सिंघा सुनो भाई साधू देखो आप में आप । ५४ ।

चढ़ जा सीधी धारा मन रे तू चढ़ जा सीधी धारा ।
तू चढ़ जा सोहंग सीधी धारा जहाँ बरसत नूर अपारा ।टेक।
दिल दरियाव अमीरस मीठा और नीर सब खारा ।
एक बूँद का सकल पसारा छुटक रहो न्यारा न्यारा ।
मन मछवा मोह की जाला उरफ रहो सन्सारा ।
ढीमर जाल समुद्र झकोरे काल ने जाय पछाड़ा ।
मन मछवा चढ़ा सीधी धारा ब्रह्म का किया विचारा ।
अरघ उरघ दोई रोल बने हैं कोई समझो समझन हारा ।
चुन चुन पन्छी सेवा कीनो तुमरो पार नहिं पाया ।
कहैं जन सिंघाजी सुनो भाई साधो छिन में ब्रह्म निहारा । ५५ ।

सदा मन आनन्द भजले हरी ऐसो जन्म न आवे फिरी । टेक।
चार खान चौरासी भरमों जब नर देही धरी ।
जा देही में सुमरन करले सोई बात है खरी ।
वा दिन को सुध भूल गयो रे रहो उध मुख झूली ।
त्राह त्राह करता घट भीतर दश उँगली मुख धरी ।
गर्भवास से बाहर आया पाई आनन्द घड़ी ।
जो मांगा सो दिया गुरु ने तभी न मन्सा भरी ।
कर से तो तू धन्धा कर ले पग से पन्था करी ।
रसना नाम सुमरले बन्दे फिर न आवे तेरी घड़ी ।
जागत सोवत ऊठत बैठत राम सुमर घड़ी घड़ी ।
कहैं जन सिंघाजी सुनो भाई साधू इस विध जायगा तरी । ५६ ।

अजपा जाप दुर्लभ है सुमरण जिहिं आवे ।टेक
बिन मुख से रटबू करे जिभ्या न डुलावे ।

कहैं जन सिंघाजी सुन भाई साधू रे गुरु अटल खजाना पाया । ६० ।

मोती वरणा कीना । माजा मोती वरणा कीना ।
ऐसी वस्तु पहचाणों संतो । जरा मरण भव तरणा ॥ टेक ॥

सतगुरु से सौदागर कहिये । सेवक से व्यापारी ।
जिमों असमान वीच भरा खजाना । निरख-परख कर लेना ।

भेख लिया पर भेद न जाना । वैल फिरे ज्यों धाना ।
परदे अंदर साहब खड़ा । उसको नहीं पहचाना ।
मूड़ मुड़ावे जटा रखावे । नगर फिरे ज्यों भैंसा ।
चमड़े ऊपर खाक लगाई । मन जैसा का तैसा ।

रास पूछकर नाम सुनावे । सो ही गुरु नहिं करना ।
अखंड साहब को खडत बतावे । गुरु चेला दोई डूबना ।

गले में कफनी माथे टोपी । स्वामी तुरत कहाना ।
देश छोड़ परदेश को जाना । दुनियां ठगकर खाना ।

कहैं जन सिंहाजी सुनो भाई साधू । झूठ कभी नहिं बोलना ।
सच्चा साहब सिर पर राखो । इस विधि पार उतरना । ६१ ।

मन सागर दरयाव है । उठे रंग फुआरा ॥ टेक ॥
सुफल बाग मनरंग है । फूले फुलवारा ।

ब्रह्म बीज निज बोइया । तन तत्व का बयारा ।
प्रेम प्राप्ति जल सींचिया । खड़ा बाग तुम्हारा ।

भांति भांति के वृक्ष हैं । न्यारा न्यारा रंग ।
नाना विधि सब फूल फूलिया । चढ़े देव के अंग ।

कल्प वृक्ष करता धनी । फल लागा मोती ।
भंवर गुफा बैठकर । निरखे निर्मल जोती ।

ब्रह्मगिर ध्यान में । मनरंग बाग लगाया ।
ताकी छाया बैठके । सिंघाजी पद गाया ।

बिन श्रवण धुन सुन पड़े बिन नैन निहारे।
इंगला पिंगला के मध्य में पवन चढ़ावे।
त्रिवेणी के घाट पै स्नान करावे।
पश्चिम दिशा गगन चौकी खिड़की उघड़ावे।
ता मध्य एक कोठरी जामें ध्यान लगावे।
चाँद सूर्य ऊगे नहीं सांई रूप कहावे।
कहैं जन सिंघाजी जा गुप्त रहनी फेर जन्म नहिं आवे। ५७।

जीवता नहीं मुआ हरिजन जीवता नहीं मुआ।
नर तोहे बार बार दुख हुआ। टेक।
काया कुसम्भल ऊभट घाटी जहाँ अमीरस धारा चुआ।
अमीरस छांड़े विष को धावे ऐसा अहमक हुआ।
साहब देखा आसहि पासा रे जब जम से खेले जुआ।
इस घट भीतर पांच प्रपन्ची रहता रे इनको बांध डालो कुआ।
कहैं जन सिंघाजी सुन भाइ साधु पियो अमृत दुआ। ५८।

तुम सदा अमीरस पीना सन्तो नहीं मरना न जीना। टेक।
थारा मन तो कटाक्ष फैलारे जाहे ले असमानी धरना।
निर्गुण सागर चहुँ दिशा भरिया जाहे नैन नासिका से पीना।
मान गुमान करो मत कोई रे जा दुनिया अब जवैना।
घर का चोर घर ही में मूसेरे तुम जतन-जतन से रहना।
कहैं जन सिंघाजी सुनो भाई साधू रे तुम अमर होय के रहना। ५९।

मन मेरे नजरों मोती आया सतगुरु साहब ने बतलाया। टेक।
बारीक झीना नजर नहिं आवे जित देखों जित छाया।
कंकर पत्थर की मत कर आसा रे गुरु हीरा लाल परखाया।
भरा दरयाव थाह नहिं आवे कोई मर जीवा होकर लाया।
लाखन ऊपर लाखन जड़िया रे वो गगन मण्डल में छाया।

ओहंग सोहंग दोई मूल है म्हारे साईं सामने भूल ॥ टेक ॥
जब लग भूला नजर नहिं आवे लख चौरासी डोल ।
बारह सोलह डोर लगी है अरे वो पश्चिम किवरिया खोले ।
पाँच सखी मिल मंगल गावें मनुआं ताल बजावे ।
कहैं जन सिंघाजी सुनो भाई साधो गुरु अष्ट कमल दल फूले ।६२।

मैं क्या कहूँ गरीब बिचारा मेरा कछु न चलता सहारा ॥टेक॥
असमान सा गैबी असमाना बीच गैब का डेरा ।
मनुआं मेरा गस्ती जागे जहूँ गहरे घुरत नगाड़ा ।

जिमी का नीर असमान चढ़ेगा पीवेगा कोई प्यारा ।
बिन बादल जहाँ बिजली चमके बरसे अखंड धारा ।

चाँद सूरज जहाँ कछु नहीं दीसे कोटभानु उजयारा ।
जिनके नैन सुन्न में लागे मृतक दीसे सारा ।

मनुआ भेस क्या अगवानी निरखे अपरम्पारा ।
कहैं जन सिंघाजी सुन भाई साधू छिन में ब्रह्म निहारा ।६३।

मुलक तेरा मैं जागीरदार पांच तत्व जीव बड़ा सिरदार ॥टेक॥
पूरण ब्रह्म है सचराचार चाँद सूरज बीच सोहंग तार ।
नाहक मनुआँ लै सिरमार न्यारा है करनी करतार ।
हाथी घोड़ा माल खजाना संग न चले कोई मरतीबार ।

पोथी पुराण और आचार लाद चला खर सिर ले भार ।
कहैं जन सिंघाजी पुकार पुकार देह धरी नहिं दूजी बार ।६४।

निर्गुण धाम सिंघाजी । जहाँ अखंड पूजा लागी । टेक ।
जहाँ अखंड जोत भर पूरे । जहाँ झिलमिल बरसे नूरे ।
जहाँ ब्रह्मज्ञान भर पूरे । जहाँ पहूँचे बिरला सूरे ।
कोई दरशन पावे भागी ।

कोई अकल करो व्योपारी। घट घट में सचरा चारी।
जहाँ आदि अन्त ऊँकारे। जहां सोहंग का विस्तारे।
माया ममता भरमना भागी।

तुम तन काया को खोजा। खोजे से आगम सूजे।
जहां झीना मारग पाया। जब निराकार को धाया।
निर्गुण की महिमा जागी।

सूक्ष्म कमल के माहीं। अनहद की नाद सुनाई।
जहाँ रम रहे सिंघाजी जाई। कट करम की काई।
जब प्रीति पूरबली जागी।६५।

क्या खूब बनी रे अबदा गिरी। ऐसो जन्म न आवे फिरी। टेक।
नौ महिना में बनी अबदा गिरी। क्या फकीरी तेरी।
अबदा गिरी के अन्दर। क्या करे रे मुसाफिरी।
बाजे तो जुझाऊ बाजे। अनहद बाजे तूरी।
खेंच खड्ग मैदान में ठाढ़े। बांधी ज्ञान की छूरी।
बजा नगाड़ा जीत का। तोपें झालर गहरी।
कायागढ़ की कर रखवारी। बैकुंठ की जागीरी।
सुमत तो सतगुरु ने दीनी। कुमत डारो दूरी।
कहें जन सिंघाजी सुनो भाई साधो। इस विधि जायगा तरी।६६।

संत सिंघाजी के समाधि-स्थल पर गाये जाने वाले संध्या-कालीन आरती के पद :—

संजोंणी

थारो दूध छे केवल ब्रह्म संजीवन हरि की काम धेणु हो। टेक।
कामधेनु तो आकाश रहती निर्गुण चारो चरती।
त्रिवेणी को पानी पींती जहाँ उन मुनि करती गुठाण।
सांझ पड़े संजोणी घर आवे ओहं हुकरे वालो।

मन बाछरू उलट के ध्यावे जिनने मेल्यो ते प्रेम को पाणी ।
सतगुरु आसण दुहन बैठे तुरिया दुहणों हाथ ।
अनहद के घर घुम्मर बाजे ऐसे दुहते अखंड दिन रात ।
ब्रह्म अगण पर दूध तपायो क्षमा शान्ति लौ लावे ।
गुरु शब्द को दही जमायो ऐसे निश्चय का दिया है जमाण ।
चन्द्र सूर्य की रई बनाकर घट अन्दर लौ लावे ।
दधी मथीणों माखन तायो निकल्यो ते सुमरण सार ।
कामधेणु सतगुरु की महिमा बिरला जण कोई पावे ।
कहें ऋषि सुन्दर गुरुजी की कृपा ऐसे जोत में जोत समाय । १ ।
जय जय आरती अलख निरंजन तन मन अर्पण करूँ दुख भंजन
। टेक ।

कर्म कपास करो हो मन वाती पांचों ही पतंग जले दिन राती ।
पोषन प्रेम चुवे पल पल में दीपक अखंड निरन्तर जलता ।
अनहद बाजा बाजे हो तूरा सेवक सेवा करत हजूरा ।
सहज ही झालर होय झनकारा देवा बिन देवल खण्डत है सारा ।
आरती तेरी तू मुझे भावे हर्ष हर्ष हरिदास गुण गावे । २ ।
ऐसी आरती करहु विचारी मदन मोहन हरने कियो विस्तारी ।टेक।
सब सगुण का थार सन्जोया तत्व त्रिगुण का तिलक लगाया ।
लख चौरासी फेरा हो डारा शब्द सोहंग बिच सुरत पुराया ।
गुरु गम ज्ञान का दीपक लगाया अलख पुरुष का भर्म जब पाया ।
कहें जन दल्लू कोई सतगुरु को ध्यावे जोनी संकट बहुर न आवे । ३ ।
सदा तुम आनन्दा मूर्ति सत्तधर्म परमाण अनभव की आरती जयदेव ।टेक।
काया कन्चन थार जामें पाँच पच्चीस बाती ।
मन दियला लगी जोत बिन तेलों बाती ।
घन्टा बाजे अनहद नाद सुरत निरत जहाँ रहे लिपटी ।
त्रिवेणी के घाट भंवर गुफा भारी ।

कीजे अमिरस पान स्नान कीजे नित उठी।
गगनो में प्रकाश धारा बहे उल्टी।
अष्ट पहर निस दिवस रटना लागी छै मोटी।
छै सौ इक्कीस हजार बिन जिह्वा भाखी।
अष्ट कमल निज धाम आत्मा झलके रवि शशि।
जो भेद जाने बिरला कोय ब्रह्मगिर कहे आरती। ४।

चलो सन्तो पावां हो दीदार सिंघाजी घर हरि को बधावनो ।टेक।
बाबा मनस जन्म दुर्लभ है रे गुरु आवे न दूजी बार।
जो पल नहीं आवे पाहुना तुम मानो बचन नर नार।
बाबा जिने गुरु गोविंद सेइयो वो तो उतरे भव जल पार।
धन करनी सतगुर की जिनने जीत लियो संसार।
दल्लू पतित की बीनती गुरु मोहे राखो चरण अधार रे। ५।

दरयाव के अंदरे लाल एक जुहरे ।टेक।
बिन पानी का सागर सारा झीना नूर बरसता सारा।
जहाँ मोती उपजे हीरे।
सतगुर जहाजा भर-भर लावे कोई एक भाग पूर्वला पावे।
जहाँ भरा माल अनमोले।
मन पवन की जहाज बनाई सुरत निरत केवटिया लागे।
जहाँ लगा प्रेम की डोरे।
कहें जन सिंघा मनरंग का चेला कृपावन्त गुरु है मेरा।
मन मगन भया यो प्राण नाचता मोरे।

आरती सिंघाजी महाराज की

आरती साहब थारी किस बिधि कीजे तन मन धन अर्पण शीषधर लीजै।
शीष होय तो फूल चढ़ाऊ चरण होय चरणामृत लीजै।

मुख होय तो मिष्टान खिलाऊँ झूठे देव सब पत्थर पूजें।
शरीर होय तो उपटन कीजे प्रेम सन्तोष सदा रस पीजे।
पाती न तोड़ों माहीं तुम देवा नाहक हतन अपना सिर लीजे।
आरती करहु अरथ तुम माहीं तीनों दरवाजा मिल अमीरस पीजे।
रूप न रेख देहधारी भी नहीं मुक्त निशान सिंघाजी अनहद बाजै ॥

समाधि के भजन

संत सिंगाजी-को गुरु मनरंगगोर का संदेश मिला कि अब सिंगाजी को देह त्याग कर देना चाहिये। इस संदेश को पाकर सिंगाजी अत्यधिक प्रसन्न हुए और उन्होंने जीवित-समाधि लेने की तिथि निश्चित कर ली। इस बीच जो वाणी उनके मुख से निकली उसे 'समाधि के भजन' कहते हैं।

नहीं लटूँ महाराज बाचा नहीं लटूँ। नहीं लटूँ गुरु देव।
महाराज बाचा नहीं लटूं ॥ टेक ॥
पाँव पलक की कछु नहीं सेवा। अखण्ड धुन पपहिया रटे।
महाराज बाचा नहीं लटूं ॥ टेक ॥
चाँद सूरज दूध से उजला। एम कांजी नहीं छिपे।
महाराज बाचा नहीं लटूं ॥ टेक ॥
चोरी चुगली हँसी मसखरी। हरिजन में नहीं खटे।
महाराज बाचा नहीं लटूं ॥ टेक ॥
कहें जन सिंगा सुनो भाई साधो। तन मन धन गुरु के पटे।
महाराज बाचा नहीं लटूं ॥टेक॥१॥

आवागमन मत कीजे रे म्हारा मन।
आवागमन मत कीजे। फेरा जनम मत लीजे ॥ टेक ॥
खारा जो खाय-खाय सारा जो भरिया। मच्छी को मेणु मत दीजे।

ओछो जल जहाँ तलफे मछली। जाय सरोवर घर कीजे।
एक साहूकार अनेक वैपारी। नेकी का सौदा कीजे ॥
जिसका खाना राजी होय रहना। वे भूल कभी मत हूजे।
तन से पलंग पर सेज बिछाजे। सुन्न में डेरा दीजे।
चाँद सूरज दोई तपें पोरिया। जहाँ जाय झन्डा दीजे।
कहें जन सिंगा सुनो भाई साधो। सतगुरु बिना मत रहजे।
परिक्रमा दइ-दइ पाव लागन कीजे। ज्ञान को घोर-घोर पीजे ॥ २ ॥

ऐसा मरना मरो भाई संतो। बहुर जनम नहीं धरना रे ॥ टेक ॥
और जन्म बहुतेरे हुँहैं। मानस जन्म दुहेला रे।
नर देही नारायन दीनी। निगुरा कबहूँ न रहना रे।
निगुरा आदमी पशु बराबर। और कहाँ लौं कहना रे।
बरन-बरन की गऊ दुहाई। एक बर्तन में धरना रे।
माखन-माखन संतों ने पाया। बर्तन को क्या करना रे।
नदी नाला सब जुड़ आये। तब दरयाव कहाना रे।
गंगाजी की मीठी महिमा। देशों देश पुजाना रे।
अगला आवे अगन का पूला। आपन पानी होना रे।
जान के अजान होना। तत्व लेना पहचाना रे।
संतों के आधीन रहना। उपात्र कभी न करना रे।
कहें जन सिंगा सुनो भाई साधो। साधू सदा दीवाना रे ॥ ३ ॥

अब काहे को तलफे रे। परदेशी जीवड़ा आया रे। टेक।
एक बूँद की रचना सारी। गया बूँद बहुतेरा रे।
रही बूँद की करले खोजना। अब काहे को रोया रे।
सांच कहें कोई मानैत नाहीं। नहीं कोई जीव का साथी रे।
कहा भयो अतलस के पहिरे। आलम दुनियां नागी रे।

जो कहें मेरी वो कहें मेरी। हाथ कछु नहीं आया रे।
सिप में मोती उपजो। लाखन हीरा खोया रे।

मात कहे जो पुत्र हमारा। पुत्र कहे मेरी माता रे।
जा ठगिया ने सर्व जग ठगिया। इनसे कैसा नाता रे।

चाँद सूरज दोई तपें बराबर। उनसे नहीं अंधियारा रे।
कहें जन सिंगा सुनो भाई साधो। जोही तत्व हमारा रे।४।

जीव मेरा बाच्छा सरदार। थारे बिन कौन लगावे पार।टेक।

जंगल काटा बस्ती कीन्ही। शहर बसायो सार।
चन्द्र सूरज दोई झन्डा रोपे। अरद-उरद बाजार।

तू मेरा बादशाह मैं तेरा काजी। मेरा कहा विचार।
जो चहिये सो डेरा भेजूं। क्यों करता उरझार।
बैठा हुकम तेरा चाले। अटल पड़ी खनडार।
रहयत तेरी तुझको सौंपू। मुलक किया उजार।

गैबी गोला तेरे छूटे। चोर भयो न्यौछार।
कहें जन सिंगा सुनों भाई साधो। लिया तत्व विचार।५।

जम से नहीं डरूँगा रे। हरी का भजन करूँगा रे।टेक।

और सकल कसबा के प्यादे। मैं सरकारी काजी।
काम क्रोध की गर्दन मारूँ। साहेब राखूँ राजी।

जिभि दुलीचा असमान समीना। बिना पूँजी का भरा खजीना।
नहीं डोरी नहीं खूटी। राह पंथ से छूटी।

शरण तुम्हारे खासे कपड़े। सुरत हमारी डोरी।
अन पावन की मोट जो बाँधी। भई पन्थ में चोरी।

पेड़ों पत्र कछु न दीखे। मूल न दीसे डाली।
बिना बेल की परमल फैली। देखो दृष्टी पसारी।

पानी से पतला पवन से झीना। बारीक नज़र नहीं आवे।
कहें जन सिंगा सुनो भाई साधो। सतगुरु आन मिलावे।६।

मत कर मनुआं दिला मिली। आखर चलना मुसाफिरी।टेक।
जब ही मुसाफ़िर रोटी पकाई। कछु खाई कछु बाँध लई।
जबही मुसाफिर कम्मर बाँधी। जबही साहब बाँह गही।
अस्सी कोष की झाड़ी पड़त है। पत्र झड़े जहाँ झड़ा झड़ी।
कहें जन सिंगा सुनो भाई साधो। दर्शन करलो घड़ी-घड़ी।७।

जप लेप रे हरी नाम मन मूरख। जप लेव रे हरी नाम।टेक।
नाम लिये बिन मुक्ति न होवे। जन्म चलो रे हैवान।
क्या तू लाया क्या ले जायगा। क्यों करता है गुमान।
याही गुमान में सब जग भूला। सीख गुरु की मान।
कौड़ी-कौड़ी माया जोड़ी। जोड़ धरी एक ठाँव।
चलने की बिरिया संग न चाली। माया याको नाम।
धन चाहे तो धर्म करलो रे। मुक्ति चाहे भज नाम।
संकट पड़े प्राणी दौहेला रे। अवसर आवे काम।
हाल दिवाना कोई माल दिवाना। जीवन दिवाना गुलाम।
कहें जन सिंगाजी हम नाम दिवाना। पाया सतगुरु का धाम।८।

नहीं मरना नहीं जीना। सन्तो सदा अमीरस पीना।टेक।
टाका मन तो कटाक्ष फैला रे। चाहे ले आसमान में धरना रे।
मान गुमान करो मत कोई। जा दुनियाँ जन्म चबैना।
घर का चोर घर ही में मूसे। तुम जतन-जतन से रहना रे।
निर्गुण सागर चहुँ दिश भरिया। जाहे नैन नासिका से पीना।
कहें जन सिंगा सुनो भाई साधो। तुम अमर हो के रहना रे।९।

खूब लगायो कारंजा। जहाँ साधू का मन रंजा।टेक।
जमीन माहीरे प्रभु सूने सागर भरिया। जहाँ उठे फुहारा तन भींजा।
जलतन को नीर बड़ेरी चढ़िया। भींजे अटारी ऊपर सज्जा।

निशान नहीं जहाँ फौजां अड़ती । बाजा बाज रहा रे अनहद का ।
कहैं जन सिंगा सुनो भाई साधो । अटल खजीना साहिब का ।१०।

अजपा सुमरो रे भाई । तत्व वस्तु जहाँ पाई हो पाई ॥ टेक ॥

पहली पूजा गणपती की । दूजी शारदा माई ।
गगन मंडल में शोर मचो है । अनहद नाद सुनाई ।

जो अजपा को ध्यान धरत है । गोता कबहु न खाई ।
वंकनाल से उलट चढ़िया । त्रिकुटी रमाई ।

रिमझिम रिमझिम मेहला बरसे । झिमका झड़ी लगाई ।
चाँद सूरज को भयो उजेला । जगमग जोत जलाई ।

बिन सतगुरु कोई ज्ञान न पावे । कैसे राह बताई ।
कहैं जन सिंगा सुनो भाई साधो । भक्ति में मुक्ति पाई । ११ ।

पछी कर ले रैन बसेरो । ये तो मुसाफ़िरी को डेरो ॥ टेक ॥

चौरासी तज नर तन धारो । अनज कियो जब भयो बंजारो ।
नेकी बदी को सौदा कीनो । लदो बैल पर भारो ।

पाँच पच्चीस जब संग में लीन्हे । मिलो बटाऊ प्यारो ।
ऐबी गैबी जब घोड़ा छूटे । जहाँ अंत पड़ो अँधियारो ।

बिन बादल जहाँ सागर भरिया । न्हावे हरि को प्यारो ।
सत्यगुरु ने आ राह बताई । जब मन मस्त भयो मेरो ।

संगी हमारा बागी हुआ । कर देसे उजियारो ।
कहैं जन सिंगा सुनो भाई साधो । सोहंग शब्द को हेरो । १२ ।

देवल देख ले रे जामें । सत्तनिरंजन देव ॥ टेक ॥

बिन टाँकी का देवल घड़िया । जामें देव अभंगा है ।
अलख पुरुष पर लखो न जाई । पल-पल में बहुरंगा है ।

तन कर दिवला, मन कर बाती । ब्रह्म अगन तन जारो ।
अन्तस घट में भयो उजयारो । सुन्न मण्डल में तारो ।

छिड़कर तुलसी प्रेम का चंदन। भाव भगत से पूजो।
कथनी कथ-कथ उलट समाना। और देव नहीं दूजो।
कहें जन सिंगा सुनो भाई साधो। निज पद से लौ लाओ।
आवागमन का फेरा मिटजा। फिर जनम न पाओ।१३।

मनुआ राम सुमर ले रे। नहिं तो रोकेगा जमदानी ॥ टेक ॥
साधु की वाणी सदा सुहानी। ज्यों झिरिया का पानी।
खोजत-खोजत खोज लिया रे। कई हीरा कई कनी।
चुन-चुन कंकण महल बनाया। उसमें भँवर लुभानी।
आया इशारा गया पसारा। झूठी अपनी मानी।
मेरी-मेरी करे मत बन्दे। कलु काल का फेरा।
तेरे सिर पर काल फिरत है। जैसे मृग को घेरा।
राम नाम को लूट कर बन्दे। गठरी बाँधो तानी।
भवसागर से तू पार उतर जा। नहिं तो जाय नरक की खानी।
कहें जन सिंघा सुनो भाई साधो। जो पद है निर्वानी।
या पद की कोई करो खोजना। गुरु कह गये अमृत बानी।१४।

राम नाम सौदा नहीं किया। धिक जीवन भाई उस नर को। टेक।
गांठ जो खाली चलो बिसावन। सौदा मांगे नफा को।
लोभ के खातर मूल गंमाये। खाय चलो उल्टो टोटो।
आयो थो सत्‌भक्ती करन को मैल भरो सारा विष को।
चलने की बिरिया दानो आया। रोको मारग जाने को।
निकसन को मारग न पायो। काम कियो सब चोरी को।
आये जम जब जकड़ लियारे। फेरो पड़ गयो गफलत को।
जायो इशारो गयो पसारो। नहीं सहारो तोहे सतगुरु को।
कहें जन सिंगा सुनो भाई साधो। वो नर जम के हाथ बिको।१५।

संगी हमारा चञ्चला साहब नहीं माने।
काम क्रोध विष भर रहा जासे हाथ न आवे। टेक।

बजें नगारे सुन्न में जाकी सुध लीजे ।
अखण्ड बरसे मोती सासु जन भींजे ।

सपने में धन देखिया मन भी हरखाना ।
खोल नैन जब देखिया आखिर पछताना ।

सपने के परिवार में क्या करे गुमाना ।
एक दिन ऐसा होयगा तन काल बिराना ।

आया था कछु काम को सो एक न हुआ ।
सच सौदा किया नहीं सब झूठ कमाया ।

गैल हमारी सांकरी हाथी न समावे ।
सिंगाजी चोटी बन गया सहज ही मिल जावे । १६ ।

कोई न मिलो म्हारे देश का । जाके संग लागूं ।

सतगुरु शरण हम सेई या । गुरु असत्त न भाखूं । टेक ।

देश पती चल देश को । उ ने धाम लखाया ।
चिन्ता डाकन सर्पनी । काट हुंडी लाया ।

मन को चहुँ दिश छोड़ दे । साहब ढूंढ लावे बाहर ।
ढूंढे तो हरि न मिले । घट में लो लावे ।

लाल कहूं लाली नहीं । जरदा भी नाहीं ।
रूप कहूं तो है नहीं । व्यापक सब माहीं ।

पानी पवन से पतला । जैसे सूर्य को घाम ।
जैसे शशि को चांदनो । ऐसो है मेरो राम ।

पांव धरन को ठौर नहीं । मानो मत मानो ।
मुक्ति सुधारो सिंगा । आपनी जीवत पहचानो । १७ ।

कोई देखो दरीयाव की लहरी । म्हारो सतगुरु सौदा देरी । टेक ।
इस दरीयाव मे बाजा बाजे आठों पहेरी ।

अनहद नाद बजे चौघड़िया। जहाँ बनसी बाजे रे गहरी।
तो इस दरीयाव में सात समुंदर। बीच गयेब की डेरी।
डेरी अंदर अलख बिराजे। अरे जहाँ सुरता लाग रे मेरी।
तो बिना पीड़ को वृक्ष। कहीं डाल पंख न फेरी।
रूप रेख वाको कछु नहीं दीसे। ओ पुरी रह्यो रे चहुँ फेरी।
आगम अगोचर पद पाया भाई। क्या पूछो भाई मेरी।
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधो। अरे ओ निरमय माला फेरी। १८।

ऐसा भरिया है भरपूर। मन तू देखले हजूर। टेक।
पढ़ता पंडित वेद पुकारे। वोही बतावे दूर।
नयन खोल कर दीख दिवाने। झिलमिल दरसे नूर।
मुल्ला होकर बांग पुकारे। अनहद वाजे तूर।
कहें जन सिंगा सुनो भाई साधो। जहाँ कोटक उगिया सूर। १९।

देखो बिजली का झल्लारा। झिलमिल बरसे बादल कारा। टेक।
झलके सबके पलके माहीं। वे नर सुखी सुलारा।
जिन के हाजिर हजूर है। उनको उनका हमें सहारा।
देव दृष्टि कर देख दिवाने। पापी का मुंह कारा।
कहें जन सिंगा सुनो भाई साधो। गुरु सोहंग नाम मतवारा। २०।

सिंगाजी संदेशो आयो। गुरुजी ने येही वचन फुरमायो। टेक।
हमरो वचन मिथ्या कर जानो। अब लग देही बचाओ।
श्रावण पून्यो छूटे देही। गुरुजी ने लिख पठवायो।
गुरु आज्ञा से पहले कीजे। नौमी को मंगल गायो।
संत मंडली मिल हरि गुण गायो। ज्योत में ज्योत मिलायो। २१।

यों जीतो मेरे साई कायागढ़ यों जीतो मेरे साई।
मैं तोहे रास्तो दऊँ बताई। टेक।

मन अमृत की जीत करी लीजो ममता पीछे हटाई।
पाँच पच्चीस तुम प्रगट ही मारो सुन्न में करो लड़ाई।

काम क्रोध ब्रह्म अगिव पर जारो ज्ञान की छूरी बेताई।
शील का बखतर पहनों तन में भरम की गुर्ज गिराई।
छै सौ इक्कीस वाण को तन में राखो समाई।
या तन को तुम छिन छिन छेदो मूरत में सुरत जमाई।
पाँच पच्चीस जीवत ही मारो मुआ पीछे कुछ नाहीं।
सूरा हुए तुम सन्मुख जूझै कायर को गम नाहीं।
कहें जन सिंगा सुनो भाई साधो कासे कहुँ समझाई।
ये नर देह तोरी फिर नहीं आवे कौड़ी बदले गंवाई। २२।

रामनौंमी पावें आज हम रामनौंमी पावें। टेक।
गुरु के वचन आशिष भई भारी रामहीं नाम समावे।
अन्तःकरण की तुमही जानों हम शरण साहब की जावें।
संत मंडली कुटुम्ब कबीला सिंगाजी आप बुलावें।
दान पुंन जितने सब कर पायो न कोई दुःख सतावे।
पोथी पुराण ग्यारस बतलावे मुक्ति को जोग न आवे।
नौमी देह या छूट जायगो आनन्द परम पद पावे।
जहां का माल तहाँ रह जावे मोती गांठ बंधावे।
कहें जन सिंगा सुनो भाई साधो जोत में जोत समावे। २३।

संत सिंगाजी के नाती और शिष्य "दलुदास" के भजन

सतगुरु ने वचन सुनाया सिंगाजी भामगढ़ आया।
लखाराव से जुहार जो कीन्हा तज घोड़ा घर आया।
ढाल तलवार पांचो हथियार वो तवा नदी में डुबाया।
गुरु के शब्द हिरदे में लागे और कछु नहीं भाया।
जन्म मरण का दुःख है भारी गुरु ने ज्ञान बताया।
कहें जन दल्लू सुनो भाई साधो सतगुरु शरणे आया।१।

सिंगाजी मरदे हो मरदे जी जिनका निशान उड़ता जरदे । टेक ।

खूब करी मरदूमी मरद ने सुन्न गढ़ चढ़ा बिना नसेनी
चार खूँट दरत बांध हद सरदे ।

भव भागा भय दिया भगाई कुल आलम पर फिरी दुहाई
सब का मारा मान गलाया गरबे ।

बाघ बकरी एकहि घांटे राजा रंक लगावे बांटे
जिनने मन मवासी मान माचाया गरदे

दल्लू संत सतगुरु का चेला सिंगाजी गुरु मिलिया पूरा
जिनने धर्म धजा लई हाथ मिटाया दरदे ॥२॥

ग्यानो की बाजे नौबते गाजे सिंघाजी संते । टेक ।

ब्रह्मगिर को भया अचरज कहो कौन भया रे समरथे

मनरंग को किया था किते उन बता दिया दीदारे ।
अनभव की कहता बाते ॥

ज्ञान था गुपत कहो किनने किया रे परगाटे ।

शंकर ब्रह्मा उरझाया सो भी पार नहीं पाया
निरगुण की कहता बाते ॥

गुरु मैं क्या जानू गफलते की ऐसा होयरे सामरथे ।

एक दिन दिया था उपदेश उन देख लीनी रे सब जुगते
वो भया जागती जोते ।

वो पुण्य पुर्वला जागा जब अनभव मारग लागा ।

जिन मन मवासी को मारा जब खुल गये दस ही द्वारा
जिन लिया पदारथ हाथे ।

सुन दल्लू पतित रे भाई क्या कहूँ कछु कही न जाई ।

मोहे गुरु मिला रे सुखदाई जिन सहज ही मुक्ति बताई
वो परचा भया रे अणचीते ॥३॥

सतगुरु सिंघाजी कहो जैसी की तैसी में बात बूझत हों ऐसी। टेक।
जैसी तुमने कला बताई चली जाने दो वैसी।
कोप भये जब धजा जलाई अवगत हुइ है कैसी।
अष्ट सिद्ध नव निध दई है गाय और भैंसी।
कह जन दल्लू सुनो भाई साधो रहो ब्रह्म में वैसी ॥४॥

धन-धन सिघाजी सूरमा चमर दुराय गुरु खेता।
कालिंगा से मारा हठ जूझना अपने साहब के हेता। टेक।
सत सुकरत दया धरम का इनका रोपा मंडप।
सुमरन भजन में हट किया दाना मोटा ठग।
सबेरे सन्त बुलाइयो मारे साईं जू ने कियो विचारा।
वैकुंठ में वीरा फेरियो आप श्री महाराज हो।
पांच पचीस को वीरा धरो घर दियो कलश चढ़ाय हो।
आओ सन्त मृतलोक को भक्ती करन अपारा हो।
भार परे धरती थर हरे पातक चढ़े अपार हो।
मैं कैसे जाऊँ मेरे साहबा दुनियाँ करम अघोरा हो।
कर्ता से मिल बीड़ा लिया साहजूं ने मेला अंश हो।
पट्टो लिखायो हरि नाम को ब्रह्म दल चढ़ो अपार हो।
शरद की पूनों नगर पीपला गोली घर अवतार हो।
डोरा छूटे पुहप के चहुँ दिश भयो उजार हो।
शरद की पूनों मेला आइयो मारो गुरु गोविंद दरबार हो।
सिंघाजी सोहंग एक है आदि ब्रह्म का अंश हो।
भवसागर का बूड़ना गुरु मोहे पार लगाओ रे।
दल्लू पतित की वीनती सुनियो मारा प्राणे अधार हो ॥५॥

थारी बैकुंठ बनी बनाई पीपलों कैसे तजो गुरु साईं। टेक।
आदि अन्त को नग्र पीपलो अरे ओ भवुआ से लो लाई।

नभ पीपलो यों कर बोलो म्हारी तकसीर दियो बतलाई ।
अपनी-अपनी करें बड़ाई अरे वो सब में दुरमत छाई ।
कहें जन दल्लू सुनो भाई साधो राखो चरण लगाई । ६ ।

थारी जतरा का रहा दिन चार म्हारो मन लाग्यो हो सिंघाजी
थारी धाम से ।टेक।

पंद्र लख उमायो है रे दोलो कई माल वो दुइ लख उनी गुजरात ।
एक लख उमायो रे बाला को बामया दुई लख भारुड़ कलाल ।
एक लख उमायो से बाला की भावली ऐसे दुइ लख उनी बांझ ।
अन धन मांगे रे बाला की मावली ऐसे पुत्र जो माँगे बांझ ।
बाबा हरिजन हरख तो आइया दुरता आवे निशान ।
दल्लू पतित की रे सन्त हो बीनती राखो चरन अधार । ७ ।

झुलना डारो गंगा गौरी माय सिंघाजी झुलना झूल गयो रे ।टेक।

बाबा काहे को तेरो पालनो काहे को लागा लम्बा डोर ।
बाबा अगर चन्दन को हरि पालनो रे रेशम लागा लम्बा डोर ।
बाबा कौन पुरुष को जो बालकारे ऐसे कहाँ लिये अवतार ।
बाबा भीमाजी पुरुष को जो बालकारे माता गोरी के लियो अवतार
कौन झुलावे हरि को पालनो कौन जो गावे मंगलाचार ।
माता झुलावे हरि को पालनो उनकी बहनी गावें मंगलाचार ।
दल्लू पतित की बीनती गुरु राखो चरण अधार । ८ ।

मारा गुरु गोविंद दरवार झुरमट लाग रही रे महाराज ।टेक।

चार खंभ समाधि बनी छतरी भयी अकाश ।
देश-देश का हरिजन आया जिनका धिमस भरा दरवार ।
आसपास-दुकान लगी है जहाँ हो रहे मंगलाचार ।
दल्लू पतित की बीनती राखो चरण अधार । ६ ।

तुमने भली बजाई तलवार कियो रण जीतो रे।टेक।

सिंघाजी बाबा सूरमा छै सौ इक्कीस हजार रे ।

सिंघाजी थारा घोड़ला ऐसे प्रेम की पाखर डाल।
पाँच पच्चीस थारे हाथीला जहाँ घूमे सबल निशान ।
पाँच पचीस को मारियो तुम ने जम माँडी रार।
दल्लू पतित की बीनती गुरु राखो चरण अधार। १०।

गुरु दइ दरयाव में डोर सतगुरु सुरमा ।टेक।

बाबा सिंघाजी लिम्बाजी दोई सारका जैसी बनी राम की जोड़ ।
बाबा पहलो रे परचो हमने सुनो दुही क्वांरी भोंट।
बाबा होत भंडारे जहाँ निस दिना जहाँ बने राम का रोट।
बाबा चन्दा सूरज-सा ऊजला जामें रत्ती भर नहिं खोट।
दल्लू हो पतित की बीनती गुरु राखो चरण की ओट। ११।

अपरम्पारे अपरम्पारे गुरु सिंघाजी दरबारे।टेक।

आप रुप भगवान जैसा है कृष्ण का औतारे।
सत सुकरत का न्याय करत है रहते सबसे न्यारे।
सन्त जन अरदास करत हैं जहाँ होत भजन भंडारे।
ब्रह्म रुप हैं आप विराजे ऊगा चन्द्र घुटकारे।
कहें जन दल्लू सुनो भाई साधो गुरु करे कछू नहिं महरे। १२।

सतगुरु सिंघाजी भली बनी समाधी।टेक।

इधर ओंकारे उधर सदाशिव दोनों के दरम्याने।
नगर पीपला आया निघा में गुरु खड़ा किया निशाने।
चार खम्भ समाधी बनी है ऊपर छतरी साजे।
छतरी ऊपर लगी चाँदनी ऊपर कलश विराजे।
पेंडी-पेंडी पदम जड़िये हीरा को परगासो।
आसन मार जुगत से बैठे आप औलिया गाजी।
नदी पिपराड स्नान करो तुम छाया तिलक लगाओ।
कुब्जा माला लो हाथ में सब संतन पहरावो।

दल्लू पतित के बने सिपाही राखो चरण अधारे।
क्वांर महिना पूर्णमासी खूब यात्रा साजे । १३ ।

भक्ती आई रुपा मांह सतगुरु मिलियो जगन्नाथ ।टेक।
ब्रह्मगिरि ने ब्रह्म लखाया कही अन्तस की वात ।
मनरंग गिर ने मनकी जानी दियो मस्तक पै हाथ ।
सिंघाजी ने परगट कीनी दिल्ली दक्खन गुजरात ।
कहें जन दल्लू सुनो भाई साधो गुरु लज्जा तुम्हारे हात । १४ ।

निशान ठाड़ा कोई आन सके न आड़ां ।टेक।
जिनकी नौवद बजे जुझाऊ सिंघाजी सिपाही गाढ़ा ।
पीछे पाँव देत नहिं कबहु है बूँदी का हाड़ा ।
समज-वनज करोरे भाई दिन-दिन दूना वाढ़ा ।
कहें जन दल्लू सुनो भाई साधो कपटी का मुंह काला । १५ ।

सिंगा स्वामी वरणौ सुणजी कोई का दागदार मत कीजो ।टेक।
नर नारायण देह दीनी है गुरु म्हारी पल-पल खबरा लीजो ।
कोई का दागदार मत कीजो ।
तीन पाक्या तन ख दीजो गुरु मत अमणी करी कर रखजो ।
भरी सभा मं साख राखजो गुरु मलजू तन भरी वस्तर दीणी।
कोई का दागदार मत कीजो ।
सुमरण भजन आरती पूजा गुरु मख भक्ति संती दीजो ।
कहे जन दलु सुनो भाई साधू म्हारी ऐसी सदा निभावजो ।
कोई का दागदार मत कीजो । १६ ।

दया करो म्हारा नाथ हऊँ तो गरीब जन एकलो ।
अठारही भार वनस्पति फूले डाल मं डाल ।
वाही मं चन्दन एकलो जाकी निरमल वास ।
कई लख तारा झरम के गगन असमान बीच ।
वाही मं चन्दा एकलो जाकी निर्मल जोत ।
अन ही चुगता चुगी रहा पंछी पंख पसार ।

वाही में हंसा एकलो मोती चुग-चुग खाय ।
जन ही दलु की वीणती साहब सुणी लीजो ।
मिलजी ले परदा खोल के आपणो करी लीजो ।
हऊँ तो गरीब जन एकलो । १७ ।

अजमत-भारी भारी मैं क्या कहूँ सिघाजी तुम्हारी ।टेक।
महादेथ पान मंगत है जिन दुही भैस क्वांरी ।
जहाजवान ने तुमको तुमरा वाकी डूबी जहाज उवारी ।
झबुआ देश बहादुर सिंह राजा वाकी गई बाजू की फेरी ।
कहें जन दल्लू सुनो भाई साधो जिन जम की फौजें टारी । १८ ।

तुमने दिया महाराज दिलाशा तुमने दिया ।टेक।
सिंघा स्वामी न लिंबाजी भाई जन आई पीपला में रहवास लियो रे ।
ले खनीता दर खोदन वैठे जीवन कठ भयो दो टूँक कपो हियो
महाराज ।
यो मन दया न उपजी तन मन धन सब शीतल भयो रे महाराज ।
कहें जन दल्लू सुनो भाई साधो अरे जिस गुरु गोविंद का चरण
छुआये रे महाराज । १९ ।

देखो संतो की सीधी दैल गाड़ी चलती है बिन बैल ।टेक।
बाट चलतां पर मन जोवे आपर पड़ गई भुलन की बेल ।
आगे-आगे होमली न दुई धाये राजा से सुणाई पहेल ।
घड़ी दोयक म नगरी धाये जहाँ राजा का बना है महेल ।
खुशी हुई कीसन मंडलई स्वामीजी भली मचाई टहेल ।
हरे हराये थके थकाये वहाँ हरीजन करता सैल ।
कहे जाग दल्लु सुणो भाई साधो हरीजन की छुड़ाई जैल । २० ।

मोरी-मोरी हो गुरु सिघाजी दरबार हरयालो अम्मा मौरियो ।टेक।
बाबा कौन जो ताल खुदाइयो कौन बँधाये सरवर-पार ।
बाबा निरगुण ताल खुदाइयो सुरगुन बाँधे सरवर पार ।

बाबा पेड़ जगन्नाथ स्वामी ऊग रहो जाकी डार ब्रह्मगिर महाराज।
बाबा फूल मंनरंग गिर स्वामी॰ फूल रहो रे ये तो चढ़े सिंघाजी
महाराज।
बाबा फल टीरो फकियें करो सब सन्तों को देवो प्रसाद।
बाबा दल्लू पतित की बीनती सेवक चरण अधार। २१।

भल्ला भाई गुरु बन्दगी फरमाई ।टेक।
बारह बरषों रहे उपावने बन-बन गौयें चराई।
अब दया भई सतगुरु की छोड़ देओ कुटलाई।
आपन राम कुंवर हो बैठे सिंघाजी करें बादशाही।
कह जन दल्लू सुनो भाई साधू तीन लोक ठुकराई। २२।

जो दल बाबाजी का चढ़ा जिनका नौबद नगारा घुरा ।टेक।
कायागढ़ को घेर लिया है अरे वो खड़ा कोतवाल छड़ा।
बड़े-बड़े को मार गिराया अरे जाको चोला दफ्तर चढ़ा।
कायागढ़ को जीत लिया है अरे वो सुन्न में मंडा-गढ़ा।
कहें जन दल्लू सुनो भाई साधो सिंघाजी खेत में अड़ा। २३।

सिंगाजी की 'परचुरी'

श्री गणेशाय नमः । श्री सरस्वतैनमः ॥

श्री सींघाजी महाराज की परचुरी प्रारम्भ

॥ दास खेम की कृत ॥

आगे कथा कहूँ विस्तारा । तुम श्रोता जन करो विचारा ।
सतगुरु स्वामी कृपा करी । तब ते बुध मोहे संचरी ।१।

सिंघाजी नाम जात का गवली । बजावे पावा मोहोर वासली ।
गावे गीत घुमावे भोपा । हरी भक्ती का जाणे न भेवा । २ ।

रहे उदमंद करे चाकरी । और न जाणे बात दूसरी ।
ऐसे करता बहु दिन गया । हरसुद नगरी मों नेश्चे रह्या । ३ ।

गौ बछेरी महेकी आपारा । मात तात कुटुम परीवारा ।
निस वासुर रहे तीनुकी संगा । भरम न जाणे भक्ति को अंगा ।४।

येक समय गिणात[1] के घर पंगरण[2] होई । ताको नीवतो पोहचो आई ।
निवता की संग तहाँ चलकर आये । सांज समैं पोहचा थाये ।५।

उतते आये मनरंग देथा । हरीगुण गावे नीरगुण भेवा ।
तिने समे सूरत समानी काना । सिंघाजी के मन उपजो ग्याना ।६।

पावा मोहोर हाम बहोत बजाया । गाई मथवाड भोपा घुमाया ।
जोगी जती हाम बहोत सेया । ऐसा गुण तो कोई नहीं कह्या । ७ ।

जनम हामारो अहेला गयो । हरी भक्ति को मरम न लह्यो ।
कीजे गुरु बतावे पंथु । आखंड सुहाग मिले हरी सो कंथु । ८ ।

---

१. जाति २. पंगति

तब सिंघाजी चाली सनमुख आये। गुरु मनरंग को द्रसन पाये।
कर जोड़ के विनती करी। तब मनरंग स्वामी द्रष्टि नीहारी। ९।
कड़ कटारी त्रकस तीर कमाना। सेल सुरी मुद्रिका काना।
ऐसी भांत दरसन कुं आये। कर जोड़ के सीस नवाये। १०।
गुरु-गुरु करी मुखती कहे। तब मनरंग स्वामी देखी रहे।
होये अधीनता बूझे येही। राखो स्वामी सरणे सही। ११।
सुणी स्वामी पती[1] उतर दीयो। उपदेस न लागे काहू को कह्यो।
यो मन महन्त मरे ना भाई। कठण करणी राम से सगाई। १२।
तब सिंघाजी बोले बैना। गुरु परताप पढ़ावे सुवा जो मैना।
आँकुर पुरब लो जो जागे। तो ऐसी होत वार न लागे। १३।
इतनी सुणी ठिकाणे आये। सकल विसारी हरिचरण चित लाये।
ता पीछे दिन दोय मा घर आये। पहलो कारज सब विस-
राये। १४।
तरकस तीर दीया सब नाखी[2]। अब करूं कथूं राम की
साखी। १५।

विश्राम ॥ १ ॥

सबद सुणता ऐसी धरी, छोड़ दिया सकल विचार।
वाचा मनसा करमणा, डार दिया हथियार ॥ १६ ॥
लागा बाण निरवाण का, निकस गया दुवा दस पार।
मन मुवासी कुं मारिया, छिन येक न लागी वार। १७।
गुरु करणे की मन में धरी। सत समैयो लीयो विचारी।
सुरत धरी जब घर ते ध्यायो। गुरु मनरंग के दरसन पायो। १।
राम नगर में बसे मनरंगा। राम रमें तीनों की संगा।
सिंघाजी तहाँ चल कर आये। कर जोड़ कर सीस नवाये। २।

१. प्रतिउत्तर २. डाल दिए

अब दया करो मेरे सतगुरु साईं । देवो उपदेश आपणां कर लेई ।
झाउं आनाथ मोहे प्रेम सुख दीजो । तुम बीना न जाणु दूजो । ३

तब मनरंग बोले निरमल वाणी । प्रेम भक्ति ना रहे छानी ।
जो तुमखुं होये उपदेस की आसा । तजो माया मन फीरो उदासा । ४

रात दीवस करो राम की सेवा । औगुण तजी पूजो आतम देवा ।
सकल आतमा देखो आप समाना । तब सांई सेवा सांची कर माना ।

तुम तो हो चाकरी के पेशा । तुम कैंमा लागे उपदेशा ।
जात का गवली मन का मैला । बाल बिछोड़ा डारत हेला । ६

घर आपणे लीयो कस्न अवतारा । सोई न जाणे मुढ गंवारा ।
तीन लोक मुख मा देखाये । ताके सब कर डोर लगाये । ७

वसुदेव देवकी जीन उबारे । कंस नीकंदन कारण सारे ।
प्रेम सनेही भक्तन के दाता । आजरा आमरा श्री रघुनाथा । ८

ऐसो रतन हात न आवे । गैवी ग्यान कहां से पावे ।
मल मुत्र की तुम्हारी देह । कयमे जाणों प्रेम सनेह । ६

सरूपानन्द जो आवे कोई । आंतरगत जाणों साहेब सोई ।
कौढ़ी कुष्टी आंग का मलीना । ताको साहेब कर चीना । १०

सेवा चाकरी सबन की कीजे । जे मागे सो सब रस दीजे ।
धन दुधारा मागे जो सुत । जे मागे सो दीजे व्रुत । ११
सेवा चाकरी संवन की कीजे । जीवन पद दया ही वीध लीजे ।
मुक्त मुल है सांची सेवा । जुग जुग बषाणे सतगुरु देवा । १२

। विश्राम । २ ।

जलां तपत बुझी मन की । सीतल भयो सब अंग ।
लोहा ते कंचन भया । जब पारस परस्या अंग । १३

१—अच्छी ।

सतगुरु सबद गुण कीया । आंत्र दीयो नीज भेद ।
दुख चवरासी का सा लीया । लह्यो ते सुक्षम भेद । १४

सींगा कहे हुँ कछु न जानो । साचो सबद तुम्हारो मानो ।
देयो उपदेस करो उपकारा । आवके राखो सरण तुम्हारा । १

हूँ है मुरख मती को हीणा । आजरा सबद कैसे पहेचाणा ।
तुम हो स्वामी मुक्त के दाता । सतगुरु आनाथन के नाथा । २

सतगुरु प्रताप धुरु[1] आठल पद पायो । सतगुरु प्रचे प्रल्हाद आंमर छायो
नामदेव कबीर आये गुरु के सरणा । और ना की काहा कहू बरना ।३

चार वरण की कही न जानो । साचो सबद तुम्हारों मानो ।
आप स्वामी दछा[2] मोहे दीजो । सेवक जाण आपणो करी लीजो । ४

गुण तुम्हारा मोंपे बरणा न जाई । घठ घठ पुरण सतगुरु सांई ।
ऐसी वाणी सींघाजी बोले । तब मनरंग स्वामी आंतरगत की खोले । ५

करी क्रपा दीनों उपदेस । तजी माया भयो निरगुन भेस ।
मनरंग स्वामी परमारथ कीनो । भये कृपाल मस्तक हात जो दीनो ।

तब सिंघाजी भये खुसीयाल । आनाथ प्राणी प्रभु कीयो नीहाल ।
सुणता सबद साखी चेडाई । गुरु आपणा की करी बडाई । ७

तीन लोक में सतगुरु दाता । जाकी माया सब जुग खाता ।
सतगुरु है देवन के देवा । आजरा आंमरा जाकी सेवा । ८

कहै मनरंग सुन रे पुता । घर आपणे की करो संजुता ।
मनरंग स्वामी कहे समजाई । घर आपणे की करो सुध जाई । ९

सींघा कहे घर मेरो में पायो । आवहू सरण तीहारे आयो ।
तुम ही मात पीता गुरु देवा । तुम बीना झुठी सब सेवा । १०

और सकल सब माया को फंदा । कनक कामिनी सेवे नर अंधा ।
माया ठगारी ने सब जुग खाया । देव ब्रह्मा सब ही नचाया । ११

१—ध्रुव । २—दीक्षा ।

ले डुबी कुल संमेता । और ना की का कहू वाता ।
और स्वामी मोहे द्रष्ट देखाता । जाणो न कछु दुसरी वाता । १२
अब मोहे सरणे राखी लाजो । सीव्ह छोडाये स्याल मुख न दीजो ।
माया की संग हूँ बहू दुख पायो । जाते सरण तुम्हारे आयो । १३
कहे मनरंग सुण रे भाई । बीन माया कैसी सगाई ।
पुजा आरवा कुं माया दीनी । सुमरण काज रसना कीनी । १४
वीन माया परमारथ न होई । जैसी वस्तर वीन नागी देही ।
प्रमारथ काज कावड फेरी । कठण भक्ती रामनंद केरी । १५
प्रमारथ कबीरा कीनो । बस्तर फाड हाठ मा दीनो ।
ऐसो प्रमारथ किनो येक चीता । तब द्रसन दीनो रघुपता । १६
घर मा रहे सो ही जन साचा । सो सेवक कहीये मनसा वाचा ।
कहे मनरंग सबद हामारो मानी लीजे । घर जाये सेवा सबन की
कीजे । १७

मानी सबद भयो लवलीन । सतगुरु कहे सो नेश्चे कीन ।
मानी सबद जो मंदिर आये । कुठम सहीत सब सुख पाये ।१८
ता पीछे वरस येक जो बीतो । भयो उपाये येक आण बीतो ।

। विश्राम । ३ ।

आण चीती आण गयेब की । और न जाणे भेवे ।
महेकी तस्कर ले गया । मानो रुठा नारायण देव । २०
पहेले परच्यो ये भयो । भई जुग में जाण घठ में सांई संचर्या ।
कहे खेम नीरवाण २१

महेकी लीनी चोरा । ध्यावो लोग नग्र को चहोरा ।
पाडा पाडी घर घर रेके । लीनी महेकी तसकर छेके । १

घर को लोक खीजे आर भाडे । सींगा जी आपणी ठेक न छाडे ।
दुरमुख भयो सकल परीवारा । सींगाजी हारखे मन मंसारा । २

दवड दवड हारे सब लोका । गई कमाई सगली फोका ।
नभ लोक सबही ध्याये । सींघाजी कहू गये न आये । ३ ।
आंत्रगत सब मालुम कीनी । जाकी माया सो भल लीनी ।
माता कहे क्रम[1] को हीनो । दुवारे बेठो सीर हात दीनो । ४ ।
कलपात करता दीन दोये जो बीता । तब सींघाजी बोले आण चीता ।
सींघा कहे माता मो तन जीवो । वासणा धोवो पयेडो संजोवो । ५ ।
पाडा पाडी छोड़ी दोजो । नाहेक[2] कलपणा आत्र भणी कीजो ।
गुरु गोवींद तुम्हारो ध्यायो । करी पछायो माल घर लायो । ६ ।
मात कहे छानु रहे रे मुवा । भैस गई ताकु दीन तीन हुआ ।
माता खीजी दीनी गारी । समज नही मत की मोरी ।७।
येक परमेसर तो मे आयो । और लोग ने बेची खायो ।
तब सींगाजी समजे मन माही । माता सबन की औसी होई ।८।
कबीर की माता सीकंदर पुकारी । नामदेव की माता
दीनी गारी ।
औसी वात केतीक बखानो । भक्त दुराई[1] सब जुग ठानो ।९।
तब सींघाजी स्याणि मत कीना । पाड़ा पाडी छोड आगे कर लीना ।
पाडा पाडी ले गये छे जीहा । महेकी ना सब आवी दे तीहा ।१०।
महेसी पाडा मेलो भयो । धन-धन सींघाजी ने कह्यो ।
तुम बीना कोण कर खसमाणु । हाऊ नहीं सेवक सदा बीराणु ।११।
दुद दुही जब घर कुं लाये । तब सबके मन प्रतीत आये ।
साद-साद बोले सब साखी । जुग-जुग ठेक रामजी की राखी ।१२।
माता बंधु परचो पाया । साचो मता याही के हात आया ।
ये कहे सो चलीये चाल । याकी मत होये नीहाल ।१३।

॥ विश्राम ॥४॥

१—कर्म । २—व्यर्थ ।

मत आ परवल* साद की। वीरला पावे पार।
आगम पंथ कुं गम कीया। कहे खेम वीचार।१४।

मगन मत साद की। सीची नीरगुण वेल।
ग्यान दीपक जोवता। वीन वाती वीन तेल।१५।

ता पीछे लोक मंधाता आये। सवद येक सींघाजी से सुणाये।
चलो स्वामी मांधाता जावा। आद उंकार वसे तीनो ठावा।१।
तव सींघाजी वोले नीरमल वाणी। सकल तीरथ हे पाणी।
आद उंकार वसे सव घठ माही। सतगुरु परचे पाया छै याही।२।

तव हारी के सव बोले नामा वंसी। तम तो प्रगारथ की मत प्रकासी।
तम हो परमेश्वर के आँसु। कारज हमारो सीजे कैसु।३।
कहे सींघा तम चलो रे भाई। हाम कुं लावे सतगुरु सांई।
नाव चेडंता होयेगा मेला। पीछु से हाम आवे आकेला।४।

लोग कहे आव हाठ न कीजो। सवद ईनको मानी लीजो।
कहे लोग इन पर आग्या भागो। ईनका ख्याल भणी कोई लागो।५।

सव ही लोक घर कुं आये। तीरथ चलणे को मतो उपाये।
आपणो-आपणो संजुक्त संजोई। मंधाता के मारग लागा सोई।६।

दीवस तीसरे मंधाता आये। सींघा स्वामी को मारग चाहे।
नाव चेढ़ंता कुं सवद जगायो। देखो स्वामी आजहू न आयो।७।

तव ही स्वामी सुरत जगाई। छीन येक में पोहचे जाई।
हारी केसव सहीत द्रष्ट नीहारे। तव स्वामी सनमुख आण पुकारे।८।

सींघा स्वामी भाभ पे आये। वाल गोपाल सवही चेड़ाये।
सकल मील उतरे पारा। जाये परछो देव उंकारा।९।

येकादसी द्वादसी त्रयोदसी जाणी। चतुरदसी पुनेव पुरण वखाणी।
दीना पाच लु रामत कराई। पडवा के दीवस सुरत उठाई।१०।

लोक कहे स्वामी घर जावा। असो सबद सब मील सुणावा।
कहे स्वामी चलो रे भाई। हामने हमखु कब कह्यो नाही।११।

तन मन हामारे सतगुरु के पाई। सदा सर्वदा रहा सो वाही।
सकल लोक कुं सबद सुणायो। तब स्वामी आपणु गात हीं
पायो। १२।

आयो स्वामी आपणो द्वारा। पीछु रह्यो सब संसारा।
लोग कहे काहा गये स्वामी। कोण गत भई आंतरजामी। १३।

आवत-जात संग ना कीनी। साद की लीला काहू ना चीनी।
जैसे करता मंदीर आये। सींगा स्वामी को द्रसन पाये। १४।

देखी द्रसन दुर से ध्याये। कहो स्वामी तुम कब आये।
स्वामी कहे सतगुरु जाणे। मेरी कही कोई न माने। १५।

नामदेव कबीर की बात न माने। गोरकदत्र की खेचरी[1] ठाने।
मोहे गरीब की कोण बलावे। जैसा-तैसा साईं छैब नी पावे। १६।

माता कहे कछू गयो नाही। दीना दस को बैठो घर माही।
तब सकल लोग आचंभो कीनो। नर नारी मीली चरणांम्रत
लीनो। १७।

असो सबद माता जब कह्यो। तब सकल लोक अचंबी रह्यो।
ताकी साख सब मीली दीनी। करता की गत काहू न चीनी। १८।

॥ विश्राम ॥ ५ ॥

साख दीनी जगत ने, माता न माने बात।
आवत-जात संगत न कीनी, बाहा रहे हामारी सात ॥ १९ ॥

आचरज भयो जगतमा, साखी सुणी न वेद।
धन-धन कला सादु की, वीरला जाणे भेद ॥ २० ॥

---

१. खिल्ली उड़ाना।

ता पीछे वीप्र दोये कुमत ठाणी। मागा त्रीया साधु जाणी ।
आये नग्र में आसा धरी। होये साचो भक्त तो न राखे नारी। १।

आये मंदीर कीया प्रसारा। बुझे लोक से काहा बसे साद तुम्हारा।
पुरस एक ने मंदीर दीयो बताई। वीप्र दोये पोहचा जाई। २।

परदेसी वीप्र दुवारे आये। ताको भेद न कोई पाये।
दोई बोले येक उपादु। हये काहा बतायो मोहे सादु। ३।

काहा हमे साद बतावो मोही। ताहा हाम चलकर आवा दोई।
तब घर का लोक वचन उचारे। गयो साद सरसती के दुवारे। ४।

जीहा तपे आतीथ वन मुं। पछावे डालक नहीं आवे नासु।
आती उतम सरसती जाणी। उत्तर दीसा वहेता को पाणी। ५।

इतनी कही जब घर के लोगा। जावो चली तुम दोनो वेगा।

चले दुष्टी जब मारग लीनो। त्रीया मागण को मतो जो कीनो। ६।

लागे मारग गया छै जीहा। सभा सारी बैठी है जीहा।

सींगा स्वामी बीच में बेगा। आवत वीप्र दुखी दोठा। ७।

सींगा स्वामी तबही जाणी। फीको वदन दसा कोमलाणी[1]।
वीप्र बुलाये सनमान जो दीना। आहो स्वामी तुम येह काहा कीना। ८।

वे सतवंती आग्या न मेठ। तुमने सबद रमायो न ठेठ।
वे सतवंती कुं मीन न भाव। भक्त-भाव सु करती सेव। ९।

तब वीप्र उठ लग्गा पाई। चुक हमारी बक्सो गुरु साई।
वीप्र मन में बहुत पीछताना। महा प्राश्चीत हमही कीना। १०।

हाम हे द्रष्ट[2] मती का हीना। भक्ती मारग नाही चीना।
तुम हो आंतरजामी मुक्त के दाता। हाम हे बालक तुम हो पीता। ११।

सब सभा मा आचरज भयो येही। ब्राह्मण केउ लागे साद के पाई।
कौन गुन्हा इनहू कमाया। जो स्वामी के चरण सीस नवाया। १२।

---

१. कुम्हला गई।

२. दुष्ट।

सभा सारी स्वामी से समेत मिलावे। कहे स्वामी नहीं कहेंबे को दावे।
ये ही साद मोहे परमारथ बताये। सोही आपणा घर छीपायो ।१३।

ये ही संत परमारथ कीनो। बड़ा संत को पंठतरो दीनों।
वैसी हाम से काहा होई। वे संत प्रमारथी प्रेम संनेही ।१४।

ईतनी कही सींघाजी भये ठाढ़े। दोनु वीप्र के कर गहे गाढ़े
लै वीप्र घर कुं आये। लंबा बीछोणा पठसाल बीछाये।१५।

घर में कहे की बड़े मैजमाना। आंत्रगत की साहेब जाना।
ता दीन राख रसोई दोनी। दीना दूसरे वीदा जो कोनी।१६।

लै प्रतीत गया जब जोसी। ता पीछे स्वामी ने बात प्रकासी।
सकल ब्राह्मण भये हैराणा। स्वामी सब घट येके जाना।१७।

॥ विश्राम ॥ ६ ॥

हायेरान होय वीप्र गया। स्वामी समजे मन माहे।
जीन पर रछा[1] सतगुरु करे। वावन वाजे ताहे।१८।

सतगुरु रछा जा पर करे। वावन वाजे लगार।
जीनके सीर छत्र नीरगुण का। काल न झांपे सी दुवार।१६।

स्वामी खेले निरगुण दावे। माया से कछु आंग न लावे।
मात पीता त्रीया सुत भाई। जीनसे कछु न राखे सगाई।१।

घर सा महेकी ओर घोरा। मुख से कछू न कहे की मेरा।
केताक दीन हारसुद सुख लीना। ता पोछे पीपले पैयाना कीना। २।

श्री सींघाजी पीपले आये। नग्र लोग सबही सुख पाये।
देखी लछमी सजीयो साज। भीडायो भाग नग्र को आज। ३।

गाव गोयेर वस्त उतारी। देखत नग्र भयो सुखभारी।
कुडीया चार नग्र मा देखाये। तब लु नग्र लोग लेण कु आये। ४।

---

१. रक्षा।

भीलला लोग बसे तीनी ठाई । भक्ती मारग बुझे न कोई । ।
ले वस्त्र आये नग्र मंसारा । चौठे आये के दीना डेरा । ५ ।
सो गरू हरजी बसे तीनी ठाई । जात भीलाला पटेल कहाई ।
वे सींघाजी प्रते बचन उचारे । बाधो घर जीहा तुम्हारो बीचारो । ६ ।
बोले स्वामी हाम कछु न जाणा । होये सहेज तीहा ठाठ ठठाणा ।
हाम कछु महेल न चाहे । छोटी सी मडी सहेज वणाहे । ७ ।
बड़ो जेठो लींबाजी भाई । जीन सींघाजी कु ठहेल[1] फुरमाई ।
वणाओ आखर महेकी काजे । कहे वचन आतुरी खीजे । ८ ।
कही सबद आप महेकी में जाई । सांघाजी कुं ठहेल फुरमाई ।
तब स्वामी खणतो[2] लई खणवा बैठा । आलसी येक द्रष्ट से दीठा । ६
कठ्यो गीदो लोभयो टूक दोई । तब स्वामी के मन करुणा आई ।
ध्रग ध्रग येही संसारा । माहा पापी मनोखा अवतारा । १० ।
झाड़ पीड काटी निकन्दन करे । केताक जीव मारी भक्षण करे ।
झूठ सांच करे वैपारा । पापी पीड न भजे मुरारा । ११
दंड पाखंड करी मासे भीख । दया दीनता काहू कूं न लेख ।
चोरी नारी पर राखे भाव । जोजक कारण खेले दाव । १२ ।
ऐसो कहे भाहे भाहे जो भाखी । दीयो खणतो हात से नाखी ।
धीग धीग मोही संसारा । सब वस्तु तजी भजु मुरारा । १३ ।
ऐसो कही गयो घर माही । सुतो जीहा आसन वीछाई ।
ओढे चादर लम्बी ताण । आंत्रगत धर्यो नीज ध्यान । १४
सोवत सोवत रजनी आई । तब लु महेकी लायो भाई ।
देखी ठबड बहुत रीसाणो । लछमी काज न कीयो ठीकाणो । १५
ता दीन सींघाजी सुता उपवास । करे भक्ति बहूत उदास ।
ऐसे करता पहेर चौथो आयो । सींघाजी कुं अरुण जगायो । १६

[1]—आज्ञा । [2]—कुदाली ।

सींघाजी वोद के मन के माहीं । भणी गउ घेरी छे कोई ।
दुजी हाक गयेब की पुकारी । सीरो सबद आमीरस भारी । १७
कहै सींघा हाक मनुस की न होई । गैबी पुरष आयो कोई ।
चेत्यो स्वामी द्वारे आयो । गयेबी पुरस को दरसन पायो । १८
तब स्वामी द्रढ कीयो मन । नक सख सुध नीरख्यो तन ।
द्वादस बावरी कछनी काछे । गले कंठी करतुम्यो वीराजे । १९
छोठी आस्थु लगर बो गात । स्याम मुरत बदन बीख्यात ।
देखी स्वरूप स्वामी लागो पाई । तबही बोलें श्रीपति साई । २१
माग मागहूँ प्रसन तोही । जो कछु तेरे मन ईछा होई ।
कहें सींघा हूँ मांगी काहा जाएू । मो मत वोछी बुध कोहीणो । २
कहे सींघा मोहे भांजो[1] संदेह । हाम सब रस मागा येह ।
देह धरु न भक्त कहाउ । वहोर वहोर भ्रम बास न आउ । २२
मागों सींघा सो ही दीनो । भक्त बछल प्रतीपाल जो कीनो ।
दई प्रसाद सीर हाथ जो धरे । करो भक्ती जुग जुग सारे ।
कही सबद नीरंभ्र सीधारे । दीयो आभी पद जग दातारे ।
औसो सबद कहे आंत्रजामी । भक्त बछल सदा नेह कामी । २४
तरण तारण की गत मत बताई । तबते स्वामी मील रहे माही ।
जब ते स्वामी को भ्रम भागो । होये नीसंक मन गायण लागो । २५

॥ विश्राम ॥ ७ ॥

करे कीरंतन नीरन्त्र नाचे । भीत मोडे आंग ।
पान्च पचीस संग कर लीया । सो नाचे नीरगुण की संग । २६
मान सी गमरता आनन्द भयो । बीधवा भई पाच पचीस ।
पाच पचीस ब्रभ में गली गया । तब घर बसे जगदीस । २७

स्वामी लागो हारी का ध्याने । लोक वेद को आठक न माने ।
गुरु को सबद मीर परै राखे । आजरा भरत आमीरस चाखे । १

[1]—दूर करो ।

कथनी कथे नीरगुण वाणी। प्रेम भक्ती वीरला जन जाणी।
होये मगन नीसंक कर गावे। देव द्रष्ट आंतरगत लावे। २
सबद सुहाल नीर गुण बोले। सांई सदा सम द्रष्ट खेले।
जोग जुगत आसन बांधे। आप मेवे राग घठ मा साधे।
डोगरु हारजी हूवा जब सीख[1]। तब गीन्यता गवली देखी न सख।
कर उपाव रात और दीवस। सींधाजी सुमरे श्री जगदीस। ४
आप अकेला कोई न संगा। वे पाव पचीस मीली कीया दंगा।
कहे गवली गीन्यात मान लीजे। गीन्यात छेक धर याही को दीजे। ५
येसी मत सब मीली कीनी। आप दुहाई घर कुं दीणी।
तामे अष्ट छोटो जवाई। सात पाच मील बुध उपाई। ६
ऐसे करता नीराठ पर आये। आंत्रजामी तुरत ही ध्याये।
जुड़े गवली कीनो उपवाद। तब श्रीपति बोले बीष्पाद। ७
जन मेरे की राखु लाज। आंतगत से सारु काज।
तब सब गवली की मत भुलाई। येक येक रह्या सब तन चाही। ८
मन की उमज मन मा उपजाई। मूदे मुख कछू नीकसण न पाई।
सब गवली सींधा तन ना चाहे। मुख से वाणी कछु आवे नाहे। ९
सब गवली उठ घर खु जाई। घट मा प्रगटे श्रीपत सांई।
सींधा स्वामी आंत्रगत जाणी। कछुव न बोल्या मुख से वाणी। १०

॥ विश्राम ॥ ८ ॥

स्वामी समजे मन मु। मुख से कडी न बात।
औसो आचरज उलठीयो। सो रछा करे रघुनाथ। ११

श्री रघुनात रछा करी। भई जुग मा जाण।
सींघा स्वामी सब रस भयो। सो दीसे मृतक समान। १२

सींघा स्वामी मृतक हो फीरे। लोक वेद की आठक न धरे।
भली बुरी कहे जे कोई। ताकुं पाछो उतर न देई। १

१—शिष्य।

स्वामी खेले नीरगुण दावे। नीरमोही सदा मोहो न लावे।
एक समे सैन्यासी आये। गाव आणगाव के येक ठे धाये।२।

सो चल आये स्वामी के द्वार। करे खेचरी आदीक आपार।
कहे संन्यासी हमे दुद पीलावो। तुम तो बड़े संत कहावो।३।

स्वामी को मन भयो खुस्याल। सब कछू हये तुम्हारो माल।
तीन लोक में माया तुम्हारी। बचे भूट सो हामारी।४।

चेरी तुम्हारी दुहावा कुं गई। लावे दुद सो आरपो सांई।
तब संन्यासी उठे आकुलाई। चालो सब महेकी न होये ता जाई।५।

आतीत[१] गाव के वाहर आये। माता जसोदा[२] को दरसन पाये।
जाये मीले जीहा नदी पोपराड। सीर से पयेडी लीनी उतार।६।

लाबरी गवलेन हमें दुद पीलावो। तुम तो बड़े संत की त्रीया कहावो।
माता कहे पीवो गोंसाई। यामा मेरो कछू नाही।७।

तन मन धन संतन पे वारुं। लेवो और कछू कारज सारु।
पीयो दुद तीनी ठाये। माता पे येक वचन बोहावे।८।

और माता कुं दीनी राम दुहाई। कन्या तेरी सु पहे पाए भणी पीलाई।
माता पयेडी सीर पर लीनी। करता की गत काहू न चीनी।९।

रीता[३] बासण सीर पर धारे। भयो दुद आदीक आपारे।
सीर से वासण तुरत उतारे। दुद का बासण भरे करतारे।१०।

लई दुहावो घु कुं आई। कंन्या नान्ही भवत बीलखाई।
साद कहे कंन्या कुं पहे दीजे। आत्मा कलपी वाकुं गोदी लीजे।११।

नारी कहे मोपे लई ना जाई। आतीत दीनो राम दुहाई।
पहे पीलावण की आठक कीनी। हामने वाचा मनसा मानी लीनी।१२।

---

१. अतिथि। २. सींधाजी की पत्नी। ३. रीता—खाली।

दीना चार खीर ना पाओ माई । मास येक की कंन्यां होई ।
नग्र लोक सब मालूम कीनी । आये आतीत जब आग्या दीनी ।१३।
करे बीनंती आर लागे पाई । कंन्या कुं पहे दीजे री माई ।
माता कहे तुम भणी बदेकाई । कंन्या कुं राखे श्री रघुराई ।१४।

॥ विश्राम ॥६॥

साद‌ु सदा आनंद करे । दीन-दीन आदीक आपार ।
लहे-लहे करती कंन्या दीसे । सो रछा करे मुरार ।१५।
कंन्या तो कोमलाणी नहीं । आदीक सरुप चेढ्यो देहे ।
साद‌ु सदा आनंद करे । दीन-दीन दुणां नेहे ।१६।

साद‌ु सदा आनंद करे । सांई भरोसे काहू न डरे ।
नीस वासर करे राम की सेवा । औगुण तजी पुजे आत्मा देवा ।१।
मगन मत साद गलतान । आदीक कथे ब्रह्म गीन्यान[1] ।
प्रेम सहीत सब रंग ही राचे । वे गीन्यानी पुरस बोले साचे ।२।

आतीथ आभ्यागत की जाणी । हुरदा सुंध गरीबी पहेचाणी ।
सीख साखा कीया भक्त[2] । प्रगट चल्यो सींधाजी को पंथ ।३।
सतगुरु सबद सीर पर राखे । जीवन जन्म सुफल कर लेखे ।
जो बोले सो पुरवे आजे । देस-देस गई ते गाजे ।४।

गुरु मनरंग को पुरयो परताप । स्वामी जपे आजपा जाप ।
सीख साखा भीली मतो बीचारे । मंदीर बांधणे को हीरदे धारे ।५।
सो वचन स्वामी खुं सुनावे । सो वचन स्वामी के चीत न आवे ।
स्वामी कहे ठीकाणो हाम कारण भणी बणावो ।
आघड़ा घडीत आमर छायो ।६।

धरती दुलीच गयेब की बनाता । आघर घरी बीना ठेकी बनाता ।
कहे सीख सुणो माहाराज । कीजो छाया देही कांज ।७।

---

१. ग्यान । २. बहुत ।

स्वामी कहे हाम कछु न जाणा। करो कछू तुम्हारे मन माना।
हाम नीरदा कछू नहीं लावे। करो कछू तुमखु भावे।८।
ईतनी बात स्वामी कही। अब भणी मत बुझो मोही।
तब-सब मीली मतो वीचारे। मंदिर काज नीव जो डारे।९।
नाखी नीव न लागी बारा[1]। सांचा स्वामी सबसे न्यारा।
आप सकत से नाखी नीव। तामे नीकस्यो येक ही जीव।१०।
जात कणा उसको नाव। लगे मजुर तीन[2] घाल्यो घाव।
मारयो जीव लागी घात। स्वामी के ढीग चलगे बात।११।
औसो सबद सुण्यो जब काना। सुणी सबद बहुत रीसाणा।
हाम की सो तुम नहीं मानी। तुम काहे कुं हाल्या लीवी प्राणी।१२।
कहे सीख मारयो मजूर। हाम तो बैठा तुम्हारे हाजुर।
स्वामी खीजे आदीक आपार। तुम तो मारयो अष्ट को
सीरजनहारा।१३।
कीयो गुन्हा लागो दावे। हाम तो नाही घर बंधावे।
कहे स्वामी सीकमजूर नाखु दीजो। सबद हामारो मानी लीजो।१४।
मानो तुम परमेसर पर घाल्यो घाव। सब जीव हामारे घर
येकै भाव।
जबसे सतगुरु लागो काना। तबसे बीठल लागो ध्याना।१५।
नीस वासुर करु उनकी सेवा। सब घट जाणु आत्मा देवा।
तब सकल मील लागें पाई। अब तो रछा करो गुरु सांई।१६।
कीवी गुना माफ जो कीजो। गया प्राणी की सुद लीजो।
गयो प्राणी काहा[3] लीयो वासा। छाडी काया भयो उदासा।१७।
कवण काया कवण घठ संचरे। कोण आस्थान देह जो धरे।
औसो सबद सब मीली सुणायो। तब स्वामी मन आनंद पायो।१८।

---

१. बेर। २. जिन्होंनें।
३. कहाँ।

स्वामी कहे हाम काहा जाणा । जाकी गत सोही पहेचाणा ।
सींघा स्वामी पतीउत्तर दीयो । आपणे सीर भार ना लीयो ।१६।
सींघा स्वामी मन में विचारे । घटी वढी सब सांई पर डारे ।
तब स्वामी भजे गोविन्दा । घट में प्रगठयो ग्यान को चंदा ।२०।

सीख साखा परच्यो माग । तब स्वामी सुमरे श्रीरंग ।
उलठी रीत चली कलजुग । सीख परचो मागे गुरु के आंग ।२१।
ये ही त्रास गये हीत्राल । आंतरध्यान भये गोपाल ।
औसा कली मा वीख की लोल । जती सती सब ग्यानी भूल ।२२।

सब कहे सींघा सुणो रे भाई । परचो पुरावे श्री रघुराई ।
छालपा नगरी येक छे इहा । गयो प्राणी नेश्चे तीहा ।२३।
जात रचपुत[१] सोई कहाये । सुंदर त्रीया ताही को नावे ।
पहेला परथम वालक होई । जाके उद्र[२] आयो सोई ।२४।

होयेगा पुत्र तणो आवतार । बोले स्वामी हाक पचार ।
सोही तीथी सोही वार । मास नव मा होसे आवतार ।२५।
तब सब मील येउ भाखे । स्वामी पर कागद लीखी मागे ।
जब स्वामी कागद लीख दीनो । नवी मास को नेश्चो कीनो ।२६।

बोले स्वामी सबद वीचारी । प्रचो पुरवे श्री मुरारी ।
सकल लोक धीरज न धरे । हेरा फेरा नीच का करे ।२७।
ऐसे करता नव मास जो बीता । भयो वालक हारी सब चींता ।
सबके मन प्रतीत आई । दवड़ के लागे साद के पाई ।२८।
तब धन-धन कहे सब कोई । स्वामी समान पुरख न होई ।
करे दंडवत सीस नवाई । स्वामी की सब करे वढ़ाई ।२९।

धन-धन करी वरत्यो[३] परसाद । तुम तो स्वामी आगम आगाद ।
आंत्रगत की मालम कीनी । उतपत भले दोनु चीनी ।३०।

॥ विश्राम ॥१०॥

---

१. राजपूत । २. गर्भ । ३. बाँटा ।

उतपत प्रले दोनु की चीन्हीं। चीन्ही भाव कुभाव।
घठ मठ नीस दीन रहे। कहे खेम सत भाव ।३१।
सींधा स्वामी समरथ भया। भया भक्ती नीत नेम।
जीवन पद आती सुख लह्यो। सो काहा कहेगा खेम ।३२।

ता पीछे सुणो ऐसी भई। सतगुरु प्रचे जन खेम जो कही।
स्वामी कहे मंधाता जाये। सीख साख सब लीया बुलाये ।१।

जात को नाहाल कालु उसको नावे। भक्त रागी पखावद बजावे।
सजी मंडली चल्यो स्वामी। सदा सरसो आंत्रजामी ।२।

सीख साखा संजी संजुक्त। उमग्यो[१] लोग नग्र को बहुत।
उमग चले बेगी वैरागी। संन्यासी सहीत सबकी धुंद जागी ।३।

स्वामी की संग मंधाता आये। सब मोल आसन कीयो येक ठाये।
जोगी जती और वैरागी। ठवड ठवड[२] सबकी धुनी जागी ।४।

आसपास आसन चहोरा। स्वामी को आसन बीच मंझारा।
बैठो गुपत कोई न जाने। स्वामी लागो हारी का ध्याने। ५

संगी सनेही संजुक्त कुं जाई। जीने तीरथ मा वात चलाई।
सींधा स्वामी स्नान कुं आये। सीख साख दरसन कुं ध्याये। ६

ता पीछे लोक जो ध्याये। पान खोपरा नारेल लाये।
सकर मीठाई और बतासा। लवग वेलाची खारक दाखा। ७

चौ दीसा से लावे नर नारी। स्वामी ले सोपे करतारी।
रोक रुपैया पैसा चेड़ावे। स्वामी तो कछु हात न लावे। ८

स्वामी कहे पठे राम का दीजो। मेरो नाम भणी कोई लीजो।
हाउ सदा सेवक राम को चेरो। ये ही माया राम की राम को
पसारो। ६

---

२. उमड़ा। ३. स्थान-स्थान पर।

आयो प्रसाद टोकर दस पाच । कोई जन गावे कोई पुस्तक बाच ।
बहूरंग मच्यो स्वामी के पासा । केतेक भजती केतेक उदासा । १०
सींघा स्वामी वरत्यो परसाद । सन्यासी वैरागी मंडयो[1] उपवाद ।
गुस्नी गवली साद कव्हावे । आप ही बेठो आप पुजावे । ११
सकल भेक को मरदे मान । चलो स्वामी देखा वाको ग्यान ।
महंत वैरागी चार पठाये । सींघा स्वामी के आखाड़े आये । १२
आये वैरागी आखाड़े मंभारा । देखी सभा पगड़ी वन्द सारा ।
लोग से पूछे स्वामी को नाव । चालो हामारा सीरदार महंत
बुलाव । १३
बोले सींघा स्वामी सीतल वाणी । महंत कहे सो हामने जाणी ।
वे कहे सो हामसे काहा होई । हाउ रहू आनाथ राम के सरणाई । १४
आये सुणावो महंत से ऐसी । हाम काहा जाणा बात है कैसी ।
गये वैरागी महंत से कही । ये बाबु तो आवे नाही । १५
अब महंत मन में रीसाणो । उठी आसन तज्यो ठीकाणो ।
कहे महंत वाको परचो लीजे । की बांधु पाग की मेख वाही सु
दीजे । १६
आतुर चलकर स्वामी पर आयो । सींघा सींघा करी बतलायो ।
कडी द्रष्ट बोले विकराल । आती क्रोध से बोले नीठाल । १७
सींघा स्वामी से बतलावण की करे । हलका भारी वचन उचारे ।
कहे महंत तुम साद कव्हावो । गैबी घोडा आसमान से लावो । १८
गैबी दाणा और गयेब का पारो नीरा । तब हामारे मन उपजे धीरा ।
जब हम साची करी माना । रामानंद कबीर तोही कुँ ठाना । १९
कहे स्वामी हूँ है उनके पग की धुर । काहा श्री रामानन्द काहा
दास कबीर ।

१—आक्षेप उठाना ।

येही पठंओ मोहे न दीजो। हूँ है आनाथ मोहे प्रेम सुख दीजो। २०
सींघा स्वामी बोले येही। तुमसे प्रभु सब कछू होई।
कहै सींघा सबद येक रमाउ। जो स्वामी तुम दुख ना पाउ। २१
तम हो सतगुरु साई। तमसे सीरजे सब काई।
तम लावो घोरा हाम लावा दानो। छाडो वेवाद[1] सबद ही मानो। २२
सत सबद मानो सरीरा। आए पाओ गयेब का नीरा।
जो तुम मन मा न लावो भीन[2]। तुम सुहाये तो मांडु भीन। २३
तंग तोबरा सगरो साज। मोहे भरोसो तुम्हारो आज।
आसुर के हात से मोहे छोड़ावो। जब करी कृपा जी रघुरावो। २४
आब तो मोहे दरसन दीनो। जनम हामारो सुफल करी लीनो।
तुम हो भक्त बछल प्रतीपाला। दीयो दरसन कीयो नीहाला। २५
पहेले आपणा को परचो लीजे। जब जाये दूसरा कुं दीजे।
सपुत कपुत मालुम होई। जैसे नर तैसे प्रतीत होई। २६
तब रघुनाथ कृपा कीना। गयेबी घोड़ा आसमान से दीना।
तब वैरागी मन मा मुसकानो। आयो आतुर सो पडयो खीसानो। २७
सींघा स्वामी कुं समरथ सो देख्यो। वैरागी आपणु जीव लए
भर लेख्यो।
कर जोड़ी ने लागो बाठा[3]। स्वामी बैठो आपणे ठाठा। २८

॥ विश्राम ॥ ११ ॥

स्वामी तो सुमरण करे। जपे आजपा जाप।
हाद छाडी बेहाद मारये। जीही पुंन नही पाप। २९

ता पीछे सन्यासी कीवी फीरीयाद। कीवो फीराद बदेवाद।
हूरदा दगा मत नहीं बूझे। फीरे उद्मद काहू ना सूझे। १
जीहा मुगल येक आतुर सो आयो। ता सखन सबद सुनायो।
खोटी खरी कही कमी ज वाद। देखो इहा येक आयो छे साद। २

१—विवाद। २—भेद भाव। ३—रास्ता लगना।

तीरथ वरत को मरदे माना । ऐसी कही मुगल के काना ।
माथे पागडी काहू कूं न माने । जात का गवली चेडयो आभी
माने । ३

ताल पखावद झाजर बजावे । बैठो आसन भक्त पुजावे ।
नर नारी भक्त रीझावे । सरूप वेहूनो साद कहन्हावे । ४

भक्त आभीमान डर काहू को न लावे । और कुं न पूजे आप
पुजावे ।
नारेल खोपरा द्रव चढे आपारा । अग नाद मोहयो संसारा । ५

ये उहा मांडयो छे बजारा । असी साची झुटी कही हजारा ।
सुण सुण मुगल दीयो जुवाव । होयेगा कोई तुम्हारो बाप । ६

तुम फकीर नाहीं खुदा के खोये । कठन फीरीयाद हामपे लाये ।
पहले परचो तुम ही बतावो । ता पीछे उस पुरस खु लाओ । ७

गये फीरीयाद सो रोके सन्यासी । मुगल के घट प्रगटे आभीनासी ।
ता पीछे स्वामी खुं मालम होई । आवीगत की गत मुझे न कोई । ८

तब लग महंत खुं मालुम होई । रोके सन्यासी मुगल ने सोई ।
कहे महंत एक ऐसी बाता । कवण सी चूक कवण उतपाता । ९

कहे लोक इहा आयो येक साद । ताके उपर करी फीराद ।
तब महंत खीजो दीनी गारी । देखी मुड़िया करी आलवारी । १०

हाम कु सबद येक ना सुनायो । कीयो काम बीना फुरमायो ।
तब महंत मुगल पे आयो । सबद येक सीतल सुनायो । ११

तुम हो दीन खुदा के प्यारे । छोड देवो संन्यासी सारे ।
ईनहू भाव भक्ती मरम न जाने । बेद कीताब बुध मनमु आने । १२

कहे मुगल सुनो गोंसाई । येक साद को अवजस कराई ।
आयो साद तापर परच्यो लीजे । आबही बुलादे ताहे पची कीजे । १३
असी हामारे आगे कडी कही । हामारे मन में करवत वही ।

तब हामारे से कछू न बनी आई। जब हामारे मन कुं रीस आई। १४
नामदेव जात को रंगारो। गउ जी बाई ने देउल फेरो।

साद सती पर परचो मांगे। सो जरी मुवा बीन आगे[1]। १५
हमे सत कछू आसत नाहीं। उच नीच गीनजो मत कोई।

येक ब्रह्म पुरण रहे छाई। जोजक छाड मीस्तक में जाई। १६
अैसी वुध मुगल के घट प्रकासी। छोड़ दोये सारे सन्यासी।

तब ही सन्यासी सुख पाये। ले अतीत आसन पर आये। १७
आगाड़ी कथा कहा लु कहू। कहेत कथा को पार न लहू।
तब संन्यासी आसन पर आये। ता पीछे मुगल स्वामी पर प्रसाद
लाये।१८।

लीजो सींघाजी तुम्हारी भेट। कीजो कुबुल साईं की पेठ।
फीरीयाद तुम्हारा हाम लु आई। बहोत चुगली संन्यासी खाई।१९।

कहे सींघा धन-धन तुम सांईं। तुम बीन आयेसी कोण कराई।
जो कोई सरण तुम्हारे आये। सो सब ही सुख पाये।२०।

हामको कछु मालूम न होई। कोण जाणे पर पीठ कैसी होई।
सर आवसर की कोण सुधारे। तुम बीण ऐसी कोण बीचारे।२१।

परमारु काम चुकायो। सींग स्वामी पे येकु न आयो।
स्वामी मन में प्रतीत पाई। का हालु करु राम की बड़ाई।२२।

॥ विश्राम ॥१२॥

रसना येक का हालु बरनु। आस्तुत करत न आवे मोहे।
पाव गुन को पार न लहू। जो रसना रोम-रोम होये।२३।

रोम-रोम रसना होत है। तोउ पार न पाये।
नीरगुण को गुण आपार है। खेम काहा लु गाये।२४।

१—अग्नि।

खेम का हाल गावही । काहा लु जपही जाप ।
धरा आमर तीन लोक मु । सवी दीसे गरगाप ।२५।

धरा आमर लु पुरी रह्यो । जाके नाम नही जाप ।
साद सती ध्यावही । आठु पहेर गर गाप ।२६।

दीना दूसरे संन्यासी आये । सींघा स्वामी को दरसन पाये ।
धन-धन साधु जन को स्वभाव । भली बुरी मन मु न लाव ।१।

कहे सींघा सुणो गोंसाई । हाम हे सेवक तुम हो साई ।
कोई करे दाव कोई करे उपाव । प्रेम भक्ती वीरला जन पाव ।२।

येक वृक्ष और सकल साखा । जाके घट जेसो तैसो फल चाखा ।
साखी सवद सीखे और गावे । प्रेम भक्ती वीरला जन पावे ।३।

जो सवद की माड मडानी सारी । जीमी आसमान पुरस और नारी ।
जामु जीया जोयेण चार बखाणी । चंद्र सुरज पवन और पाणी ।४।

बावन आखेर नव आखेर सांही । सतगुरु सीख बतावे येही ।
पीडी पंना लै छत्र और धाम । बरणा बरण पुरीया राम ।५।

कहे सींघा हामकुं ऐसी भासी । तुम हो महंत बड़े आभीनासी ।
हाम बालक काहा करी जाना । तुम आगे मैं केतोक सीयाना ।६।

येउ स्वामी सीतल मत प्रकासी । तब आपणे आसन चले संन्यासी ।
कहे आतीत तुम आसन बैठो जाई । तुम हो हामारे जेठे गुरु भाई ।७।

तब स्वामी बहुत आस्तुती कीनी । भक्त बड़ाई भगवंत कुं दीनी ।
स्वामी भवत जपे जाप । गुरु मनरंग को पुरयो प्रताप ।८।

ता पीछे स्वामी पीपले आये । नग्र लोक सब दरसन पाये ।
स्वामी आपणे आसन बैठे जाई । करे भक्ती येक चीत लाई ।९।

नग्र से उत्र[1] दीसा येक खाली[2] । ताहा स्वामी आपणु अंग पखाली ।
पुरब दीसा बहेता को पाणी । बाण गंगा नाव तीसको ठाणी ।१०।

---

१. उत्तर । २. नाला ।

तामे स्वामी आंस[1] आपणो धरही । पाप ताप सबही हारही
नगर लोक सब हासी करही । स्वामी तो कछू मन में ना धरही ।११।

स्वामी तो चले समता भावे । दृष्टी लोक पार न पावे ।
सींगो गवलै भुलैं फीरे । नीकास की खाले में आस्नान जो करे ।१२।

तब स्वामी खद-खद हासे । मन हामारे तीरथ ये ही बसे ।
हम आलसी न जावा दुर । हामारे तीरथ येही हाजुर ।१३।

आगे आंत्र दुगधा[2] न होई । ताको तीरथ बसे सब येही ।
जीहां संतो से साद जन । सकल उर मा रहतो को मन ।१४।

ताके पीछू सब कछू हो आवे । सींघा स्वामी बोले सत भावे ।
स्वामी धरे तीहां आपणों आंस । वाए गंगा केर बोले उलास[3] ।१५।

सुध[4] मन से करे आस्नान । होवेगा पद मुक्त नीदान ।
वाचा मनसा से आस्नान जो करे । रोग पीड़ा सब पर हारे ।१६।

सींघा स्वामी ऐसी जो कहे । जुग-जुग नाम आवीचल रहे ।
सींघा स्वामी ऐसी भयो । छीन येक माता को प्रसंग कह्यो ।१७।

कुमावद परचरी भाखी । दयाल सुत दीनी साखी ।
पहेले महंत संत ने कीनी । सोही गहेल[5] सींघाजी ने चीनी ।१८।

सुमरे राम कीयो संघाती । मनरंग के सीख ब्रह्मगीर के नाती ।
सींघा स्वामी सुरातन कीनो । राम दल मु मस्तक दीनो ।१९।

॥ विश्राम ॥१३॥

सनमुख धसे रानदल मु । आनहाद कमाण चेढ़ाये ।
गीन्यान घोड़ा गयेब का । पांचे मारे ठाये ।२०।

ता पीछे स्वामी खु दल आये । दोनो गाव रास बनाये ।
कीनो.मंडा न तीनो ठाये । फेरि दल जो साधु बुलाये ।१।

---

१. अंश । २. दुविधा । ३. उल्लास ।
४. शुद्ध । ५. रास्ता ।

येके वार और येके तीथ[1]। रचो रास तीहा आती जुगत।
दोनो. ठाम के लेन कुं आये। येक-येक को मुख देखी चाहे।२।
लाये दल जो करे वीचारे। न जाणु स्वामी कीतहूँ पधारे।
स्वामी समजे मन के माही। दीनो उत्तर दोंना ताही।३।
तुम जावो आपणो काम सुदारो। आवके न आवणु बणे हामारो।
तुम आपणे घर सीधारो राम नाम मुख से उचारो।४।
दोये घर काम येके दीना। येक के जाउ तो उपजे भींना।
कहे सेवक ऐसी न कीजो। ये ही पगल्या वाहालु दीजो।५।
देवो द्रसन तो आनंद होई। कर जोड़ के लागे पाई।
कहे स्वामी तुम जावो घर। आंत्रजामी सकल सीध कर।६।
मनसा सुघ से कीजो काम। परसन[2] होवेगा श्रीराम।
भक्त-वछल[3] सदा हीतकारी। जीहा भीड़ पड़े तीहा कारज
सुधारी।७।
धुल-धुल माहे देहे जो धारो। सकल घठ माही जोत परकारी।
मरम तुम्हारो कोउ न पावे। आकलीत ब्रह्म कलीत न आवे।८।
ऐसी आस्तुती स्वामी करे। तुम वीना यो कारज कोण सुधारे।
आंत्रगत प्रगठे हारी। आनेक नीला[4] साद की करी।९।
तब स्वामी धरयो नीज ध्यान। जब कृपा करी श्रीभगवान।
येक कला रही घर माही। दुजी प्रगटी दोनु ठाई।१०।
जे समे स्वामी चली गयो। सभा सारी खु दरसन भयो।
भक्त सनमान स्वामी खु दीना। सीस नवाय दंडव्रत कीना।११।
लाये नीर जो चरण पखाल। सभा सारी भयी खुसीयाल।
धन'धन स्वामी पावन कीना। हाम से आये दरसन दीना।१२।

---

१. तिथि। २. प्रसन्न।
३. वत्सल। ४. लीला

स्वामी कहे धन तुम्हारो भाग। जैसो ब्रक्ष[1] तयसो फल लाग।
जो नर वाचा मनसा कर ध्यावे। साची सेवा नीरफल ना जावे।१३।

लंदा बीछौंणा लंपट वीछाये। ताहा ले स्वामी खुं बैठाये।
चरचा करता बीती आधी रात। पहेरती सरे वरत्यो परसाद।१४।

सब मील चरचा कीनी। करता की गत काहू न चीनी।
भयो परसाद स्वामी लोपी देहे। सभा सारी मा पडयो संनेहे।१५।

सींघा स्वामी लोपी देही। भ्रमीत हुआ सकल सब कोई।
उच नोच कर दृष्टि नोहारे। राम करे सोही कलपात करे।१६।

सभा कहे हाम बोल्या नही। भूठ कव्हा तो राम दुहाई।
दोनु ठाम बात ऐसी होई। स्वामी की गत लखे न कोई।१७।

दोये-दोय जना घुंडन कुं जाई। कछु चाले कछू दवडाई।
ऐसी वीध स्वामी पास जो आये। कर प्रणाम लागे पाये।१८।

कहे सेवक स्वामी काहा कीना। वीसवासघात हाम कुं दीना।
इतनी बात करन जब लागे। दूसरी ठाम के आवे तब लगे।।१९।।

दोनु दल की लीनी बात। आंचबी[2] रह्यो सगलो सात।
लोक कहे स्वामी हामारे आये। घर के लोक भेद न पाये।२०।
रयेन सारी सुमरण कीनो। कब आये तुमखु दरसन दीनो।
आये लेन सो आंचंबी रहे। पलट पाव स्वामी के गहे।२१।

हाम आपराधी कछू न जाना। चाम द्रष्टि कुं भक्ती ना चीना।
तब स्वामी सबद उचारे। दीनो द्रसन देव मुरारे।२२
कहे स्वामी भणी करो बड़ाई। दीनो द्रसन श्री रघुराई।
आंकुर तुम्हारो प्रगठ्यो आज। कीनी क्रपा सारयो सब काज।२३
।। विश्राम ।। १४ ।।

---

१. वृक्ष २. आश्चर्य।

कारज सुदारण जगदीस है। कही कला कही अेक।
गोपाल लीला नटवर कला। छेदे पाप आनेक। २४

पातक खंडण दुख हारण। आसुर निकंदन जेहे।
घट मठ नीरंतर रहे। ताकुं कोई वीरला लेहे। २५

ऐसा प्ररचा स्वामी कुं भया आपार। स्वामी कुं न जाणे संसार।
घर बाहेर के मरम ना बुझे। चाम द्रष्टि कुं भक्ती ना सुझे। १

ब्रह्म ज्ञान को न पाये भेद। सकल कलीजा वे छेद।
मीन सरूपी सीरगुण कुं ध्यावे। आकलीत ब्रह्म कलीत न आवे। २

स्वामी की सेवा कोई न मान। भासे नाही ब्रह्म गीन्यान।
स्वामी की गत कोई न जाने। आंधे संसार खेचरी ठाने। ३

स्वामी की प्रतीत न जाणे संसार। स्वामी भये कलु मा कृष्ण अवतार।
पाव पदम झलके लाल। गोरो गात मुरत वीसाल। ४

नीस बासुर हारी गुण से काम। सबके मुक्त दाता राम।
नीकसे सबद सो खाली न जाहे। आघठ वाणी कहे घट माहे। ५

येक समैये स्वामी मरण वीचारी। आमीपद मनमाही धारी।
आये मीलु आपणे परीवारा। तजी माया मोहो पसारा। ६

जन सींधा जी येह उचरे। पख पहैले मालुम करे।
तब लग गुरु मनरंग कह्यो पठाई। श्रावण सुदी छूटे देही। ७

पुरणमासी के दीन नीकसे गात। कही पठायो सीख के हात।
सींघा स्वामी से मालूम कीनो। आण पत्रीका गुरु की दीनी। ८

गुरु के पास से संदेशो आयो। सींघा स्वामी मन अनंद पायो।
गुरु को सबद मानी लीयो। सीस नवाये दन्डवत कीयो। ६

गुरु को सबद मांनी लीजे । पुरण मासी पहले काम जो कीजे ।
श्रावण सुदी नवमी सार । ता दीन स्वामी ने कीयो विचार । १०

स्वामी बैठे आसन बाल । हीरदे सुमरे श्री गोपाल ।
आंम्रत वाणी मुख से बोचरे । प्रेम भक्तो आति आनन्द करे । ११

ताल पखावद झाजर जोड़ा । स्वामी बैठे आसन जोड़ा ।
उत्तर दीसा मुख जो कीनो । मंदीर आगाड़ी आसन दीनो । १२

तब बोले स्वामी कर जोड़ । जीरभा नाड़ी ठवड की ठवड ।
सुगुरे नीगुरे बैठे आई । स्वामी की कला मालूम न होई । १३

पड़े नहीं मालूम काई काजे । स्वामी ने देही छोड़ा आजे ।
भयो स्वामी आंतरध्यान । नीकसी जोत जोत मा समान । १४

रोवे कुटुम कबेलो घर । नार सीख साखा आदीक आपार ।
नम्र लोक भक्त पस्तावे । कर कल्पना वीलख्या[1] रोवे । १५

रोवे नारी पठके सीस । तेकेउ रुठ्या श्री जगदीस ।
नान्हा बालक तानो सात । रोवे नार करे कलपात ।

कालु भोजु चारों सुत । संदु दीप नान्हा पुत ।
ऐसो कही रोवे घर नार । कवण गत भई करतार । १७

ढुल मुल ढुल मुल नारायण रोवे । कीसना बाई के आसू न आवे ।
रंगु बैण[2] काका की बेठी । सांई सीस पठक लट छूटी । १८

करुणा करी रोवे सब कांये । धीरज ना धरे कलपना करे सोये ।
स्वामी खरा सबद नीज ठाण । चवथे पद पहुँचे नीरवाण । १९

मुक्त पद स्वामी भये । सहेज सुंन पोहता धाये ।
आवीचंल पद पोहचा दास । तीहा जीवन पेद आति सुखरास । २०

०॥ विश्राम ॥ १५ ॥

१—बिलख कर । २—बहिन ।

जीवन पद जीहा सुख घणा । करता वीसंभर जेहे ।
आगम पंथ सु गम कीया । स्वामी भये वीदेहे । २१

सीधा स्वामी नाखी देहे । छाड़ी काया सकल निनेहे ।
पोहचे स्वामी आमर पद जीहा । रही काया भो संड तीहा ।

छोड़ी स्वामी देही तीनो ठावे । मूँधी प्रगणों पीपल्यो गावे ।
पूरब दीसा दीनी संमाद[1] । जीहा मील्या संत और साद । २

गावत बजावत ले जाई । चोवा चंदन चरचे सब कोई ।
स्वामी का दीनी संमाद । करे वीनंती सगरो सात । ३

मुक्त प्राप्त भये स्वामी । सकल सीध कीजो आंतरजामी ।
ऐसे कही सब घर कुं जाई । स्वामी के गुण कोई न पाई । ४

येक बात वसे सबके चींता । स्वामी ठाणी जो कीजो तीथा ।
कीजो सरद पुनेव को मेलो । ये३[2] बोले नरायेण चेलो ।५।

गुरु को सवद मेठो भणो कोई । कीजो स्वामी को सबद खाली
न जाई ॥

बाको वरत सोही नीभावे । स्वामी को सबद खाली नी जावे ।६।

ऐसो सबद सब मीली भाखे । सगलो भार स्वामी पर राखे ।
ता पीछे येक आचरज भयो आई । ब्राह्मण येक कुं दरसन
भयो ताई ।७।

ब्राह्मण मन मुं आचंबो रहे । देखी दीदार कछू न कहे ।
देखे ब्राह्मण महेकी चारे । कर चड़ोर द्रष्टी नीहारे ।८।

चेडीयो सूरज घड़ी दोये । स्वामी संग बात जो होये ।
बुझे स्वामी सबकी कुमलात । हास-हास ब्राह्मण से करे बात ।९।

---

[1]—समाधि ।

[2]—शरद पूर्णिमा ।

स्वामो काज ब्राह्मण बुभण की करे। भूलो वीप्र उघट ना परे।
गैवी सब्द उठयो तीनी ठाई। उलठ ब्राह्मण पाछो चाही।१०।

तब ताहा स्वामी लोपी देहे। ब्राह्मण मन मा पसताई रहे।
गयेबी पुरस गयेब मा समाये। ब्राह्मण मन मा भक्त पस्ताये।११।

मै अपराधी मत को हीनो। गयेबी पुरस कुं नहीं चीनो।
कर करुणा आदीक आपार। हूँ नीगुरो न जाणु सार।१२।

मेरी मत सब भुलाई। नहीं तो उनका लागतो पाई।
गयो वोप्र नग्र के माही। छाडी महेकी जाहा की ताही।१३।

जाये पटेल से बात सुनाई। साद दरसन मोसे भयो आई।
कहे कोण साद दरस्यो आज। साची कहो हामारे काज।१४।

सांधा स्वामी पीपल्यो जयेसो। नीमाड खंड माता को वासो।
लोक पूछे बात कब की होई। सांधा स्वामी ने छाड़ी देही।१५।

तीन मास ताकु गुजर गया। तुमकु दरसन कबहू भया।
कहे ब्राह्मण आबको घड़ी। सीर पर चादर हात लाकड़ी।१६।

घड़ी दाये लु चर चाकरी। पायो दरसन सब बुध बीसारी।
स्वामी सनमुख चरचा करे। जेउ-जेउ मन उमंग धरे।१७।

स्वामी सनमुख ठाड़ा आप। मोहे मुख ना नोकसे जुबाप[1]।
कहू बात जो साची मानो। स्वामी जीहा खरो लोपानो।१८।

कहे ब्राह्मण हाउ रमतो उनकी सात। कहेण गयो आज की बात।
आज की कथा कछु कही ना जाई। मानो सूरज रह्यो बदन पर छाई।१९।

कहे ब्राह्मण ऐसी बात। बताउ ठाम जो चालो सात।
धन-धन ब्राह्मण को जोग। लई प्रसाद चाल्या लोग।२०।

नग्र लोक लाया प्रसाद। जीहा वीप्र को दीस्यो साद।
देखा पगल्या तहे भाउ। करे प्रकंमा देही काज।२१।

१—जबाब ।

कहे ब्राह्मण हामसे चर्चा करी । सनमुख ठाढ़ा दोनु घड़ी ।
बहोर लोग लागे ब्राह्मण के पाई । धनधन जनम सुफल तेरो होई ।२२।

चरचा करी वरत्यो परसाद । करे लोट गणी जीहा ठाडो साद ।२३।

॥ विश्राम ॥१६॥

करे लोट घणी प्रीत से । रुची-रुची वरत्यो परसाद ।
सदा सरबदा को करे । जीनका मता आगाद ।२४।

जो ब्राह्मण कुं दरसन दीयो । लागो परमोद गुरु मुख भयो ।
गुरु मुख ब्राह्मण जब ही भये । बाणी बोले नीरगुण कहे ।१।

सो चरचा चाली पीपले आई । भयो दरसन येक ब्राह्मण ताई ।
स्याम वीप्र हये ताको नाव । भयो दरसन तीहा छीरबो गाव ।२।

ऐसी बात जो आणी कही । कोई जन माने कोई जन नाही ।
भूटो दुवो कोई न उड़ायो । काहा हये साद कीने दरसन पायो ।३।

आपणी-आपणी बात सब मील ठाणी । उस पुरस की बात न मानी ।
माता जसोदा सबद बीचार । और कोई न बुझे संसार ।४।

येक आचंबो बहोर भयो । भूलो बालक तीहा जो रहयो ।
रहयो बालक स्वामी की संमाद । करे रछा स्वामी देवे परसाद ।५।

बरस पांच को बालक खेल । रहे ना डरे साद को मेल ।
मात तात कुटम सब रोवे । गयो बालक काहा से पावे ।६।

माता पीता कलपे आमारा । बालक बीछड़ो कीयो करतारा ।
द्रष्ट आगे तो जानो सही । तो हामखु दुख लागतो न कही ।७।

धुंडत-धुंडत दीन पांच जो गया । मुवा बालक सब कोई कह्या ।
कहे लोक बालक ना पावे । बालक जीमाओ ताके नावे ।८।

येही नीमत भयो हये ताको । करता नीमत लीख्यो हये वाको ।
बालक काज पखवाडो बीतो । भयो चरीत्र आण चीतो ।९।

मात तात कहे याकी अैसी भई । की कीनको कर राख्यो सही ।
की खाल्या नाल्या चुक्यो संदी । बालक खेले साद की गोदी ।१०।

समाद ताई कोई न जावे । कैसी सुद बालक की पावे ।
सीस पछारी येसी रहे । दुख वोसारी न चींता भये ।११।

येक दीना स्वामी बालक से कहे । तेरे मात पीता पे ले जाउ तोहे ।
कहे बालक नहीं जाउ तीहा । हाउ बहूत सुख पायो छे इहा ।१२।

मेरे घर सदा रुखो खाउ । घीव खीचड़ी सपने न पाउ ।
दुर दही काहा से लाउ । खांड खोपरा इहा पाउ ।१३।

खारक खोपरा चबेणी । ये चीज जनम भर न जाणी ।
मेरे घर बहुत दुख पायो । मेरो मन इहा सुख पायो ।१४।

बहोरी बालक बोले बाता । जो जाउ तो ले चलो साता ।
सुण सबद स्वामी भये खुसीयाल । धन-धन ये करता के ख्याल ।१५।

गद-गद कंठ हासे स्वामी । आये प्रगटी आंतरजामी ।
स्वामी के मन ऐसी बात । लै मीलाउ बालक के सात ।१६।

पास बसे येक गाव । वोरखेड़ा तीसको नाव ।
तासी गेल माता नीसरे । आणी बालक तीहा उभो करे ।१७।

आएबो बालक वाट के सीर । आडी माता वाठनी सर ।
देखी आना श्रुत महतारी । तब बालक माता के प्रकारी ।१७।

तब प्रीया मन धीरज धराई । स्वामी सनमुख उभा आई ।
पुत्र-पुत्र करि उँचबिमुख चू बोलियो । कहे रे बालक ते
काहा रह्यो ।१६।

आरे प्राणी तू काहा दुख पायो । करी द्रसन कंठ से लायो ।
माता कहे हाम मुवो ताक्यो । बालक काज राम जी आप्यो ।२०।

कहे बालक हाउ आति सुख पायो । आदीक्र लाड़ मोहे स्वामी लड़ायो
कोण है स्वामी माता जो कहे । कोण सो जन्म काहा जो रहे ।२१।

माता काजे बालक कहे । देखो स्वामी सनमुख ठाडो रहे ।
लंबी धोती चादर माथ । पाव पावडी लाकड़ी हात ।२२।

माता की द्रष्ट स्वामी न आवे । स्वामी आपणु गात छीपावे ।
माता पुत्र मीलाव जो कीन । तब स्वामी-स्वामी भये आंतरध्यान ।२३।

अंत्रध्यान स्वामी भयो । बाल बीछोडो मेलो कीयो ।
स्वामी-को जब जातो देख्यो । रोवे बालक आति बिलख्यो ।२४।

तब माता पुत्र समजायो । लीनो गोद मारग लायो ।
लई बालक घर कु आई । आती आनंद भई वधाई ।२५।

बड़ो आचंबो नग्र मा भयो । गयो लड़को दरजी को पायो ।
नग्र लोक सब देखण सुं आये । देखी बालक आचरज पाये ।२६।

कहे रे बालक ते काहा रह्यो । बालक कहे हूं खेल मू रह्यो ।
बूझी लोक सगरी बाता । रह्यो बालक तू कोण की साता ।२७।

कहे बालक हू रह्यो बाबा की सात । सींधा स्वामी कहीये तात ।
घीव खीचडी मोहे जीमावे । कर कृपा कंठ से लावे ।२८।

दूद भात जीमावे दही । भात-भात की चवेणी कही ।
पाणी मोहे नदी को पावे । घड़ी येक बीसर ना जावे ।२९।

ऐसी बात बालक को सुनावे । तुम तो घड़ी भर छाड़ी जावे ।
स्वामी तो कहू आवे न जावे जे । मांगू सो नेश्चे लावे ।३०।

ऐसो सुख तो स्वामी दीनो । बालक काज चरंजी कीनो ।
मात तात पुत्र में लोभ्यो । भक्त आचरज नग्र मा भयो ।३१।

॥ विश्राम ॥१७॥

स्वामी सदा सरसो रहे । राख्यो बालक सा'त ।
बालक काज रछा करी । सो दीनो मस्तक पर हात ।३२।

माथे हाथ बालक के दीयो। धन धन जुग ताही को जीयो।
जीन पर स्वामी कीनी दया। तेही पुरस को दरसन भया। १

येक समे उहा चमारा द्रसन कुं आये। सो स्वामी कीसमाद ताई जावे।
नीचा मस्तक से चाल्यो जावे। तब स्वामी ने लीयो बुलाये। २

छठु मास स्वामी कुं भया सही। ता पीछे बात ऐसी भई।
दवडी चमरवा लागो पाई। जनम सुफल आज हामारो होई। ३

आती आधीनी चमरवा कहे। मेरे पीड प्राश्चीत आज हू गये।
पहेर एक लु चरचा करी। तब लू आगे पाछे द्रष्ट नीहारी। ४

चमरवा के मन उघठना परे। बोले स्वामी येके सारे।
बहोरी स्वामी बोले बाणी। साद मत काहू नही जाणी। ५

आड़े आसन मोकु सोवायो। कीयो काम बीना फुरमायो।
जल को दाग हामने ठाण्यो। हनोने कीयो आपणो जाण्यो। ६

कहीयो जाये समाद खोदावे। बैठो आसन मोकु बैठावे।
चमारा कहे तुम ठाडा रहीयो। लाउ बुलाये तुम ही जो कहीयो। ७

चमरा उलठ पाव चार जो गयो। तब लु स्वामी आलोप जो भयो।
देख चमरवा पाछे जाई। स्वामी की ठवड दीसे नाही। ८

सपनांत्र सो स्वामी दीयो। चमरवा मन में आचंबो रहयो।
ठाडो मन में करे बीचार। कहू बात मानसे न संसार।

हासत हासत चमरवा घर कुं गयो। सुकची सबद कामनी सु कहयो।
जननी जसोदा सींघाजी की नार। कहू सबद सी चीत मा धार। १०

कहे चमरवा सुणो सब संत। मोह स्वामी दरस्यो संत।
पहेर येक लु कीनो बात। ताकी साख श्री रघुनात। ११

दुजो सबद ऐसो कही। खोदी समाद बाहेर काहाड़े मोही।
बैठो आसन मोह कुं दीजो। सबद हामारो मानी लीजो। १२

चमरवा की बात कोई न मानी । हामकु साद कहु नहीं जानी ।
हास हास बात सब बने वोहाई । चमरा की बात मानी नाही । १३

चमारा आयो आपणे घर । छानी बात मन मु कर ।
ऐसे बात कहबे की नाहीं । मेरी में आण हात गंमाई । १४

ता पीछे दीन दोये जो बीता । भया सपना एक आण चीता ।
कोई सुता कोई जागे । आयो स्वामी तीन के आगे । १५

पहेले आये आरधंगी चेताई । ता पीछे सीख खु सुणाई ।
नाम नारायण तीसको होई । स्वामी आण चेतायो सोई । १६

चमरवा की बात कोई न मानी । आप ही थापे नये आभीमानी ।
भवत संदेसा हामारा आया । तमारा चीत कछू नहीं भाया । १७

ऐसो कही स्वामी गया । तब इनके मन संसा भया ।
सुणी कथा मन मु पस्ताव । मन ही जाण मन को घाव ।

॥ विश्राम ॥१८॥

संसो उपज्यो मन मा । स्वामी कहीयो सोये ।
आबकी जो ना मानहू । ना जणु कैसी होये । १६

दास नारायेण आंचभी रहयो । जो लहे सवद को घाव ।
जो ना मानहु आबकी । यो तन प्रले जाये । २०

ऐसे करता भयो परभात । स्वामी को सबद लागो चीत ।
येते दीन ना मानी काहू की कही । सबद बाण लागो ते सही । १

स्वामी को सबद मान्यो नाही । करूँ बात स्वामी की कही ।
कहे नारायेण माता से बात । करो मचकुर[1] मीलो सब सात । २

आज स्वामी चेतायो मोह । संत सबद सुणाउ तोहे ।
कहै माता सुणरे भाई । वे आंत्रजामी सदा सुहाई । ३

१—मजकूर ।

उनको सबद मानी लीजो सोही। साद गत कोउ चीनी नही।
चाम द्रष्ट आपुण कुं दीनी। सेवक तो सेवा करि लीनी। ४

सेवक तो सेवा कर जाणे। आकलीत ब्रह्म कोण पहेचाणे।
सघन सरूप नीरमल जोत। कहले ना आवे ताको आंत। ५

त्रीलोचन काहा कमाई। रहे समीप मत भूलाई।
जैसे वसुदेव देवकी भुलाये। बाल लीला बन बछ चराये। ६

ऐसे पुरस भरम ना पाये। पहै पान दई जीने गोद खेलाये।
ता पीछे बहोत पस्ताने। जोगी जती पंडित आने। ७

आपुण गरीब की केतीक बात। वे तो रहे रामजी के सात।
इतनी बात माताजी ने कही। दास नारायेण मानी सही। ८

कही बात जो सब कुं भाई। ततक्षण राज लीया बुलाई।
खोद समाद स्वामी तणी। नीकसी साबुत[1] देही ना खीणी। ९

काहाड़ी साबुत बाहेर लाये। सीतल जल आसनान कराये।
छटे मास जो देहे निकाली। बड़े नक सब रोमावली। १०

नग्र लोक सब देखण कुं आये। गाव आण गाव की कोण चलावे।
धन धन कहे सब कोई। जो देखे सो लागे पाई। ११

छोटे मोठे मीले हाजारा। स्वामी पे जुड़े बजारा।
तीन पहेर लु राख्या सही। पहेर चवथे संवाद जो दई। १२

आस्नान कराई आसन दीनो। चरण पखाल चरणांम्रत लीनो।
पहले स्वामी कुं आडे आसन दीनो। बहोरि बैठो आसन गंगा
मुख कीनो। १३

धन धन सब कोई कहे। सींधा स्वामी की साबुत देहे।
जगत भगत बोले बड़ाई। बड़े पुरस राम सनेही। १४

१—पूरी।

नक सब्द सावुत देही। धन धन जीनकी सुफल कमाई।
भयो हये पौहमी जये जयकार। आदीक मंगल आदीक उचार। १५

भक्त भक्त होत बधाई। बरत्यो परसाद स्वामी की ठाई।
जय जयकार करे सब कोई। करे परतीत आनन्द बधाई। १६

करी जुगत संमाद मा बैठाये। ता पर गंची बन्द चबूत्रा बंधाये।
भीतर कोठड़ी तसीया बंद। जीहा सहेज सरूपी बैठे साद। १७

॥ विश्राम ॥१६॥

सहेज सरूपी साद हये। हारक सोक जीनकु नाये।
जीवत मृतक हो रहे। सो पावे नीरभे ठावे। १८

जोग जुगत आसन करे। पवन प्रासीक जे है।
भक्त राहा न्यारी रही। पची पची मुवां नर तेहे। १६

नाना मुनि दिगंबरा। माला मुद्रा बहु भेक।
जीन परचे हारी मीले। सो आद नारायेण येक। २०

जोगी जंगम सेवड़ा। भुले भेक आनेक।
मुक्त मुल आहे आचरा। तासे कहूँ येक।२१।

आगम आधार गम नहीं। सकल माही परकास।
बावन सर सो नाम आखमी। सबद-सबद नीकास।२२।

ता बीना बेन[१] ना नीकसे। बयेन बीना सो नाये।
स चराचर पुरी रह्यो। न्यारो कीयो न जाये।२३।

पुस्प बास तो येक सो रहे। काहा चंपो काहा बेल।
तेल फुलेल काहा बसे। मीलकर भये फुलेल।२४।

सीप सायेर काहा हये। येक सुद येक भाव।
स्वात बूँद भी ये कहे। तामु आदीक ज़मांव।२५।

१—वाणी।

वहोर वात सुणो सब कोई । प्रेम भक्ती बीन मुक्त ना होई ।
प्रेम सनेही स्वामी भयो । जीवन पद जान पुरण लह्यो ।१।

भयो स्वामी नीज दास । देस-देस गई छे गाज ।
आग कथा काहा लू कहू । कहेत कथा को पारन लहू ।२।

भया स्वामी कुं परचा आपार । कहूँ कथा जो वड़ी वीस्तार ।
आलप कथा सींघा जी की कही । आदु भक्त जो जैसी भई ।३।

थोडी कथा रस मीठो । हारी सुमरे सोई जन जेठो ।
मोपे क्रपा येती भई । आग्या सहीत कथा जो कही ।४।

हाउ हये मुंड मत वोछी बुंध । आखर तीण न जाणु सुंध ।
सतगुरु स्वामी क्रपा करी । दीनी बुंध जो साखी वीस्तरी ।५।

सवद येक मु मोकूं सुणायो । ताके परचे पद ७ वनायो ।
कहे खेम सुणो नर लाई । सुरता वकता प्रेम पद पाई ।६।

सींघा स्वामी का परचा गाउ । सब संतन कुं सीस नवाउ ।
भक्त परचा स्वामी कुं भया । तामु पर संग येकुं ना कह्या ।७।

॥ विश्राम ॥२०॥

कुप जल को पीवे । नहीं जाण साहब संत ।
बीना जीरमा को डेड को । हारी गुण गावे आनंत ।८।

बीना जीरभा को डेड को । डर-डर बोले वाणी ।
प्रेम ती आण्यो नही । मानु पडयो पषाण ।

सींघाजी की परचरी पुरी भई । सतगुरु परचे जन खेम जो कही ।
सर आवसर ना जाणु काई । सतगुरु संत मिले सुखदाई ।१।

मै मूरख से कछू ना वणी आई । चलू आद मारग भूलाई ।
सतगुरु स्वामी क्रपा किनी । ग्यान लाकड़ी हात जो दीनी ।२।

बांहा पकडी कर पंथ वतायो । सघन घन सुद मारग लायो ।
वहोरी वहोर ऐसी कहाई । आडी वात जो मत सीखाई ।३।

सीदो मारग मोहे लगायो । फंद चबरासी से तुरत छोडायो ।
मन मेरे तो ऐसो भाव । सतगुरु बीना सब जोजक मे जावे ।४।

सतगुरु हो बोले नीरमल वाणी । समद्रष्टी होये दरसन पहेचाणी ।
जैसे चंदन खोज कर लेपन कीनो । गोरो गात जैसे रस भीनो ।५।

सीतल सबद ज बोले अती झीनो । मेरि सूध बुध सब हार लीनो ।
सामो आयो करी पहेचाण । पास बुलाये बात जो कीन ।६।

भई कथा सो सबही भाखी । स्वामी अंत्र कछू न राखी ।
आद अंत सगरी कहूँ आगे । वहोर कहूँ कम झणी कहूँ आगे ।७।

भयो दरसन तेरे भाउ । सुण बात तोह चेताउं ।
सींघा स्वामी मेरो नाउ । श्री राम नाम मुख से गाउ ।८।

ऐसो सबद स्वामी कही गयो । सो परसंग[1] मेरे हिय रह्यो ।
कही बात सो सब चीत मा राखी । तासे परचरी श्री सींघाजी
की भाखी ।९।

सींघा स्वामी असोदा नारी । बहुत नोकी श्रीरामजी की प्यारी ।
नीमाड़ खंड मा सींघा स्वामी भयो । अवलवली न श्रीराम गुण
गायो ।१०।

॥ विश्राम ॥२१॥

इतनी पट उतम लुख भयो । निज बीज लिखा पठाणी ।
सोहि संमस्त १६१६ मा सिंघाजी भये । आति प्रेम निदान ।११।

संत महन्त आनन्द होये । जाकी हारी करे बखाण ।
खेम ढेडरो प्रेम सु । मुढ़ मन आग्यान ।१।

संत घर सदा आनन्द सुहाग हये । सत घर सदा उछाव ।
दिन-दिन होत आरती । पल-पल परसाद बटाय ।२।

१—प्रसंग ।

संत जणा पाहुणा । अठ मार्ग आवे बार ।
सोहि मंदिर बैकुंठ जाणिये । मानुस से मुरार ।३।
साद तिहा साइयां । साई तिहा सब देव ।
खेम वारी जाके साद की । जासु सकल विध मेव ।४।
चार वेद छे सास्त्र से । वेगला उपर साखि पांच ।
खेम गुरु परताप से । बोलु घणी सांच ।५।

॥ इति श्री सिंघाजी महाराज की परचुरी सम्पूरण ॥

सिंगाजी की कविता में 'हठयोग' में प्रयुक्त कुछ विशिष्ट शब्दों का अर्थ[1]

अमृत— ब्रह्म-रंध्र में स्थित सहस्त्र-दल-कमल के मध्य में एक योनि है। उसका मुख नीचे की ओर है। उसके मध्य में चंद्राकार स्थान है जिससे सदैव अमृत का प्रवाह होता रहता है। यह इड़ा नाड़ी द्वारा बहता है और मनुष्य को दीर्घायु बनाने में सहायक होता है।

अनाहद—समाधि की अवस्था में पहुँचने पर ब्रह्म-रंध्र के समीप 'शून्य' में एक प्रकार का संगीत सुनाई पड़ता है। इस शब्द का शुद्ध रूप 'अनाहत' है।

पाँच — अ—पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ—आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा।

ब — पाँच प्राण—उदान, प्रान, समान, अपान, व्यान।

स — काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह।

तीर्थ — आज्ञा चक्र के समीप इड़ा और पिंगला के बीच का स्थान।

गंगा — इड़ा नाड़ी।

जमुना — पिंगला नाड़ी।

तीन — सत, रज और तम।

— कहीं-कहीं इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना तीनों नाड़ियाँ।

१—डा० रामकुमार वर्मा के 'कबीर का रहस्यवाद' में दिए हुए अर्थों पर आधारित।

त्रिकुटी— भौंहों के बीच का स्थान।

इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना और बंकनाल—देखिए सिंगाजी की योग-साधना।

चंद्र — ब्रह्म-रंध्र में सहस्त्र-दल कमल है। उसमें एक योनि है जिसका मुख नीचे की ओर है।

इस योनि के मध्य में एक चंद्राकार स्थान है जिससे सदैव अमृत प्रवाहित होता है।

अमीरस—ब्रह्म-रंध्र का अमृत।

सुरति —स्मृति का अपभ्रंश—अनुभव की हुई वस्तु या सद्‌बोध या 'स्वरत'—अपने में लीन। साधारण अर्थ में ध्यान।

सुन शून्य — ब्रह्म-रंध्र का छिद्र(०) बिन्दु रूप होता है। इसी से कुंडलिनी का संयोग होता है इसी स्थान पर ब्रह्म का निवास है। योगी इस रंध्र का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं।

सूरीज (सूर्य)—मूलाधार चक्र में चार दलों के बीच एक गोलाकार स्थान है जिससे सदैव विष बहता रहता है। यही मनुष्य को वृद्ध बनाता है।

हंस या हंसा—'जीव' जो नव द्वार के पिंजड़े में बन्द है।